

**Text Dark And Light
Within The Book Only**

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_182636

UNIVERSAL
LIBRARY

OUP-730-28-4-81-10,000.

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H81.09
M49N

Accession No. PG H336

Author

Title

This book should be returned on or before the date last marked below

प्राक्कथन

प्रस्तुत प्रबंध सागर विश्वविद्यालय के एम० ए० द्वितीय वर्ष (हिन्दी) के वैकल्पिक-प्रश्न-पत्र के उत्तर के रूप में लिखा गया है। इस विषय का निर्वाचन मेरे गुरुदेव आचार्य वाजपेयीजी द्वारा मेरे लिए किया गया था और उन्हीं के निरीक्षण में इसका वर्तमान रूप निर्मित हुआ है। पंडित वाजपेयीजी आधुनिक साहित्य के विशिष्ट और मर्मज्ञ विज्ञान तो हैं ही, निराला-साहित्य के तो वे अन्यतम विशेषज्ञ हैं। अतएव उनके निर्देशन में इस प्रबन्ध का लिखा जाना, प्रबन्ध-लेखक के लिये सौभाग्य की बात रही है। निरालाजी के साथ अपने व्यक्तिगत संपर्कों के कारण इस प्रबन्ध की बहुत सी सामग्री उनके निजी वक्तव्यों के आधार पर प्रस्तुत की गई है। इसके लिये किसी अन्य साक्ष्य का निर्देश इसलिए नहीं किया गया कि पंडितजी स्वयं ही सबसे प्रधान साक्ष्य हैं। उनके निजी वक्तव्यों के बल पर अनेक तिथियों और घटनाओं का निर्धारण इस प्रबन्ध में किया गया है। उक्त समस्त सामग्री के लिए प्रबन्ध-विद्यार्थी उनका कृतज्ञ है।

अध्यायों का वर्गीकरण और निर्धारण पंडितजी के द्वारा स्वयं किया गया है। प्रथम अध्याय में विषय की स्थापना की गई है। निराला के परवर्ती काव्य के अध्ययन की सार्थकता क्या है, यह प्रदर्शित किया गया है। इस प्रबन्ध में उस साहित्यिक सिद्धांत को आधार माना गया है, जो साहित्य का अध्ययन देश और काल की सापेक्षता में करने का समर्थक है। इस अध्याय में निराला के परवर्ती काव्य की आरम्भिक तिथि का, उनकी एक विशिष्ट कविता के आधार पर निरूपण किया गया है।

द्वितीय अध्याय में निराला-काव्य का क्रम-विकास दिखाते हुए पूर्ववर्ती और परवर्ती काव्य की मुख्य भिन्नताएँ प्रस्तुत की गई हैं। विचारधारा और जीवन सम्बन्धी दृष्टिकोण के अन्तर के साथ विषयवस्तु और शैली में आने वाले परिवर्तन का स्वरूप-निर्देश किया गया है। साथ ही यह भी स्पष्ट किया गया है कि इन समस्त परिवर्तनों के बावजूद निराला की मूल जीवन-दृष्टि में एकरूपता बनी रही है।

तीसरे अध्याय में परवर्ती काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियों पर प्रकाश डाला गया है। हास्य, व्यंग और विनोद निराला के परवर्ती काव्य की एक मुख्य प्रवृत्ति है। इसके साथ ही विनय, आत्मनिवेदन और प्रार्थनापरक भावना उनकी दूसरी प्रमुख विशेषता है। इन परस्पर-विरोधी प्रतीत होने वाली प्रवृत्तियों का पारस्परिक सम्बन्ध

विवेचित किया गया है। इसके अतिरिक्त यथार्थोन्मुख चित्रण-शैली, प्रयोगशील और प्रगतिशील काव्य-रचना उनके परवर्ती काव्य की अन्य प्रवृत्तियाँ हैं।

चौथे अध्याय से नवें अध्याय तक निराला के परवर्ती काल की एक-एक प्रवृत्ति का विस्तृत और विवरणपूर्ण निरूपण, अध्ययन और विवेचन किया गया है। क्रमशः व्यंग्यमूलक काव्य, उर्दूशैली की कविताओं, प्रगतिशील भावना की कृतियों, प्रयोगशील पद्धति के काव्य की यथेष्ट व्याख्या करने के पश्चात् निराला के परवर्ती गीतिकाव्य पर एक बड़ा अध्याय लिखा गया है। इन सभी अध्यायों में सम्यक उप-शीर्षकों के अन्तर्गत निराला के परवर्ती काव्य के समग्र स्वरूप का निर्देश और आकलन करने का प्रयत्न है।

इन अध्यायों में निराला-काव्य का विचार करते हुए अनेक बार एक ही कृति कई अध्यायों में विवेचित हुई है। इसका यह अर्थ नहीं कि हमने एक ही विषय की अनेक बार आवृत्ति की है। उदाहरणार्थ—‘कुकुरमुत्ता’ कविता को जब हमने व्यंग्यमूलक रचनाओं के अध्ययन में लिया है, तब उसकी व्यंग्यमूलकता पर हमारा विवेचन केंद्रित रहा है। जब उसी रचना को हमने उर्दू शैली की कविताओं में विचारार्थ लिया है, तो भाषा और छंदों की दृष्टि से उसे देखने का उपक्रम किया है। फिर जब प्रगतिशील शैली के अध्याय में उसे लेकर देखा है, तब उसकी विचारधारा पर हमारा ध्यान बना रहा है और अंततः जब प्रयोगात्मक शैली की भूमिका पर उसे रखा है, तब उसके चमत्कार-पक्ष पर हमारी दृष्टि स्थिर रही है। यह तो केवल एक उदाहरण है। इसी पद्धति का अनुसरण अन्य कविताओं के सम्बन्ध में भी किया गया है।

निरालाजी के परवर्ती गीतों का उचित शीर्षकों में विभाजन और वर्गीकरण करके हमने गीतों के वस्तु और कलापक्ष पर क्रमबद्ध विचार करने की चेष्टा की है। उनके गीतों का सम्बंध संगीत और काव्य की सम्मिलित भूमियों से है। अतएव गीतों के संगीत और काव्यपक्ष का पृथक्-पृथक् निरूपण और विवेचन किया गया है।

नवें अध्याय में हमने निराला के परवर्ती प्रगीतों अध्ययन किया है। प्रगीतों के विविध भेदों की स्थापना करने के पश्चात्, प्रत्येक भाग के अन्तर्गत आने वाले प्रगीतों का प्रगीत काव्य के साहित्यिक संदर्भ में अनुशीलन किया गया है। यहाँ हमने व्यंग्य-काव्य और गजलों को भी प्रगीत की सीमा में लेने के औचित्य पर सैद्धांतिक अभिमत प्रकट किया है, जो काव्यरूप की दृष्टि से विचारणीय है।

दसवें अध्याय में विशुद्ध साहित्यिक भूमिका पर निराला के पूर्ववर्ती और परवर्ती काव्य की तुलना की गई है। पूर्ववर्ती काव्य के विशिष्ट तत्त्वों के साथ, परवर्ती काव्य के विशिष्ट गुणों की सापेक्षिक विशेषता उद्घाटित की गई है।

अंतिम एकादश अध्याय में निराला के परवर्ती काव्य का मूल्य और महत्व प्रतिपादित किया गया है। इसी प्रसंग में निराला के परवर्ती काव्य की वाद-भूमिका का निरूपण करते हुए हमने उनके परवर्ती काव्य-निर्माण को स्वच्छंदतावादी ही माना है। उनके विविध काव्य-रूपों पर प्रकाश डालते हुए हमने उन्हें प्रगीत-काव्य के स्रष्टा की मुख्य भूमिका दी है; यद्यपि उनकी काव्य-रचना में वीर-गीत या 'बैलेड'-काव्य की मौलिक स्थितियाँ भी मिलती हैं। अंततः आधुनिक विश्व-काव्य में निराला-काव्य की स्थिति पर विचार किया गया है और उन्हें मूलतः मानवतावादी स्रष्टा या कवि बताया गया है। निष्कर्ष में हमने आचार्य वाजपेयीजी के हाल के वक्तव्य के अनुसार निराला को 'शताब्दी का कवि' कहकर और उन्हें युग-प्रतिनिधि काव्य-स्रष्टा मानकर अपनी अभ्यर्थना प्रस्तुत की है।

अत्यंत खेदपूर्वक कहना पड़ता है कि जिस कवि के काव्य पर उसकी जीवितावस्था में इस प्रबन्ध का लेखन आरम्भ किया गया था, प्रबन्ध समाप्त होने के पूर्व ही उसका आकस्मिक निधन हो गया। हिन्दी-काव्य का एक अन्यतम आलोक शिखर सहसा निर्वापित हो गया। जिस कवि के काव्य-विवेचन में हमने आरम्भ में वर्तमानकालिक क्रिया का प्रयोग किया था, प्रबन्ध के अंतिम अध्यायों में उसी के लिये भूतकालिक क्रिया का प्रयोग करना पड़ा है; यह हमारा दुर्भाग्य और हमारी विवशता रही है। परन्तु संतोष इतना ही है कि इस प्रबन्ध के व्याज से हम अपने युग के एक महान कवि और कलाकार के प्रति अपनी साहित्यिक श्रद्धांजलि अर्पित कर सके हैं। यह कहना तो सर्वथा अनुचित होगा कि अपने प्रबन्ध द्वारा हम निराला के परवर्ती काव्य के समस्त सौंदर्य और विशेषताओं का उद्घाटन कर सके हैं; पर आचार्य वाजपेयीजी के अभिभावकत्व में हमने उन्हीं के निर्देशानुसार जो कुछ सोचने, समझने और लिखने का प्रयत्न किया है, वह इस प्रबन्ध के रूप में विद्वानों के समक्ष प्रस्तुत है। इसके गुण-दोष का निर्णय वे ही कर सकते हैं।

इस प्रबन्ध के परिशिष्ट भाग में हमने निराला के परवर्ती काव्य की समस्त रचनाओं का, जो पुस्तकाकार प्रकाशित हुई हैं, यथासंभव तिथिक्रम से, विषय-विभाजन किया है और भिन्न-भिन्न वर्गों में रखकर उन्हें प्रस्तुत किया है, जिससे एक ही दृष्टि में निराला की समस्त परवर्ती रचनाओं को देखा जा सके। प्रत्येक कविता के साथ दिये गये अंक सम्बन्धित पुस्तक में उस विशेष कविता के अनुक्रम के सूचक हैं। आशा है, इससे निराला-काव्य के विद्यार्थियों और अनुसंधायकों को कुछ-न-कुछ सहायता मिलेगी और हमारा श्रम सफल होगा। प्रबन्धान्त में हमने सहायक ग्रंथों की समग्र सूची दी है, जिसमें निराला की समस्त काव्य-पुस्तकों के अतिरिक्त हिन्दी और अंग्रेजी के सहायक ग्रंथों का नाम-निर्देश किया है। इन सहायक पुस्तकों के लेखकों के प्रति प्रबन्ध-लेखक अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करता है। साथ ही सागर

विश्वविद्यालय के केन्द्रीय और विभागीय पुस्तकालयों तथा पंडितजी के निजी पुस्तकालय से निर्वाध रूप में प्राप्त पाठ्य-सामग्री के लिये लेखक विश्वविद्यालय के अधिकारियों तथा श्रद्धेय पंडितजी के प्रति अपना आभार प्रकट करता है ।

हिन्दी-विभाग
सागर विश्वविद्यालय
सागर }

रमेशचंद्र मेहरा

विषय-सूची

पृ० सं०

अध्याय १—विषय-प्रवेश : पूर्ववर्ती और परवर्ती काव्य के

विभाजन का औचित्य और सार्थकता	१७-३४
साहित्यिक अध्ययन के दो आदर्श	१७
कालगत अध्ययन की उपयोगिता	१६
चार कवियों का दृष्टांत	२०
निराला के व्यक्तित्व में भिन्नता के कारण	२३
बाह्य परिस्थितियों में इस भिन्नता के कारण	२६
परवर्ती काव्य की एक स्वतंत्र सत्ता और उसके विश्लेषण का औचित्य	३२
परवर्ती काव्य की तिथि-स्थापना	३३

अध्याय २—निराला के पूर्ववर्ती और परवर्ती काव्य में अंतर ३५-५८

निराला का काव्य-विकास	३५
पहली 'अनामिका', 'परिमल' और 'गीतिका'	३५
'अनामिका' द्वितीय	३७
संक्रान्तिकाल : द्वितीय 'अनामिका', 'तुलसीदास' और 'अणिमा'	३७
परवर्ती काल : 'कुकुरमुत्ता'	३८
'बेला' और 'नये पत्ते'	४०
'अर्चना', 'आराधना' और 'गीतगुंज'	४३
शैलीगत अन्तर	४६
विचारधारा का अन्तर	४४
जीवन सम्बन्धी दृष्टिकोण का अन्तर	५६
विषयवस्तु और रस आदि का अन्तर	५६

अध्याय ३—परवर्ती काव्य का विहंगावलोकन ५६-७८

परवर्ती काव्य के केन्द्रीय तत्व : (१) नयी जीवन-चेतना, (२) नये विषय, (३) नई काव्यशैली तथा (४) नई भाव-भाषा-योजना	६०
निराला के परवर्ती काव्य की पूर्व पीठिका	६४
निराला के परवर्ती काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियां	७०

परवर्ती प्रगीत-रचनाएँ	...	७७
उपसंहार	...	७७

अध्याय ४—निराला की हास्य और व्यंग्यमूलक कविताओं का .

अध्ययन		७६-६६
✓ काव्य में हास्य और व्यंग का अर्थ	...	७६
भारतीय वाङ्मय में हास्य-व्यंग्य	...	७६
पश्चिमी दृष्टि	...	८०
✓ हास्य और व्यंग्य में अन्तर	...	८१
हिन्दी साहित्य में हास्य और व्यंग का विकास	...	८२
आधुनिक युग	...	८३
नये युग की परिस्थितियाँ	...	८५
✓ निराला के परवर्ती काव्य का स्वरूप और व्यंग्यों के प्रयोग	...	८५
✓ 'कुकुरमुत्ता'	...	८७
संक्षिप्त कथा	...	८८
✓ 'कुकुरमुत्ता' के व्यंग : विद्वानों में मतभेद	...	८८
✓ 'कुकुरमुत्ता' के हास्य-व्यंग्य का स्वरूप	...	८९
हमारी व्याख्या	...	९२
'कुकुरमुत्ता' का साहित्यिक मूल्य	...	९३
✓ 'नये पत्ते'	...	९३
✓ व्यंगात्मक तथा हास्य विनोदात्मक कविताएँ	...	९४
स्फुट कविताएँ	...	९६
व्यंग्यों का काव्यात्मक सौष्ठव	...	९७
निराला के कथा-साहित्य के व्यंग्यों से तुलना	...	९७
निष्कर्ष	...	९८

अध्याय ५—निराला की उर्दू शैली की कविताओं का अध्ययन १००-१२०

हिन्दी-उर्दू की पृष्ठभूमि	...	१००
निराला का उर्दू काव्य : प्रेरणा और उद्देश्य	...	१०४
भाषागत अध्ययन	...	१०८
वस्तुगत अध्ययन	...	११३
निष्कर्ष	...	११६

अध्याय ६—निराला की प्रगतिशील कविताओं का अध्ययन १२१-१४२

निराला के प्रगतिशील काव्य की पृष्ठभूमि	...	१२१
प्रगतिवाद की रूपरेखा	...	१२२

निराला-काव्य की प्रगतिशीलता का स्वरूप	...	१२६
प्रगतिशील कविताओं का वर्गीकरण	...	१२८
निराला के प्रगतिशील काव्य में व्यंग्य-हास्य का आधार	...	१३८
प्रगतिशील काव्य की भाषा	...	१३९
नवजागरण की भूमिका और निराला का प्रगतिशील काव्य : एक मूल्यांकन	...	१४०
अध्याय ७—निराला की प्रयोगशील कविताओं का अध्ययन	...	१४३-१६३
प्रयोगशील का अर्थ	...	१४३
निराला-काव्य की प्रयोगशीलता	...	१४६
यथार्थवादी दृष्टि की स्वीकृति	...	१४८
निराला-प्रयोगों का विकासात्मक अध्ययन	...	१४९
‘अणिमा’ के प्रयोग की विशेषताएँ	...	१५३
‘कुकुरमुत्ता’	...	१५४
विषय का बिखराव और नये शिल्प का प्रयोग	...	१५४
‘बेला’	...	१५६
‘बेला’ की विशेषतायें—प्रयोगशील काव्य-दृष्टि से	...	१५९
‘नये पत्ते’	...	१६०
‘नये पत्ते’ की विशेषताएँ—प्रयोगशील दृष्टि से	...	१६२
प्रयोगशील कविताओं की साहित्यिक विशेषता	...	१६३
अध्याय ८—निराला के परवर्ती गीतों का अध्ययन	...	१६४-१६४
प्रस्तावना	...	१६४
गीतिकाव्य का स्वरूप	...	१६९
गीतिकाव्य की भावसंपत्ति	...	१७०
गीतिकाव्य की भाषा	...	१७१
निराला के आरम्भिक गीत	—	१७२
‘अनामिका’ के गीतों में भाव-परिवर्तन	...	१७३
निराला के परवर्ती गीत	...	१७४
परवर्ती गीतों का वर्गीकरण	...	१७६
निराला की गीत-कला	...	१८३
अध्याय ९—निराला की परवर्ती प्रगीत सृष्टियाँ	...	१८५-२१५
पश्चिमी प्रगीत प्रकार	...	१८५
भारतीय गीत या प्रगीत-परम्परा	...	१८६
निराला के आरम्भिक प्रगीत	...	१८८

मध्यवर्ती प्रगीत	...	२०१
निराला के परवर्ती प्रगीतों का वर्गीकरण	...	२०४
निराला के परवर्ती प्रगीतों का अध्ययन	...	२०५

अध्याय १०—निराला के पूर्ववर्ती और परवर्ती काव्य की साहित्यिक

तुलना	...	२१६-२३६
-------	-----	---------

✓ पूर्ववर्ती तथा परवर्ती काव्य का तथाकथित अन्तर	...	२१६
काव्य-विकास का चरण	...	२१७
द्वितीय चरण (१९२४-३४)	...	२२०
तृतीय चरण	...	२२२
परवर्ती काव्यकृतियाँ	...	२२५

अध्याय ११—उपसंहार	...	२४०-२५२
-------------------	-----	---------

✓ निराला का पूर्ववर्ती और परवर्ती काव्य—सापेक्षिक मूल्यांकन	...	२४०
परवर्ती काव्य में वादों की स्थिति	...	२४१
विविध काव्य-रूप	...	२४४
आधुनिक पश्चिमी काव्य में निराला की स्थिति	...	२४७
समग्र आकलन	...	२४८
तुलनात्मक वैशिष्ट्य	...	२४९
शताब्दी का कवि	...	२५१
परिशिष्ट १—‘अणिमा’ की रचनाओं का वर्गीकरण	...	२५३
परिशिष्ट २—‘अणिमा’ की रचनाओं का वर्गीकरण	...	२५४
परिशिष्ट ३—‘बेला’ की रचनाओं का वर्गीकरण	...	२५५
परिशिष्ट ४—‘नये पत्ते’ की रचनाओं का वर्गीकरण	...	२५७
परिशिष्ट ५—‘अर्चना’ की रचनाओं का वर्गीकरण	...	२५८
परिशिष्ट ६—‘आराधना’ की रचनाओं का वर्गीकरण	...	२६१
परिशिष्ट ७—‘गीत गुंज’ की रचनाओं का वर्गीकरण	...	२६४
सहायक—ग्रंथ सूची	...	२६७

विषय प्रवेश

पूर्ववर्ती और परवर्ती काव्य

विभाजन का औचित्य और सार्थकता

● साहित्यिक अध्ययन के दो मादश

यों तो प्रत्येक कवि की प्रत्येक काव्य-रचना अपने में स्वतन्त्र होती है और उसका स्वतन्त्र रीति से पाठ भी किया जाता है। कविता के तत्व उसमें रहते हैं और उसका आनन्द भी पाठकों को मिलता है। इस दृष्टि से देखने पर किसी कवि की पूर्ववर्ती और परवर्ती काव्य-रचना का विभाजन करना और उनमें से किसी एक को स्वतन्त्र अध्ययन का विषय बनाना बहुत उचित नहीं कहा जा सकता। काव्य, काव्य है और समय या रचना-तिथि की दृष्टि से उसका अध्ययन करने से उसके प्रभाव में कोई अन्तर नहीं आता। समीक्षकों का एक वर्ग यह आप्रह्न करता आया है कि कविता या साहित्य का अध्ययन, कविता और साहित्य के रूप में ही होना चाहिये। इस अध्ययन में किसी अपर वस्तु का योग उचित नहीं है क्योंकि अपर वस्तु के मिलाने से कविता के अध्ययन में कोई लाभ नहीं हो सकता, उसके आस्वाद में कमी ही आ सकती है। कविता तो कविता, उपन्यासों के अध्ययन में भी ई० एम० फास्टर ने युगों में विभाजित कर उपन्यासिक कृतियों के अध्ययन का निषेध ही किया है।¹ उसका मत यह है कि विभिन्न युगों में लिखे गये उपन्यास अंततः उपन्यास ही हैं। मानव-जीवन के अनुभूत अंशों का, परिस्थितियों का, आलेख प्रत्येक उपन्यास में रहता है। हमें किसी विशेष कृति की साहित्यिक विशिष्टता की जानकारी इस बात से नहीं होती कि वह एक

- 1 We can not consider fiction by periods, we must not contemplate the stream of time. Another image better suits our powers : that of all the novelists writing their novels at once. They come from different ages and ranks, they have different temperaments and aims, but they all hold pens in their hands and are in the process of creation.

—E. M. Forster : Aspects of the Novel-Introductory, P. 17

विशेष समय में लिखी गई थी, बल्कि इस बात से होती है कि उसमें मानव-जीवन की विभिन्न दशाओं का आलेखन कितनी सच्चाइयों और गहराइयों से हुआ है। जो बात ई० एम० फास्टर् ने उपन्यासों के सम्बन्ध में लिखी है वह कविता के सम्बन्ध में और भी चरितार्थ होती है, क्योंकि उपन्यास में तो थोड़ी इतिवृत्तात्मकता, थोड़ा देश काल का प्रभाव रह सकता है, पर काव्य तो विशुद्ध रूप से कवि की भाव-स्थिति का ही उद्घाटन है। अतएव काव्य का अध्ययन समय की भूमिका पर करना फलप्रद नहीं हो सकता।

यह काव्य और साहित्य के विवेचन की एक दृष्टि है जिसमें प्रत्येक रचना को स्वतन्त्र और आत्मसंपूर्ण मानकर उसके स्वतन्त्र आस्वादन का लक्ष्य रखा जाता है। हम यह मान लेते हैं कि इस दृष्टि का अपना स्वतन्त्र स्थान और मूल्य है, परन्तु हम देखते हैं कि आज के साहित्यिक अध्ययन में कवियों और लेखकों के क्रमिक मानसिक विकास या ह्रास के विवरण दिये जाते हैं और उनके आधार पर उस कवि या लेखक की कला का समग्र मूल्य आंका जाता है। इसके साथ ही देश और काल की बदलती हुई स्थितियों का प्रभाव भी साहित्यिक रचनाकारों पर पड़ता है जिसके कारण वे रचनाएँ नया-नया आकार ग्रहण करती हैं। पुरानी साहित्यिक परम्परा का कालगत प्रभाव भी नये साहित्य-सृष्टियों पर पड़ता है, इसीलिये साहित्यिक परम्पराओं का अध्ययन भी किया जाता है। इस प्रकार का अध्ययन निरर्थक नहीं कहा जा सकता। साहित्य के इतिहास-लेखक विभिन्न युगों के साहित्यिकों का उल्लेख, युग के परिवेश में करते हैं और इस आधार पर कुछ निष्कर्ष भी निकालते हैं। वर्तमान समय में तो साहित्य के सामाजिक और आर्थिक आधारों की भी द्वंद्वात्मक भौतिक-वाद के स्तर पर चर्चा की जाती है, और उसी भूमिका पर किसी कृति की प्रगतिशीलता या अप्रगतिशीलता परखी जाती है। साहित्यिक मूल्यों के निर्धारण में इस प्रकार के तर्क भी अपनी विशिष्ट रखते हैं। साहित्य का विकास और सामाजिक और

युगगत परिवर्तन के साथ-साथ देखने का यह दृष्टिकोण बहुप्रचलित भी है।

हमारी दृष्टि में उपरिलिखित दोनों साहित्यिक आदर्श एक दूसरे से भिन्न तो हैं, पर परस्पर विरोधी नहीं कहे जा सकते। हम तो यह भी कह सकते हैं कि इन दोनों को मिलाकर चलने से किसी काव्य-रचना का सौन्दर्य, किसी कलाकार का वैशिष्ट्य और भी स्पष्टतः और समग्रता से आकलित हो सकता है। ई० एम० फास्टर् ने इतना तो स्वीकार ही किया है कि साहित्य के मूलतत्त्व नहीं बदलते पर कला निर्माण की शैलियाँ और पद्धतियाँ बदलती हैं।¹ किस युग में किस प्रकार का

1 Apart from schools and influences and fashions, there has been a technique in English fiction, and this does alter from generation to generation.

—E. M. Forster : Aspects of the Novel, Introductory, P. 24

लोक-व्यवहार रहा है और उसके अनुसार लेखकों की निर्माणशैली कौन-कौन से नये रूप धारण करती है, यह अध्ययन तो उसी समय हो सकता है। यह ठीक है कि देश और काल की सापेक्षिक भूमिकाओं पर काव्य का अनुशीलन करने पर बहुत सी नई बातें ज्ञात हो सकती हैं, जिनका उपयोग हम विशुद्ध साहित्यिक विवेचन में कर सकते और इस प्रकार कृति के आस्वाद को और भी सजग बना सकते हैं। परन्तु उसके लिये अधिक विस्तृत अध्ययन और स्मृति-शक्ति की आवश्यकता है। बिना इसके हम इस प्रकार के विवेचन में बहुत दूर तक आगे नहीं जा सकते।

किसी कवि की आरंभिक रचनाओं से आगे बढ़कर उसकी प्रौढ़ रचनाओं तक पहुँचना भी तुलना का ही कार्य है। इसी प्रकार एक ही युग के दो या अधिक कवियों का अनुशीलन भी तुलनात्मक भूमिका पर ही हो सकता है। जब हम किसी पूर्व-युग की कृति से किसी परवर्ती युग की कृति का अन्तर देखने बैठते हैं, तब अन्य तत्वों के साथ देश और काल के बदलते हुये तत्व हमारे सामने आ ही जाते हैं। इससे साहित्यिक इतिहास के निर्माण में, तुलनात्मक विवेचन में, परम्परागत शैलियों और जीवन-व्यवहारों की अभिज्ञता में, सहायता तो मिलती ही है, विशुद्ध साहित्यिक सौन्दर्य की परख में भी योग प्राप्त होता है।

● कालगत अध्ययन की उपयोगिता

कभी-कभी ऐसे कवियों का काव्याध्ययन भी हमें करना पड़ता है, जो आरंभ में कुछ बहुत सुन्दर कृतियाँ दे जाते हैं, पर कुछ ही वर्षों में उनके काव्य में क्षीणता आने लगती है। कभी उपदेशात्मकता और कभी कृत्रिम नैतिकता का आक्रमण होने लगता है। कभी अकालवृद्धता दिखाई देने लगती है। यह सब विकार तभी अच्छी तरह जाने और परखे जा सकते हैं, जब हमें कवि की जीवनी का निकट से ज्ञान हो। यों किसी श्रेष्ठ भावक को तो कविता पढ़ते ही उसकी गहराइयों का अथवा हलकेपन का आभास मिल जाता है पर हम गहराई या हलकेपन का कारण क्या है ? कवि

के व्यक्तित्व में कौन से मोड़ कब आये हैं ? इनका परिचय मिलने पर श्रेष्ठ भावक को भी अधिक स्पष्ट और निर्भ्रंति अभिज्ञता होती है; किन्तु सामान्य भावक के लिये तो इन बाह्य स्थितियों और परिचालक शक्तियों का जानना किसी कवि के अध्ययन में अत्यन्त आवश्यक हो जाता है। भय यह नहीं है कि इन बातों की जानकारी से कविता के मूल प्रभावों के अध्ययन में बाधा पड़ेगी। भय यह है कि इस जानकारी के बिना कम-से-कम सामान्य पाठकों को, उस कविता के मूल प्रभाव का अभिज्ञान ही न होगा।

कवि अनेक प्रकार के होते हैं। बहुत थोड़े कवियों की काव्य-रचना आदि से अंत तक एक सी विकासमान रहती है। अधिकतर कवि असमान भूमिका पर काव्य-रचना करते हैं। उनकी कुछ कविताएँ बहुत सुन्दर और कुछ अतिशय सामान्य होती

हैं। कुछ कवियों की काव्य-रचना के प्रथम छंद से ही श्रेष्ठ कविता प्रस्तुत होती है। कुछ अन्य कवियों के मध्यकाल में प्रौढ़तम रचनाएँ उत्पन्न होती हैं तथा कुछ कवियों की प्रौढ़ावस्था में गम्भीर कविताओं की सृष्टि होती है; पर इसका भी कोई एक नियम नहीं है। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि २-४ वर्षों तक अच्छी कविताएँ लिखने के पश्चात् फिर २-४ वर्ष मध्यम श्रेणी की कविताएँ लिखी जाती हैं। फिर एक उन्मेष होता है, जिसमें कवि की कविता अपने पहले स्तर को प्राप्त करती है या उससे भी ऊँची आ जाती है। इस प्रकार कवियों के काव्य-निर्माण में कोई सुव्यवस्थित नियम नहीं होता। इस उतार-चढ़ाव की जानकारी के लिये केवल इतना ही आवश्यक नहीं है कि हम श्रेष्ठ काव्य के अनुशीलन से अपनी साहित्य-मर्मज्ञता बढ़ाते जाएं, बल्कि यह भी आवश्यक है कि हम कवि की जीवन-रेखाओं का अध्ययन करें तथा उसके व्यक्तित्व तथा परिवेश से अधिकाधिक परिचय प्राप्त करें।

ऊपर के विवेचन से हम जिन दो निष्कर्षों पर पहुंचते हैं वे ये हैं—

(१) किसी कवि के काव्य के अनुशीलन के लिये उस कवि के व्यक्तित्व और परिस्थिति से परिचित होना लाभदायक होता है।

(२) इस प्रकार का परिचय उस कवि के काव्य की विशुद्ध साहित्यिक समीक्षा में योग ही दे सकता है, बाधा नहीं डाल सकता। इन दो तथ्यों के आधार पर कालगत अध्ययन को उपयोगी मानकर हम उस ओर प्रवृत्त हो सकते हैं।

समयानुक्रम से किसी कवि की काव्य-कृतियों का अध्ययन करने से जो लाभ होते हैं, उनका कुछ आभास ऊपर दिया गया है। संक्षेप में कह सकते हैं कि इस प्रकार का अध्ययन किसी काव्यकृति के वास्तविक सौन्दर्य और मूल्य को समझने में अधिक सहायक होता है। युग-जीवन के परिपाइवं में किसी कवि की कृतियों को देखना हमारी साहित्यिक चेतना को अधिक तथ्य मूलक बनाता है। जैसा कि हम कह चुके हैं, इस प्रकार के अध्ययन से हमारी तुलनात्मक दृष्टि अधिक सक्रिय होती है। हमारा साहित्यिक परम्पराओं का बोध बढ़ता है और बदलते हुये जीवन-ध्यवहारों की वास्तविक झांकी देखकर हम कवि के अधिक समीप पहुंचते हैं। युग-सम्यता के अनुरूप अभिव्यक्ति की नई शैलियां, नये मुहावरे और नवीन उक्ति-कौशल हमारे साहित्यिक मानदण्डों को अधिक जागरूक बना देते हैं। यह मानी हुई बात है कि किसी भी कवि की दो कृतियाँ एकदम समान विशेषता की नहीं होतीं। काव्य का वास्तविक स्वारस्य लेने के लिये भी हमें साहित्यिक विवेचन के इन तुलनात्मक आधारों को देखना और समझना पड़ता है।

● चार कवियों का दृष्टांत

कुछ कवियों के काव्यानुशीलन में तो कवि के बदलते हुए मनोभावों और युग की बदलती हुई परिस्थितियों का ज्ञान अनिवार्य हो जाता है। इस ज्ञान के

बिना हम उसके काव्य के वास्तविक स्वारस्य को जान ही नहीं सकेंगे। यदि हम उदाहरण स्वरूप छायावाद युग के ४ कवियों को अपने दृष्टिपथ में रखें, तो चारों की काव्य-विकास की भूमिकायें बहुत कुछ भिन्न दिखाई देंगी। जयशंकरप्रसाद का काव्य आरंभ में अतिशय सामान्य प्रतीत होता है। 'आंसू' तक आते-आते उसमें एक गंभीर मार्मिकता आती है। 'लहर' में कवि की भावना में और भी वैविध्य और परिष्कार आया है और इन सबके शीर्ष पर हम उनकी प्रबन्ध-रचना 'कामायनी' को देखते हैं, जिनकी तुलना में उनकी पूर्ववर्ती सभी रचनायें हलकी जान पड़ने लगती हैं। यदि हमने 'कामायनी' को न पढ़ा होता, तो प्रसाद जी की अन्य रचनाओं का तुलनात्मक बोध हमें कैसे होता ? और हम यह कैसे जानते कि प्रसाद का काव्य उनके व्यक्तित्व के विकास के साथ निरन्तर विकसित होता गया है और अन्तिम रचना 'कामायनी' में वह शीर्ष बिन्दु पर पहुँचा है। प्रसाद का काव्य-विकास बहुत कुछ समरस है।

परन्तु यही बात महादेवी जी के काव्य के सम्बन्ध में नहीं कही जा सकती। यद्यपि भावना की गहनता उनकी परवर्ती कृतियों में अधिक है, परन्तु यदि निर्माण-तिथि की सूचना दिये बिना उनकी दो सुन्दर रचनायें हमें पढ़ने को दी जायें, तो हम उन्हें पढ़ कर यह शायद ही बता सकें कि उनमें से कौन-सी रचना पूर्ववर्ती है और कौन-सी परवर्ती। महादेवी का काव्य एक दूसरे अर्थ में समरस है। प्रसाद का काव्य क्रमिक विकास में समरसता रखता है। महादेवी का काव्य भिन्न-भिन्न समयों में एक-सी ऊँचाइयों पर पहुँचा है और समयानुक्रम से उनकी कृतियों को देखने से कोई चढ़ाव और उतार नजर नहीं आते। यह अवश्य है कि प्रतिभा और एकाग्रता की स्थितियों में लिखी गई उनकी कुछ रचनायें पिष्टपेशित भावनाओं से भरी हुई हैं। महादेवी जी का काव्य 'प्रतिभा की जागृति और प्रतिभा की सुषुप्ति' की भूमिकाओं पर पड़ा जा सकता है।

स्थिति में पंत जी के पूर्ववर्ती और परवर्ती काव्य का पृथक-पृथक अध्ययन और परीक्षण आवश्यक हो जाता है। यदि हम ऐसा न करें और पंत के काव्य को प्रसाद के काव्य की भाँति एक क्रमिक विकास की भूमिका पर देखना चाहें, तो संभावना यह है कि तथ्य की अपेक्षा भ्रांतियाँ ही हमारे हाथ लगेंगी। प्रसाद के काव्य को

तिथि-क्रम से पढ़ते जाइये, उत्तरोत्तर विकास स्पष्ट होता जायगा। पंत जी के काव्य को तिथि-क्रम से पढ़िये, प्रत्येक काव्य-रसिक पाठक के समक्ष एक प्रश्न-चिन्ह बनता चला जायेगा। इससे हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि कुछ कवियों की काव्य-रचनायें स्वाभाविक गति से विकसित न होकर ऐसी टेढ़ी-मेढ़ी गतियों और दिग्भ्रांत स्थितियों का आभास देती हैं कि सहसा हम विश्वास नहीं कर पाते कि ये सारी कृतियाँ एक ही कवि की हैं। ऐसे कवियों के काव्य को पूर्ववर्ती और परवर्ती विभागों में बाँट कर पढ़ना, प्रत्येक दृष्टि से लाभकर होगा। कदाचित् यही कारण है कि पंत जी के परवर्ती काव्य पर स्वतंत्र निबन्ध और पुस्तकें प्रस्तुत की गयी हैं।

निराला के काव्य की स्थिति इन तीनों से भिन्न है। न तो वे प्रसाद की भांति एक सामान्य स्तर से आगे बढ़ते हुये क्रमशः उच्च स्तर पर पहुँचते हैं और न प्रसाद की भांति उनकी आरंभिक कविताओं में विन्यास की शिथिलता दिखाई देती है। स्तर की उच्चता उनकी आरम्भिक कविताओं से ही दिखाई देने लगती है। इस अर्थ में वे प्रसाद से भिन्न हैं। महादेवी की भांति निराला जी की रचनाओं में प्रतिभा के क्षणों में और प्रतिभाहीन क्षणों में की गई सृष्टियों का भेद नहीं मिलता। उनकी अधिकांश कृतियाँ समान प्रतिभा की सूचना देती हैं। पंत जी की काव्य-कृतियों की भांति निराला की कृतियों में काव्य और दर्शन का द्वंद्व नहीं है। पंत की कुछ रचनायें विशुद्ध काव्यात्मक हैं। सुन्दरतम प्रगीत हैं। परन्तु कुछ रचनायें उपदेश-बहुल हैं। कोरी दार्शनिक हैं। निराला की काव्य-कृतियों में काव्य और दर्शन का मणिकांचन योग आद्यन्त बना हुआ है। फिर भी निराला जी के काव्य में कुछ ऐसे मोड़ मिलते हैं, जो एक ओर युग की बदली हुई परिस्थितियों के प्रभाव के सूचक हैं, तो दूसरी ओर निराला जी की परिवर्तित मानसिक भूमिका के द्योतक हैं। जब कि उनकी आरंभिक कवितायें एक अपूर्व उल्लास प्रखरता और पौरुष से सम्पन्न हैं, श्रृंगार और वीर रस की आलोकमयी और शक्तिशालिनी प्रेरणाओं से आपूरित हैं, तब उनकी परवर्ती काव्य-रचनायें अधिकतर करुण, शांत और यत्र-तत्र हास्य तथा रौद्र रस की अभिव्यञ्जना करती हैं और इन दोनों धाराओं के बीच में इनकी मध्यवर्ती कृतियाँ कतिपय दीर्घ आख्यानों का आधार लेकर महाकाव्योचित गरिमा और विस्तार का परिचय देती हैं। उनकी प्रथम चरण की रचनाओं में भाषा का जो प्रवेग और लालित्य हैं, वह उनकी मध्यवर्ती रचनाओं में बदल कर किंचित् दुरुह और उच्चस्तरीय बन गया है। उनकी परवर्ती रचनाओं में भाषा का स्वरूप फिर बदला है। कहीं हिन्दी-उर्दू मिश्रित भाषा दिखाई देती है और कहीं ऐसे विचित्र भाषा प्रयोग मिलते हैं, जिनका अर्थ सहजगम्य नहीं है। इसके साथ ही इस तृतीय चरण में विशेषकर उनके गीतों की भाषा अतिशय सरलता भी ग्रहण करती है। निराला का काव्य-विकास एक जीवन की पूरी कहानी को प्रस्तुत करता है जिसमें

बसन्त का सौंदर्य, ग्रीष्म की उष्णता तथा शिशिर का शैत्य अपना स्वतंत्र परन्तु स्वाभाविक सौंदर्य ले आये हैं ।

ऊपर निराला-काव्य के जिन-जिन चरणों का उल्लेख किया गया है, उनमें प्रथम चरण और तृतीय चरण ही मुख्य हैं । उनके काव्य का द्वितीय चरण, जिसे हम मध्यवर्ती-काव्य कह आये हैं, रचना की दृष्टि, से परिणाम की दृष्टि से, और काव्य-कृतियों की दृष्टि से, इतना अधिक भिन्न या स्वतंत्र रंग रूपों वाला नहीं है कि उसे एक नितांत पृथक् स्थिति दी जाय । इन मध्यवर्ती रचनाओं को हम एक दृष्टि से उनकी प्राथमिक रचनाओं का विकास भी मानते हैं । ये मध्यवर्ती कृतियाँ, जो अधिकतर सन् ३५-४० तक की हैं, अपनी आत्यंतिक इकाई नहीं रखती, क्योंकि इन्हीं वर्षों में निराला जी की कुछ ऐसी रचनायें भी उपलब्ध हैं, जो अपने प्रतीकात्मक सौष्ठव और स्वच्छन्दतावादी भाव-विन्यास के कारण, उनके प्रथम चरण की रचनाओं की कोटि में जाती हैं, अथवा अपने व्यंग्यात्मक और यथार्थान्मुख चित्रण-शैली के कारण उनके परवर्ती काव्य की समरूपता ग्रहण करती हैं अपने इस वक्तव्य को हम आगामी विवेचन में और भी स्पष्ट कर सकेंगे । यहाँ इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि हमारी दृष्टि में निराला जी के अब तक उपलब्ध काव्य की दो ही मुख्य साँियाँ दृष्टिगत होती हैं । समय की दृष्टि से इनमें से एक सरणी दूसरी सरणी की परवर्तिनी है । इसलिए हम निराला-काव्य को पूर्ववर्ती और परवर्ती भागों में रखकर उसके परवर्ती काव्य का अनुशीलन करना चाहते हैं ।

निराला के व्यक्तित्व में इस भिन्नता के कारण

(१) निराला का संघर्षमय जीवन— प्रश्न उठता है कि निराला जी के पूर्ववर्ती और परवर्ती काव्य की इस भिन्नता के क्या कारण हैं ? किन परिस्थितियों ने उनके प्रसन्न और उल्लासपूर्ण व्यक्तित्व को क्रमशः अवसाद और असंतुलित मानसिक अवस्था में परिणत कर दिया ।^१ उन परिस्थितियों को देखने के पहले यह आवश्यक है कि हम निराला की जीवनी और उनके व्यक्तित्व में होने वाले परिवर्तनों का परिचय प्राप्त कर लें और उन तिथियों पर भी दृष्टि डालें, जिनमें इस प्रकार का परिवर्तन घटित होने लगा था ।

यद्यपि निराला जी को जीवन के आरम्भ से ही संघर्षों का सामना करना पड़ा था; परन्तु तरुणावस्था में उन्होंने इन संघर्षों की परवाह नहीं की और विपरीत

१ प्रमाण में पं० नन्ददुलारे वाजपेयी जी का उद्धरण देना अप्रासंगिक न होगा— देखिये—हिन्दी-साहित्य बीसवीं शताब्दी, पृ० १३६, “कविताओं के भीतर से जितना प्रसन्न अथवा अस्सखलित व्यक्तित्व ‘निराला’ जी का है, उतना न ‘प्रसाद’ जी का है न पंत जी का ।”

परिस्थितियों के रहते हुये भी निरन्तर शक्ति-सौंदर्य और अह्लाद से भरी काव्य-रचनायें प्रस्तुत करते रहे। कविता के क्षेत्र में हम देख चुके हैं, कि सन् १९३६ तक की उनकी कविता की मुख्य चेतना उल्लासमयी है। यदि हम उनके गद्य में देखें तो उपन्यासों में उनकी अप्सरा (१९३१), अलका (१९३३), प्रभावती (१९३६) और निरूपमा (१९३६) कृतियाँ पूर्ण स्वच्छंदतावादी मनोवृत्ति का परिचय देती हैं। इसके पश्चात् उनकी उपन्यास रचना में नई प्रवृत्तियाँ दिखाई देने लगती हैं। बिल्लेसुर बकरिहा (१९४१), कुल्लीभाट (१९३९) और चमेली (१९४१) की अधूरी रचना में यद्यपि हास्य के पुट भी हैं, परन्तु इन सभी रचनाओं के केन्द्र में सामाजिक व्यंग्य और जीवन की कुरुपता का निर्देश प्रधान हो गया है। उनके अन्य दो अधूरे उपन्यास चोटी की पकड़ (१९४६) और काले कारनामे (१९५०) तो स्पष्ट रीति से उनकी अस्वस्थ मनोदशा का परिचय देते हैं। इसी प्रकार उनकी छोटी कहानियों में भी उनकी आदर्शवादी भावधारा सन् १९३७ तक काम करती रही। इसके पश्चात् उनकी कहानियाँ व्यंग्यात्मक हो चलीं। कहा जा सकता है कि इस प्रकार के परिवर्तन तो किसी भी लेखक या कवि में स्वाभाविक रीति से हो सकते हैं; परन्तु यहाँ हम निराला जी की जीवनी के उन अंशों को देना चाहते हैं, जिनमें यह प्रकट होता है कि यह परिवर्तन स्वतः निराला के व्यक्तित्व में होने वाले परिवर्तन की प्रतिक्रिया है।

सन् १९२७ के आस-पास 'मतवाला' का संपादन कार्य छोड़कर निराला जी कुछ दिनों तक अपने गांव गढ़ाकोला (जिला उन्नाव) में रहने लगे थे। इस समय तक उनकी एक भी उल्लेखनीय पुस्तक प्रकाशित नहीं हुई थी और उन्हें अर्थगम का कोई साधन न था। इनके दायित्व में इनका अपना परिवार, एक पुत्र और एक कन्या तो थी ही, इनके कई भतीजे और भतीजियाँ भी थीं, जिनका भरण-पोषण ये ही करते थे। गांव पर खेती-पाती की कोई ग्रामीण व्यवस्था भी न थी। फलतः निराला जी लखनऊ की गंगापुस्तकमाला प्रकाशन-संस्था में आये। इसी पुस्तकमाला से 'सुधा' पत्रिका भी प्रकाशित होती थी। उसके लिए लेख, कवितायें, लिखने लगे, परन्तु इस माध्यम से उनकी आय इतनी अल्प थी कि गृहस्थी का काम चलना कठिन था। इसीलिए सन् ३०-३१ में वे लखनऊ आकर रहने लगे और 'सुधा' पत्रिका के संपादकीय कार्य के अतिरिक्त उन्होंने उपन्यास और कहानियाँ लिखना प्रारम्भ किया। कविता और लेखों से जो काम नहीं चल सकता था, वह अब सम्पादकीय और उपन्यास लेखन से थोड़ा-थोड़ा चलने लगा। पर आर्थिक कठिनाइयाँ अब भी दूर नहीं हुईं। निराला जी के स्वभाव में मांगने की वृत्ति रंचमात्र भी नहीं रही है। अतएव जो कुछ मिल जाता था उसी से संतोष करना पड़ता था। उनकी उदारता उन्हें बाध्य करती थी, कि वे अपने प्रकाशकों से भी अधिक पैसा न माँगें। क्योंकि गंगापुस्तकमाला को छोड़ कर उनके अन्य प्रकाशक भी साधारण स्थिति के थे। गंगापुस्तकमाला

का व्यवसाय यद्यपि बड़ा था । पर जितना काम निरालाजी उसके लिये करते थे, वह अधिक न था; और उसी अनुपात में उन्हें द्रव्य भी कम मिलता था । फिर निरालाजी में स्वाभिमान की वृत्ति भी इतनी प्रमुख रही है कि वे किसी की एक बात सुनने वाले न थे । 'सुधा' के संपादकीय कार्य में यद्यपि उन्हें यथेष्ट स्वतंत्रता रहती थी, पर वे अपने मालिक को अपना मित्र समझ कर ही व्यवहार करते थे । इस मैत्री में दूसरे पक्ष से यदि लेशमात्र भी असम्मान का भाव दिखाई दिया तो, निराला जी के लिये वह असहनीय था । इन्हीं कारणों से निराला जी अधिक दिनों तक 'सुधा' का संपादकीय कार्य न कर सके ।

सन् ३२ में उन्हें फिर कलकत्ते का बुलावा आया । 'रंगीला' नाम का एक साप्ताहिक पत्र निकाला गया । पर यह पत्र भी कुछ दिन ही चल पाया, अथवा यों कहें कि निरालाजी का संपर्क इस पत्र से कुछ ही महीनों का रहा । सन् ३३ के पश्चात् निरालाजी फिर कुछ वर्ष लखनऊ में रहे ; परन्तु इस दौर में उन्होंने कहीं नौकरी नहीं की । किसी संस्था से संपर्क नहीं स्थापित किया । साहित्यिक लेखन के बल पर ही वे लखनऊ का अपना खर्च चलाते रहे; परन्तु उनके यहाँ मेहमानों की कमी न रहती थी कोई-न-कोई आया ही करता था । निरालाजी अपना ध्यान कम रखते थे, अतिथियों का अधिक । अच्छी-से-अच्छी खातिर में पैसे तो लगते ही थे । पैसे आते कहाँ से ? इसी समय उनका लड़का श्रीरामकृष्ण त्रिपाठी भी संगीत की शिक्षा के लिये लखनऊ के 'भातखंडे संगीत महाविद्यालय' में अध्ययन करने लगा उसका व्यय भी निरालाजी को वहन करना पड़ता था ।

(२) पुत्री का निधन परिवर्तित मनोभावना : सन् १९३५ के आसपास उनकी एकमात्र पुत्री सरोज का कुछ बड़ी कारुणिक परिस्थितियों में निधन हो गया । 'सरोज स्मृति' कविता में निरालाजी ने उस घटना को लेकर मर्मस्पर्शी उद्गार व्यक्त किये हैं । इसी समय से उनकी मनोदशा में परिवर्तन आने लगा । लखनऊ का लवाजमा उन्हें छोड़ देना पड़ा और तब से वह प्रायः अनि-केतन ही हो गये । कुछ दिन वे उन्नाव युग-मन्दिर में सुमित्राकुमारी सिन्हा तथा उनके पति चौधरी साहब के साथ रहे ।

सन् १९४१-४२ में निरालाजी एक वर्ष तक पंडित वाजपेयीजी के साथ रहे । इसके पहले भी वे काशी के नवाबगंज मुहल्ले में कुछ समय तक रहे थे । 'गीतिका' के अनेक गीत यहीं लिखे गये थे । इस अवधि में निरालाजी की व्यक्तिगत मनोदशा भी विकार की सूचना देने लगी थी । वे अकारण ही एक-ब-एक हँस पड़ते थे । कारण पूछने पर कोई उत्तर नहीं देते थे । कभी कभी अपने आप भी बातें करने लगते थे और अपने आप ही प्रश्न करते, और उत्तर भी दे देते थे । आरम्भ में वे बड़े

संकोच के साथ कहते थे कि उनका रवीन्द्रनाथ से इतने दिनों का घनिष्ठ संबंध है। वे उन्हीं के घराने के हैं; परन्तु जब उनके इस कथन का प्रतिवाद किया जाता था, तब वे चुप हो जाते थे। स्पष्ट है कि १९३६ से ४१-४२ तक का समय निरालाजी के व्यक्तिगत असंतुलन और विक्षेप का पहला चरण था।

(३) विक्षेप की स्थिति: इसमें संदेह नहीं कि सन् ४१ के पश्चात निरालाजी की मानसिक दशा और भी चिंताजनक होती गई है। वास्तविकता से दूर एक काल्पनिक स्थिति में अपने को डालकर व्यवहार करने और बरतने की वृत्ति बढ़ती गई है। पहले रवीन्द्रनाथ से जो पारिवारिक संबंध की धारणा बनी थी, वह आगे चलकर अन्य क्षेत्रों के लोगों से भी बनती गई। उदाहरण के लिये शारीरिक बल में वे गामा से बढ़ कर हैं, उसे पराजित कर चुके हैं। राजनीतिक भूमिका रप उनका मिलन और वार्तालाप चर्चिल अथवा अष्टम एडवर्ड आदि से होता रहा है। ऐसी अतिकल्पनायें धीरे-धीरे जड़ पकड़ती गई हैं। सन् ४७ में जब काशी में बड़े पैमाने पर उनकी जयंती मनाई जा रही थी, २-३ हजार जनसमूह के सामने उन्होंने अद्वितीय विक्टोरिया क्रॉस के प्राप्त करने की जो चर्चा की थी, उससे यह स्पष्ट होता है कि आपस की गोष्ठी या मंडली में ही नहीं, सार्वजनिक रूप में भी वे अपनी विशृंखल मनोवृत्तियों का इजहार करने लगे थे। इसके पश्चात निरालाजी की विक्षेप की स्थिति और भी उग्र हुई और उन्होंने अपने घनिष्ठ मित्र और आतिथेय उन्नाव के प्रतिष्ठित नागरिक श्री चौधरी महोदय से दुर्व्यवहार किया था, वह घटना साहित्यिकों से अविदित नहीं है।

सन् ५० के आसपास निरालाजी प्रयाग में रहने लगे। पिछले १० वर्षों से वे निरन्तर वहीं रहे हैं। इस अवधि में उनकी मनोदशा के बहुत से वर्णन पत्र-पत्रिकाओं में छपे हैं। कुछ लोगों ने यह बताने का प्रयत्न किया है कि निरालाजी की मानसिक स्थिति एकदम स्वस्थ है और उसमें विकार देखने वाले स्वयं विकृत बुद्धि के हैं। कभी-कभी उनके वक्तव्यों को जो अपने वास्तविक रूप में निरे निरर्थक हैं, कुछ लोगों ने गंभीर प्रतीक-आशय देकर अथवा आध्यात्मिक भूमिका पर ले जाकर समझाने की चेष्टाएँ की हैं; पर इस प्रकार की टीकाएँ निरालाजी का तो कोई उपकार करती नहीं, उनके उपचार में भी बाधक बनती हैं। अपनी वर्तमान दशा में निरालाजी को मन से निर्लिप्त बताना अथवा उनके किसी भी कार्य में विक्षेप की रचमात्र भी स्थिति न देखना निरी भ्रांति है। जब निरालाजी अपने यश में नहीं, जब उनकी सजग चेतना उनकी अंतश्चेतना के वशीभूत हो चुकी है, तब उनके कार्य में किसी उचित या अनुचित को ढूँढ़ना ही एक मिथ्या प्रयास है।

यहाँ एक दृष्टांत जो हमें अपने गुरुदेव पंडित बाजपेयीजी से प्राप्त हुआ है, उपस्थित करना अनुचित न होगा। पंडितजी निरालाजी के अत्यन्त निकटस्थ साथियों में रहे हैं और दोनों की अभिन्नता अशंकनीय रही है। निरालाजी ने पण्डितजी पर एक निबन्ध लिखा था जो 'चाबुक' नामक उनकी पुस्तक में बाद को प्रकाशित भी हुआ था। इससे दोनों के सम्बन्धों का पूरा पता लगता है। पर सन् १९५६-५७ में जब 'नागरी प्रचारिणी सभा' की ओर से पण्डितजी की स्वर्ण-जयन्ती मनाई जा रही थी, काशी से कई साहित्यिक उन्हे प्रयाग से काशी ले चलने आये थे; पर उस समय अन्य तथाकथित तर्कों के साथ जो विशेष तर्क देकर उन्होंने जाने से इनकार किया था, यह था कि मैं तभी जाऊँगा, जब महादेवीजी भी मेरे साथ चलें। निराश होकर लोगों को लौट आना पड़ा। इस घटना से यह स्पष्ट अनुमित होता है कि इतने अटूट आत्मीय सम्बन्धों को भी निरालाजी विस्मृत कर चुके थे। यह नहीं जिस तर्क की उन्होंने शरण ली, उसमें बौद्धिक तत्व का नितांत अभाव है।

यह उदाहरण केवल इस आशय से दिया जा रहा है कि हम यह अच्छी तरह समझ लें, कि इन वर्षों में निरालाजी को स्वस्थ और आध्यात्मिक समझने वाले लोग वास्तविक तथ्यों से कितने दूर जा पड़े हैं। बीमारी अन्ततः एक बीमारी है। उसे स्वीकार न करना, बल्कि उसे एक उदात्त या दिव्य स्थिति घोषित करना बीमारी के परिहार का तो साधन नहीं है। किसी वस्तु को उसकी वस्तुमुखी दृष्टि से ही देखना होगा। आज के वैज्ञानिक युग में प्रत्यक्ष स्थिति का परोक्ष समाधान बताना निरा अवैज्ञानिक है।

हाल ही कुछ घटनाओं से यह भी सूचित होता है कि निरालाजी अब निराला से भिन्न पूर्णतः एक नये व्यक्तित्व का अपने में प्रत्यय करने लगे हैं और कई बार यह कहते देखे गये हैं कि निराला या सूर्यकान्त त्रिपाठी प्रयाग में नहीं है। वे अन्यत्र चले गये हैं, और जो व्यक्ति वहाँ उपस्थित है, उसके पास केवल अपनी चाभी दे गये हैं। इस प्रकार की चेतना-परिणति विक्षेप की बहुत गहरी अवस्था की सूचक है। परन्तु उनके विक्षेप की इस परिणति के सामान्य निरूपण के साथ हम उनकी इस बात को नहीं भूल सकते कि निरालाजी की स्मृति अब भी अत्यन्त पैनी है और वे वर्षों पहले घटित हुई घटनाओं, अनेकानेक व्यक्तियों से वर्षों पहले हुई भेटों और उस समय की वार्ताओं को भी ज्यों का त्यों स्मरण रखते हैं। यही नहीं, जब वे प्रशांत मुद्रा में रहते हैं, तब उनकी बातचीत बिल्कुल ही आमफहम होती है। जब कभी वे साहित्यिक चर्चा छोड़कर ताश खेलने बैठते हैं, तब एक सधे हुए खिलाड़ी का सारा कौशल उनमें दिखाई देता है।

देखा यह गया है कि अत्यन्त घनिष्ट मित्रों और परिचितों से मिलने पर निरालाजी कुछ क्षण तो अत्यन्त प्रसन्न और भावान्वित दिखाई पड़ते हैं; पर कुछ क्षणों बाद उनकी स्थिति बदल जाती है और फिर वे कास्पनिक जगत में प्रवेश कर

जाते हैं। अपरिचितों या काल्परिचितों के समक्ष इस प्रकार की प्रतिक्रिया कम होती है। खासकर वे लोग, जो साहित्यिक नहीं हैं, या जिनसे निरालाजी का कोई पुराना परिचय नहीं है, निराला जी को मानसिक उत्तेजना नहीं देते। कदाचित् ऐसे लोगों के साथ ही वे ताश खेला करते हैं।

पूछा जा सकता है कि एक ओर निराला की यह विक्षेपावस्था और दूसरी ओर उनकी अस्खलित स्मृति-शक्ति, उनकी मार्मिक काव्य-रचना और उनका जमकर ताश खेलना, किस प्रकार एक सम्बन्ध-सूत्र से जोड़े जा सकते हैं? साधारणतः ये वस्तुएँ एक साथ नहीं रहा करती। इस प्रश्न के उत्तर में हम अपना यही अनुमान प्रकट कर सकते हैं कि निराला के सम्पूर्ण व्यक्तित्व में विक्षेप-दशा का आंशिक प्रभाव ही पड़ा है। उनका एक अंश, उनकी कुछ घड़ियाँ निश्चय ही विक्षेप की घड़ियाँ हैं; परन्तु उनकी दिनचर्या में स्वस्थ क्षण भी आते हैं। विशेषकर उनकी काव्य-रचना में उस स्थिति के चिन्ह मिलते हैं, जिसमें वे उत्तेजना के पश्चात् शांति की स्थिति में आते हैं। यह शांति की स्थिति जब-जब निर्बाध होती है, तब-तब वे एकदम निर्दोष कविताएँ लिखते हैं; पर ज्यों ही कुछ बाधा आई, तब उनकी कविता में भी उसके चिन्ह दिखाई देने लगते हैं। संभवतः साधारण व्यक्तियों के पागलपन से निराला का पागलपन भिन्न प्रकार का है। निराला जी एक गिसर्गजात कवि और कलाकार भी हैं अतः वर्तमान स्थिति में भी उनकी काव्य और कला-चेतना बरकरार है। उसमें अवरोध अवश्य आते हैं। कदाचित् इसीलिए उनकी साहित्यिक रचना इन दिनों न्यून हो गई है, परन्तु वह कला-चेतना निष्क्रिय नहीं हुई है। अब भी वे उत्तम कलात्मक सृष्टियाँ कर लेते हैं, पर अब वे लम्बे बड़े मजबूत नहीं लिख पाते। कल्पना-छवियों का वह संग्रथन और प्रवाह अब नहीं दिखा पाते जो अपनी पूर्ववर्ती रचनाओं में अबाध रूप से दिखाते रहे हैं। परन्तु छोटी-छोटी काव्य-कृतियाँ वे अब भी प्रस्तुत करते हैं, जिनमें उनकी तात्कालिक आत्म-वेदना निहित रहती है। उनमें से अनेक अपनी छोटी सीमा में अतिशय मार्मिक हैं। जब कभी वे बड़े आख्यानों को लेकर चले हैं, आधी दूर से ही लौट आये हैं या थककर बैठ गये हैं, जैसे उनके अंतिम उपन्यास 'काले कारनामे'^१ और 'चोटी की पकड़' हैं।^२ पिछले कुछ वर्षों से तो उन्होंने आत्म-वेदना की सूचना देने वाले आत्म-निवेदन की भावना से ओतप्रोत छोटे-छोटे गीतों की ही रचना की है।

१ निराला : काले कारनामे (अधूरा प्रकाशित) १९५० इलाहाबाद, केसरवान प्रेस—पृ० ८०।

२ निराला : चोटी की पकड़ (अधूरा) १९५६ (प्रथम सात भाग) इला कि० भ०, पृ० १६७।

● बाह्य परिस्थितियों में इस भिन्नता के कारण

निरालाजी के व्यक्तित्व में क्रमशः आने वाली भिन्नता और विशेषकर उनके मानसिक विश्लेष की स्थितियों को देख लेने के पश्चात् अब हम उन स्थितियों को देखना चाहते हैं, जिनके प्रभाव से निराला के व्यक्तित्व में इस प्रकार का परिवर्तन घटित हुआ है। विद्रोह और सौम्यता का, क्रान्ति और शान्ति का स्वरूप निरालाजी के व्यक्तित्व को अन्तर्विरोधात्मक रूपों में सामने लाता है। अन्तर्विरोधों में सामंजस्य की स्थिति है तथा उस सामंजस्य की विकट आस्था पर निरालाजी विद्यमान रहे हैं ॥ यहाँ सामान्य रूप से संपूर्ण भारतीय परिस्थितियों में होने वाले परिवर्तन का उल्लेख करना भी उपयोगी हो सकता है। परन्तु यहाँ हम विशेषरूप से उन परिस्थितियों का उल्लेख करना चाहते हैं, जिन्होंने निराला के व्यक्तित्व को नये मोड़ दिये हैं और उन्हें क्रमशः अवसाद और विक्षेप की स्थिति में ला पहुँचाया है ॥ व्यक्तित्व की पहचान उन्हें सन् १९१५ से होने लगी थी जब कि निरालाजी किशोरावस्था को पारकर तरुण आयु में प्रवेश करने लगे थे, और जब उन्हें अपने दायित्व को समझने का बोध हो चला था। उनके सभी संस्मरण-लेखकों ने और स्वयं उन्होंने भी इस बात की सूचना दी है कि उनका आरम्भिक समय काफी अच्छी परिस्थितियों में व्यतीत हुआ था। यद्यपि उनके पिता बंगाल के महिषादल स्टेट में एक साधारण कर्मचारी थे, पर निरालाजी का साहचर्य विशिष्ट व्यक्तियों से हो गया था और वे उनके साथ रहकर अच्छी जानकारी प्राप्त कर लेते थे। फुटबाल खेलने में वे काफी निष्णात थे और राजदरबार में उपलब्ध अन्य सुविधाओं का भी वे उपयोग करने लगे थे; परन्तु पिता के निधन (सन् १९१८-१९) के पश्चात् उनको स्टेट में ही नौकरी करने को बाध्य होना पड़ा; परन्तु जिस स्थान पर वे राजपरिवार के लोगों के समक्ष होकर रहे थे, वहीं उनका अनुचर होकर रहना स्वभावतः उनके अनुकूल न था। फिर निरालाजी की प्रकृति में महत्वाकांक्षा के बीज भी बड़ी मात्रा में मौजूद थे। फलतः उन्हें महिषादल की नौकरी छोड़ देनी पड़ी। कलकत्ता जाकर स्वतन्त्र लेखन का कार्य अपनाना पड़ा। सन् १९२३ के आसपास आचार्य महावीर-प्रसाद द्विवेदी के प्रयत्न से रामकृष्ण आश्रम से प्रकाशित होने वाले दार्शनिक, आध्यात्मिक 'समन्वय' पत्र के सम्पादक का कार्य मिल गया।

कुछ ही समय के पश्चात् कलकत्ता से 'मतवाला' नामक साहित्यिक पत्र प्रकाशित हुआ और निरालाजी उसके सम्पादकीय विभाग में आ गये। सन् २४ से २७ तक निरालाजी की कविताएँ 'मतवाला' में प्रकाशित होती रहीं। इसे ही हम उनकी काव्य-रचना का स्वर्णकाल कह सकते हैं। 'मतवाला' में रहते हुये निरालाजी

१ रामकृष्ण त्रिपाठी का लेख-मेरे पिता निराला-(साप्ताहिक हिन्दुस्तान-निराला-अंक) ११ फरवरी ६२, पृ० ३६।

को किसी प्रकार की आर्थिक कठिनाइयाँ नहीं थीं। उनकी सारी आवश्यकताओं की पूर्ति 'मतवाला' के संचालक श्री महादेव प्रसाद सेठ किया करते थे। वास्तविक स्वच्छंदतावादी प्रकृति की अधिकांश रचनायें इन्हीं दिनों प्रकाशित हुई थीं। इस समय निरालाजी युवावस्था के शीर्ष-बिन्दु पर थे और उनकी प्रतिभा अपने पूर्ण उन्मेष में थी। सन् २८ के पश्चात् भारतीय परिस्थितियों में और विशेषकर निरालाजी के साथ एक बड़ा परिवर्तन घटित हुआ। वे कलकत्ता से बीमार होकर घर चले आये और कुछ दिनों तक काशी में रहे। इसके पहले ही निरालाजी पर और भी पारिवारिक संकट आ चुके थे। उनकी पत्नी तथा अन्य कुटुम्बियों का प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात् आने वाली महामारी (सन् १८-१९) में एक साथ निधन हो गया था। इस मानसिक आघात से वे निकल ही रहे थे कि वे कलकत्ता में एक संक्रामक रोग से आक्रांत हो गये। निराला की जीवन-परिस्थितियाँ अधिक गंभीर हो चली थीं। सन् १९३० के पश्चात् विश्वव्यापी सस्ती का दौर आया। जिसका सबसे बुरा परिणाम यह पड़ा कि लोगों को नौकरियों की कठिनाई हुई। यद्यपि चीजें सस्ती थीं, पर किसान और मध्यवर्ग के लोगों को खरीदने के साधन नहीं रहे थे। बेरोजगारी अपनी चरम सीमा तक फैल गई थी। सन् ३३ के पश्चात् इस परिस्थिति में कुछ परिवर्तन हुआ, फिर भी व्यवसाय मंदा ही बना रहा। कोई ऐसा साप्ताहिक या मासिक पत्र नहीं था, जिसमें निरालाजी को पूरे समय का कार्य मिल सकता। फलतः इन वर्षों में निरालाजी को कठिन आर्थिक परिस्थितियों का सामना करना पड़ा, जिसने उनकी मानसिक स्थिति को काफी विचलित और क्षुब्ध कर दिया। निरालाजी में सामाजिक परिस्थितियों के प्रति व्यंग का भाव इसी समय उत्पन्न हुआ था, और उनके काव्य में दिखाई देने वाली यथार्थोन्मुखी प्रवृत्तियाँ उदय होने लगी थीं। साम्राज्यवादी अनुशासन के पहिये में निरंतर घूमता हुआ भारत का भविष्य, भाग्य के सहारे प्रयत्न तो कर रहा था, कर्मशक्ति के अभाव में किसी निश्चित लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर पा रहा था। अंग्रेजी शासन के प्रति उदारवादियों के सुझावों और सुधारों की मांगें तथा मध्यवर्ग की मानसिक दासता से जो पंगुता आ गयी थी, उसने जनमानस की आत्मा को केवल चिंतित ही नहीं किया था, बरन अतीतोन्मुखी आदर्श पर भाग्यवादी भी बना दिया था। निराला का कवि-व्यक्तित्व, अनुभूति की व्यंजना में नहीं, अनुभवगत विचारधारा में व्यक्त होता है। यही कारण है कि विषय को बौद्धिक धरातल से देखने के कारण शिल्प और निवेदन-योजना में स्वच्छन्दता दिखायी देती है। निराला के काव्य में जो बौद्धिकता दिखाई देती है, वह हिन्दी प्रदेश के मन पर पड़े अनेकमुखी भारवाही स्वरूपों को व्यक्त करती है। गांधीजी से सन् १९३६ की निरालाजी की भेंट और इण्टरव्यू की कटु-स्थिति; फिर हिन्दी-हिन्दुस्तानी के मामले में गांधी जी तथा नेहरू जी से उनकी बातचीत और फैजाबाद के अधिवेशन में राजनीति बनाम साहित्य का उनका विवाद इसी समय की घटनायें हैं। सामान्यतः यह

प्रश्न अपने में महत्वपूर्ण तो थे; पर निराला जी के लिये इनकी इतनी बड़ी अहमियत कदाचित्त इसलिये थी, कि उनकी व्यक्तिगत परिस्थितियां उन्हें कठोर यथार्थ के अधिक समीप ले जा रही थी। सन् १९३६ के पश्चात्, जब हिन्दी में 'प्रगतिवादी आन्दोलन' का सूत्रपात हुआ तब निराला जी ने मार्क्सवाद की द्वंद्वात्मक भौतिकवादी विचारणा को कभी नहीं अपनाया; परन्तु वे अपने लेखों और कविताओं में सामाजिक वैषम्य और विडम्बनाओं को अधिकाधिक चित्रित करने लगे। निरालाजी के इस दृष्टि-परिवर्तन में भी उनके परवर्ती काव्य के वैचारिक आधार पाये जाते हैं। यद्यपि यह परिवर्तन कोई सैद्धान्तिक परिवर्तन नहीं था। यह मूलतः भावात्मक परिवर्तन ही था। निरालाजी के काव्य-साहित्य में इसका अपना महत्व है।

सन् १९३६ में द्वितीय महायुद्ध के प्रारंभ हो जाने पर श्रमजीवी लेखकों के लिए और भी कठिन परिस्थिति आ गई। वस्तुओं के मूल्य क्रमशः बढ़ने लगे और बेकार बैठना किसी के लिये सम्भव न रहा। जो स्वतंत्र लेखक कोई नियमित वेतन नहीं पाते थे, नौकरी करने को बाध्य हो गये। जिस मात्रा में वस्तुओं के मूल्य में वृद्धि हुई थी, उस मात्रा में आय में वृद्धि तो हुई ही नहीं। अतएव लेखकों के लिए युद्ध की परिस्थिति और भी जटिल हो गई। इसी युद्धकाल में निराला जी ने 'चोटी की पकड़' और 'काले कारनामे' उपन्यास लिखने का प्रयत्न किया, परन्तु तब तक उनकी मनःस्थिति इतनी विश्रृंखल हो चुकी थी, कि यह उपन्यास पूरे नहीं किये जा सके।

द्वितीय महायुद्ध के कुछ आगे बढ़ने पर सन् ४२ के आसपास जब सभी चीजें बहुत मंहगी हो गईं, लेखकों और कवियों ने अपने प्रकाशकों से रायल्टी नियमित रूप से मांगनी शुरू की। इसके पहले न तो पुस्तक का कापीराइट ही किसी बड़े मूल्य पर बिकता था और न रायल्टी के विषय में लेखकों को कोई बड़ी तत्परता रहती थी। पर युद्धकाल में यह तत्परता बहुत बढ़ गई और लोग एक एक पैसे का हिसाब रखने लगे। पर निरालाजी के प्रकाशक आरंभ से ही उनकी पुस्तकों के कापीराइट खरीदे बैठे थे। उस समय तक का कापीराइट कानून भी लेखकों के पक्ष में अत्यधिक अनुदार था किसी लेखक को कापीराइट बेचने के बाद अनिर्दिष्ट समय तक एक भी पैसा पाने का हक न था। कापीराइट की इस गड़बड़ी के कारण ही निराला जी को अधिक कष्ट रहने लगा और इसी कारण वे अपना स्वतंत्र-वास-स्थान छोड़कर अपने मित्रों के साथ रहने लगे। सन् ४७ के पश्चात् यद्यपि वस्तुओं के मूल्य में कीर्ति विशेष कमी नहीं आई, पर स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् कापीराइट कानून में कुछ महत्वपूर्ण परिवर्तन किये गये, जिससे लेखकों को थोड़ी बहुत राहत मिली। निरालाजी के सम्बन्ध में तो कुछ प्रमुख राष्ट्रीय नेताओं ने भी व्यक्तिगत ध्यान दिया, जिसके कारण निरालाजी को नियमित आर्थिक सहायता मिलने लगी। उनकी चिकित्सा की समुचित व्यवस्था की गई और उनके प्रकाशकों से भी उनकी पुस्तकों के कापीराइट उठा लेने का प्रस्ताव किया गया, जिससे निरालाजी की आर्थिक और शारीरिक स्थिति

कुछ सुधार सकी; परन्तु निराला के मानसिक विक्षेप में सुधार का कोई स्पष्ट परिणाम नहीं दिखाई दिया।

● परवर्ती काव्य की एक स्वतन्त्र सत्ता और उसके विश्लेषण का औचित्य

इस अध्याय में हमने निराला के काव्य की गतिविधि पर एक सामान्य दृष्टि डाली है और यह देखने का प्रयत्न किया है कि उनके समस्त काव्य को पूर्ववर्ती और परवर्ती जैसे दो विभागों में ले सकते हैं या नहीं। इस प्रकरण में हम यह देख सके हैं कि निराला की कविता पूर्ववर्ती और परवर्ती खंडों के अतिरिक्त एक तीसरा खंड भी रखती है; इसी को उनकी संक्रांतिकालीन कविता कह सकते हैं। उनके काव्य का पूर्वाद्ध सन् १९१६ से ३५ तक अबाध गति से चलता रहता है। यद्यपि यत्र तत्र सन् ३५ के पहले भी कुछ रचनाएँ ऐसी हैं जो निराला की भावात्मक और स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियों का अपवाद भी कही जा सकती हैं। उदाहरण के लिए 'मित्र के प्रति' (७-७-३५) कविता इसी प्रकार की है, जिसकी शब्दावली में भी कुछ अन्तर आ गया है। इसमें एक स्थान पर अर्-वर् और टर्-टर् प्रयोग भी मिलते हैं, जो निराला की सामान्य सौंदर्य दृष्टि के बिल्कुल विपरीत हैं। इसी प्रकार पूर्वाद्ध की कुछ अन्य कविताएँ भी उनकी बदलती हुई मनोवृत्ति का परिचय देती हैं। यथा-हिन्दी के सुमनों के प्रति पत्र (६-८-३७) बनवेला, (११-७-३७) टूँठ (१९-९-३७) आदि। निराला की संक्रांतिकालीन कविताओं की प्रकृति पर हम आगामी अध्यायों में विचार करेंगे। ये सभी कविताएँ सन् ३६ से ४० तक लिखी गई हैं। इनमें 'राम की शक्तिपूजा', 'तुलसीदास' मुख्य हैं; परन्तु कुछ और भी रचनाएँ हैं जिनका उल्लेख हम यहाँ कर रहे हैं। यथा-सेवा प्रारम्भ (७-१२-३७) नर्गिस (२-५-५८) आदि। इन संक्रांतिकालीन कविताओं को यद्यपि कई भागों में रखकर देखा जा सकता है, परन्तु मुख्यतः ये या तो एक अतिरिक्त पांडित्य के दबाव से अपना स्वाभाविक प्रभाव और प्रवेग घटा बैठी हैं अथवा एक मानसिक अवसाद और शैथिल्य का परिचय देने लगी हैं। यद्यपि इस संक्रांतिकाल की रचनाओं में निरालाजी की विक्षेप-दशा के स्पष्ट चिन्ह नहीं मिलते, परन्तु वे अपनी स्वाभाविक कवि की पराकाष्ठा पर पहुँच कर धीरे-धीरे नीचे की ओर ढलने लगी थीं, यह स्पष्ट आभास मिलने लगता है। इस सम्बन्ध का कुछ अधिक विवरण हम आगामी अध्यायों में देंगे। जिस प्रकार निराला की पूर्वाद्ध की कविताओं में कुछ परवर्ती काव्य की सूचनाएँ मिलने लगती हैं, उसी प्रकार उनके उत्तराद्ध के काव्य में भी पूर्ववर्ती कविता की प्रांजल भावधारा स्थान-स्थान पर मिलती रहती है। बल्कि हम यह कह सकते हैं कि उनकी सन् ३५ तक की कविताओं में उनका ओजस्वी और उच्छ्रंखल व्याक्तत्व ही अधिकतर प्रतिबिंबित हुआ है और दूसरी प्रकार की रचनाएँ बहुत कम हैं। इसकी अपेक्षा अनुपात की दृष्टि से उनकी परवर्ती रचनाओं में पूर्ववर्ती काव्य के अधिक स्मृति-चिन्ह मिलते हैं। जो कुछ हो; इतना तो स्पष्ट है कि निराला के काव्य को पूर्वाद्ध और उत्तराद्ध में बाँटने के

काफी आधार मिलते हैं और इस प्रबन्ध में हम उनके परवर्ती काव्य का अध्ययन करने जा रहे हैं। यह भी कह देना अनुचित न होगा कि निराला के परवर्ती काव्य की मूलभिन्नता उनके व्यक्तित्व के साथ जुड़ी हुई है और ज्यों-ज्यों उनकी मानसिक स्थिति विक्षेपों से आक्रान्त होती गई है, त्यों-त्यों उनका परवर्ती काव्य उसकी छाया से समन्वित होता गया है। हम यह नहीं कह सकते कि इस परवर्ती काव्य के कोई सबल और उत्कर्ष-विधायक आधार नहीं हैं। आरम्भिक स्वच्छन्दतावादी भूमिका से आगे बढ़कर उन्होंने तटस्थ भूमि पर सामाजिक जीवन के नये परिवर्तनों को नहीं देखा है। उनके अनुभवों और विचारदृष्टि में कोई नये रचनात्मक तथ्य नहीं आये हैं; पर इन बलशाली तथ्यों की मात्रा अपेक्षाकृत कम अवश्य है। अधिकतर उनके परवर्ती काव्य में उनके गिरते हुए मानसिक स्वास्थ्य का प्रभाव व्याप्त है। अन्य उपकरण भी हो सकते हैं और हैं; पर हमारी दृष्टि में ये अन्य उपकरण इतनी अधिक मात्रा में नहीं हैं कि इनके आधार पर निराला के परवर्ती काव्य को उनके पूर्ववर्ती काव्य से अलग कर सकें।

इस सम्बन्ध का अधिक विवरण-पूर्ण विवेचन हम आगे के अध्याय में करेंगे।

● परवर्ती काव्य की तिथि-स्थापना

अन्त में हम निराला के पूर्ववर्ती और परवर्ती काव्य की विभेदक तिथियों की स्थापना करना चाहते हैं। निरालाजी की जीवनी का संक्षेप में परिचय देते हुये हम यह कह चुके हैं कि कन्या सरोज की मृत्यु के पश्चात् निराला जी के संघर्षमय व्यक्तित्व को एक बड़ा धक्का लगा था; क्योंकि यह मृत्यु बहुत ही असामयिक थी और अत्यन्त विवशतापूर्ण परिस्थितियों में घटित हुई थी। इस पुत्री के प्रति निरालाजी की कितनी मोह-ममता थी, यह 'सरोज स्मृति' को पढ़ने पर स्पष्ट हो जाता है। यहाँ से निराला जी की आस्थामयी रागिनी का स्वर बदल जाता है और वे जीवन के प्रति व्यंग और परिहास की प्रतिक्रियायें व्यक्त करने लगते हैं। इन्हीं वर्षों के आस-पास उन्होंने 'बिल्लेसुर बकरिहा' और 'कुल्लीभाट' जैसी विडम्बना-प्रधान औपन्यासिक कृतियाँ प्रस्तुत कीं, जो स्पष्टतः इनके आरम्भिक उपन्यासों से नाता तोड़ चुकी थीं। अब निरालाजी के लेखन में जीवन के कुरूप पक्षों का प्राधान्य होने लगा था, जिसे कुछ लोग उनका यथार्थवादी पक्ष कहते हैं। परन्तु यथार्थवाद के जो वास्तविक सबल पक्ष हैं, अधिक नैतिक और अधिक न्यायपूर्ण सामाजिक जीवन के प्रति जो यथार्थवाद की निष्ठा है, वह इन कृतियों में पूरी तरह अभिव्यक्त नहीं हुई है। उनकी कहानियों में भी जो नये यथार्थवादी चित्र आये हैं वे प्रकृतिवाद (Naturalist) भूमिका से कम ही ऊपर उठ पाये हैं। फिर भी शैली और मनोभावना में परिवर्तन की सूचनायें ये सभी कृतियाँ देती हैं। इस समस्त साक्ष्य को विचारार्थ लेकर देखने पर हम यह अनुमान कर सकते हैं कि सन् १९३५ से लेकर सन् १९३९ तक के बीच ही कहीं वह तिथि है, जिसे निराला की पूर्ववर्ती और परवर्ती काव्य की मध्यस्थ तिथि कहा

ना सकता है। यदि हम ३५' और ३६' के बीच १९३८ के वर्ष को उनके परवर्ती काव्य का आरम्भ-वर्ष मानें तो विशेष अनुचित न होगा। सन् ३८ की ५ जनवरी को लिखी गई द्वितीय 'अनामिका' में प्रकाशित हुई उनकी 'मरणदृश्य' कविता में ये पंक्तियाँ आई हैं—

// विश्व सीमाहीन ।
 बाँधती जाती मुझे कर-कर
 व्यथा से दीन ।
 कह रही हो—“दुःख की विधि—
 यह तुम्हें ला दी गई निधि
 विहंग के वे पंख बदले,—
 किया जल का मीन ।
 मुक्त अम्बर गया, अब हो
 जलधि-जीवन को ।” //

उपरोक्त पंक्तियों में निरालाजी ने 'मुक्तअम्बर' के स्थान पर 'जलधि-जीवन' दिये जाने की बात लिखी है। कदाचित् यह उनकी ऐसी अतरंग अनुभूति थी, जिसका बोध उन्हें इस समय तक हो चुका था। ये पंक्तियाँ निराला के पूर्ववर्ती काव्य को उनके परवर्ती काव्य से पृथक् करने वाली प्रतीक पंक्तियाँ मानी जा सकती हैं।

निराला के पूर्ववर्ती और परवर्ती काव्य में अन्तर

● निराला का काव्य-विकास:

निराला के काव्य-विकास पर एक सरसरी दृष्टि डालने पर हमें उनकी पूर्ववर्ती और परवर्ती रचनाओं का प्रकृतिभेद दिखाई देता है। यद्यपि इन दोनों काव्य-युगों की विभेदक रेखा किसी निश्चित तिथि द्वारा संकेतित नहीं की जा सकती। और यह स्वाभाविक और संभव ही नहीं है कि किसी भावनावान कवि का काव्य किसी एक ही दिन, माह या वर्ष में ही कोई नया मोड़ लेले। बहुत दिनों तक संक्रांति की अवस्था चला करती है और धीरे-धीरे ही एक धारा बदल कर दूसरी धारा में लीन होती है। यह भी देखा जाता है कि पूर्ववर्ती कृतियों में बहुत पहले से परवर्ती कृतियों के कुछ उपकरण मिलते रहते हैं, और इसी प्रकार परवर्ती कृतियों में भी पूर्व की कृतियों के लक्षण और उदाहरण मिलते हैं; फिर भी प्रकृति और प्रवृत्ति के भेद से इन दो धाराओं का अन्तर स्पष्ट हो जाता है और हम कोई निश्चित समय भले ही न निर्धारित कर सकें, परन्तु स्थूल रूप से बदली हुई काव्य-प्रवृत्तियों का समय-संकेत तो किया ही जा सकता है। यहाँ हम निराला के काव्य-विकास को इस अभिप्राय से देखने का प्रयत्न करेंगे कि हम उनके पूर्ववर्ती और परवर्ती काव्य के बीच भिन्नता की भूमियों को परख सकें और, यदि सम्भव हो, तो इन दोनों के बीच की विभाजक समय की रेखा का भी प्रत्यय या अनुमान कर सकें।

● पहली 'अनामिका' 'परिमल' और 'गीतिका'

यों तो निरालाजी की कविता सन् १६ के आसपास लिखी जाने लगी थी, पर उनका पहला काव्य-संग्रह 'अनामिका' नाम से सन् १९२३ में प्रकाशित हुआ था। 'अनामिका' विशुद्ध स्वच्छन्दतावादी कृति है। 'पंचवटी' की स्वच्छन्द वनस्थली में विहार करती हुई राम और सीता की प्रथम झांकी सौन्दर्य और वीरत्व के मिलन की ही परिचायिका है। प्रकृति की सौंदर्य-भूमि पर नारी की सुन्दर मूर्ति और वीर पुरुष का संग, इससे बढ़कर स्वच्छन्दतावाद के उपकरण और क्या होंगे? फिर लक्ष्मण की कुमार मूर्ति, सीता और लक्ष्मण की विनोदवार्ता और लक्ष्मण का मातृ-स्नेह सुख की परिपूर्णता का प्रतीक बन गया है। इसी अवसर पर शूर्पणखा का प्रवेश इस रोमेण्टिक परिदृश्य को सक्रियता देता है। अंततः लक्ष्मण का भावात्मक

आदर्श और राम का दार्शनिक विवेचन इस नाट्य-रचना को परिपूर्णता प्रदान कर रहे हैं। यहाँ कहीं भी विक्षेप का स्वर नहीं। यदि हिन्दीसाहित्य में स्वच्छन्दतावाद की किसी एक कृति को प्रतिनिधि रूप में लेने का प्रश्न हो, तो बहुतांश की दृष्टि निराला जी की पहली 'अनामिका' पर जायेगी।

निरालाजी की 'मतवाला' काल की रचनाएँ जो सन् २४ से २७ तक प्रणीत हुई थीं, 'परिमल' संग्रह में सन् १९३० में प्रकाशित हुईं। 'अनामिका' की प्रशंसा और प्रसन्न भावधारा में कुछ नये तत्व जुड़े। ओजस्विता, प्रखरता और प्रवेग की दृष्टि से 'परिमल' की कुछ रचनाएँ नूतन दिशा का संकेत करती हैं। 'जागो फिर एक बार', 'महाराज शिवाजी का पत्र', 'बादलराग', आदि ऐसी ही कृतियाँ हैं। साथ ही निराला जी की गीतसृष्टि भी यहीं से प्रारम्भ होती है। 'परिमल' के गीत प्रकृति सौंदर्य और ऋतु-सौंदर्य से संबन्धित हैं। 'यमुना' में अतीत का स्वर्णस्वप्न समाया हुआ है। ये सब छायावाद या स्वच्छन्दतावाद की नई भूमियाँ हैं, जिनसे निराला जी का काव्य समृद्ध हुआ है। इन समस्त रचनाओं में प्रयास की कृत्रिमता कहीं नहीं है। ये यौवन काल की आस्थामयी अभिव्यक्तियाँ हैं।

निराला जी की गीत-रचनाओं का एक संग्रह 'गीतिका' नाम से सन् ३६ में प्रकाशित हुआ। 'गीतिका', के गीत कुछ वर्ष पहले से ही लिखे जा रहे थे। उनका प्रकाशन कुछ विलंब से हुआ। निरालाजी की प्रायः सभी कृतियाँ अपने निर्माणकाल के कुछ वर्ष बाद ही प्रकाशित हुईं। यद्यपि 'गीतिका' में स्वच्छन्द भावभूमि पर कतिपय रचनाएँ भी हैं, कुछ ऋतु गीत भी हैं, किन्तु अधिकांश गीतों में नारीसौंदर्य की मनोरम झांकियाँ ही मिलती हैं। यह शृंगार सौंदर्य की निर्मल भूमि पर प्रतिष्ठित है और निरालाजी की वस्तुचित्रण की प्रतिष्ठा सर्वत्र अपनी झलक दिखाती जाती है। इन गीतों में कहीं भी वैयक्तिक प्रणय-निवेदन नहीं है। छायावादी या स्वच्छन्दतावादी रचनाओं में पंतजी ने जो वायवीय वातावरण बनाया था, अथवा प्रसादजी ने विरहवेदना का जो पुट भरा था, वह निराला जी के इन प्रसन्न गीतों में नहीं दिखाई देता। कदाचित् इसीलिये आचार्य शुक्लजी ने निराला के काव्य में वास्तविक स्वच्छन्दतावाद की स्थिति मानी है। 'गीतिका' में यत्रतत्र वे संघर्षात्मक अनुभूतियाँ हैं, जो आगे चलकर और भी प्रगाढ़ बन गई हैं और क्रमशः उनके परवर्ती काव्य में परिणत हो गई हैं। एक उदाहरण देना आवश्यक प्रतीत होता है।

“बहुवस्तु स्पर्शिनी प्रतिभा निराला जी में है। 'अज्ञात प्रिय' की ओर इशारा करने के अतिरिक्त इन्होंने जगत के अनेक प्रस्तुत रूपों और व्यापारों को भी अपनी सरल भावनाओं के रंग में देखा है।”

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास,
दसवाँ संस्करण, पृ०—७१६, १७।

मैं बहुत दूर का थका हुआ
चल दुख कर श्रम-पथ, रुका हुआ
आश्रय दो आश्रम-वासिनी,
मेरी हो तुम्हीं सहारा ।
वह खुला न द्वार दिवस बीता,
हो गई निरर्थक सकल—गीता ।'

● अनामिका (द्वितीय)

सन् १९३८ में 'अनामिका' नाम से निरालाजी की एक दूसरी पुस्तक प्रकाशित हुई, जिसमें पहली 'अनामिका' के कोई अंश नहीं है। इस दूसरी 'अनामिका' में सामाजिक विद्रोह के भाव अधिक मुखर हुये हैं। 'प्रेयसी' (१६-१०-३५) कविता इसका उदाहरण है। 'रेखा' नामक रचना में आत्मजीवनी के अंश दिखाई देते हैं। जीवन के प्रति महान् आस्था व्यक्त करने वाली और अवरोधों को पराजित करने वाली प्रगल्भ रचनायें हैं। हम कह सकते हैं कि ये कवितायें निरालाजी की स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियों के सशक्त उदाहरण हैं। परन्तु इसी 'अनामिका' में 'सरोज-स्मृति' (९-१०-३५) जैसी वैयक्तिक जीवन से संबन्धित एक वेदनागाथा भी है। वनबेला (११-७-३७) जैसी सामाजिक वैषम्य पर आक्रोश प्रकट करने वाली कृति भी है। जिसमें एक अन्तर्व्याप्त करुणा की आभा प्रमुख हो गई है। इसी में राजनैतिक प्रवंचना और विकृति का संकेत-स्वर भी मुखर हो उठा है। इन रचनाओं को देखकर यह स्पष्ट होने लगता है कि सन् ३५-३६ के आस-पास निरालाजी के काव्य में स्वच्छन्दतावादी तरलता के पश्चात् एक नया भावगांभीर्य, सामाजिक और राजनैतिक वैषम्य के प्रति एक स्पष्ट आक्रोश उत्पन्न हो गया है। सन् १९३७ में लिखी गई 'तोड़ती पत्थर' शीर्षक कविता को समीक्षकों ने निरालाजी के काव्य में एक नई दिशा का आनयन करने वाली रचना कहा है। स्वर्गीय सौंदर्य से उतर कर पृथ्वी की कुरूपता की ओर दृष्टिपात इस कविता की मूलविशेषता है। शैली की दृष्टि की 'खुला आसमान' (६-१-३८) जैसी यथातथ्य चित्रण करने वाली प्रवृत्ति भी इस संग्रह में उपलब्ध होती है।

● संक्रांतिकाल : 'द्वितीय अनामिका,' 'तुलसीदास' और 'अणिमा'

सन् ३६ से ३९ तक निराला का काव्य एक संक्रांति की स्थिति को पार करता हुआ दिखाई देता है। एक ओर जहां वे स्वच्छन्द सौंदर्य-चेतना के क्षितिज से उतरकर मानवीय जगत के करुण और रौद्र दृश्यों का साक्षात्कार करते हैं वहीं

दूसरी ओर वे 'राम की शक्तिपूजा' और 'तुलसीदास' जैसी उदात्त और आख्यानक कृतियों का आलेखन भी करते हैं। सामान्य दृष्टि से देखने पर ऐसा जान पड़ता है कि ये दोनों परस्पर-विरोधी प्रवृत्तियाँ हैं। पर निराला जी के व्यक्तित्व के साहचर्य में रखकर इन कविताओं को देखने से एक दूसरी धारणा बनती है। सन् १६ से ३५ तक निरालाजी की कविता एक समतल भूमि पर खड़ी दिखाई देती है। हल्की दार्शनिक आभा से आलोकित ये रचनायें स्वच्छंद श्रृंगार और प्रमोद की परिचायिका हैं। इस सम्पूर्णकाल में यद्यपि वैयक्तिक वेदना की प्रतिध्वनियाँ भी मिलती हैं, पर वे अत्यधिक विरल हैं और एक ओजस्विता के समारोह में विलीन हो गई हैं। परन्तु सन् ३६ के पश्चात् निरालाजी के काव्य की समतल भूमि खिसकती हुई प्रतीत होती है। एक ओर सांसारिक अनुभवों की कठोरता और दुर्निवारता उन्हें गन्म यथार्थ की गहराइयों में खींच रही है, तो दूसरी ओर निरालाजी की कल्पना 'तुलसीदास' तथा 'राम की शक्तिपूजा' (२३-१०-३६) जैसी कृतियों में आदर्शात्मक उड़ानें भरती हुई दृष्टिगत होती हैं। खिंचाव दोनों दिशाओं में है। नीचे की ओर भी, ऊपर की ओर भी। यद्यपि निराला जी की शक्तिमत्ता अब भी टूटकर बिखरी नहीं है, पर उस पर गहरे तनाव अवश्य आ गये हैं। जहाँ तक हम देख पाते हैं, उनकी 'राम की शक्तिपूजा' और 'तुलसीदास' दोनों ही प्रयाससाध्य रचनायें प्रतीत होती हैं। उनमें वह नैसर्गिकता नहीं है, जो उनकी ३५ तक की रचनाओं में भरपूर दिखाई देती है। भाषा की दृष्टि से, छंदों की दृष्टि से, कल्पनाओं की दृष्टि से, एक प्रच्छन्न कृत्रिमता का आभास मिलने लगता है। अनेक समीक्षकों ने कुछ बाहरी चिन्हों को देखकर इन रचनाओं को गंभीर और उदात्त ही नहीं, निराला की अप्रतिम काव्य-सृष्टि भी कहा है; परन्तु ऊपर संकेत की गई इन रचनाओं की आयास-साध्य निर्मिति तथा इनकी पांडित्यमयी भाषा आदि के कारण इनमें वास्तविक औदात्य कदाचित् उभर नहीं पाया। इनकी साज-सज्जा उदात्त है, परन्तु इनका अंतरंग निरालाजी की पूर्ववर्ती रचनाओं की भांति परिपुष्ट नहीं है। उनमें एक मंथरता और शैथिल्य भी दृष्टिगत होता है। इस प्रसंग पर अधिक विस्तार से विचार करने का अवसर हमें आगे के विवेचन में प्राप्त होगा। यहाँ इससे अधिक कहना आवश्यक नहीं। इस प्रकार द्वितीय 'अनामिका', 'तुलसीदास' (१६३८) और 'अणिमा' (१६३६-४३) निराला जी की संक्रांतिकालीन रचनाएँ हैं, जिन्हें हम उनकी जीवनी और व्यक्तित्व की भूमिका पर द्वाभा की कृतियाँ कह सकते हैं। इनमें छाया-प्रकाश के दोहरे रंग दिखाई देते हैं।

[इसके अनन्तर निरालाजी का काव्य नैशागम की सूचना देता है। निश्चय ही यह उनके भीतर की टूटती हुई शक्ति का परिचायक है। यद्यपि इस नैशकाल में चांदनी रात की शोभा और सुषमा भी प्रतिफलित हुई है, परन्तु ऐकांतिकता और आत्मसमर्पण की निराशामयी प्रवृत्तियाँ भी गहरी होकर व्यंजित हुई हैं। समीक्षकों

ने निरालाजी के परवर्ती काव्य में यथार्थवादी प्रकाश भी देखने का प्रयत्न किया है, पर व्यक्तित्व-विकास की दृष्टि से निरालाजी का यह तथाकथित यथार्थवाद भी एक प्रतिक्रिया के रूप में ही प्रकट हुआ है। इसमें व्यंग्य हैं, विनोद है, विडम्बना है, कटु सत्य की अभिव्यक्ति है, परन्तु ये समस्त प्रवृत्तियाँ किसी उन्मुक्त व्यक्तित्व की परिचायक नहीं हैं। ऐसी रचनाओं की संख्या भी अधिक नहीं है। क्योंकि इस काल में निराला जी ने शांत और करुण रस के गीत ही अधिक लिखे हैं। ये गीत ही निरालाजी के परवर्ती काव्य की मुख्य धारा का प्रतिनिधित्व करते हैं, बीच-बीच में आई हुई दूसरे प्रकार की रचनाएँ उस प्रशांत मानस में हल्के उद्वेलन ही उत्पन्न कर पाती हैं। अतएव जो लोग निरालाजी के इस परवर्ती काव्य को यथार्थवादी संज्ञा देते हैं, वे निरालाजी के प्रति सच्चा न्याय नहीं करते।]

● परवर्ती काल : 'कुकुरमुत्ता'

सन् १९४२ में प्रकाशित उनकी 'कुकुरमुत्ता' काव्यरचना कुछ समय पहले मासिक पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुकी थी। इसमें दो भाग हैं, जिनमें पहला भाग काव्य की दृष्टि से अधिक सुन्दर है। यह दूसरे भाग से कई मास पूर्व लिखा गया था। इस काव्यरचना में निराला जी टी० एस० इलियट की संदर्भ गंभीत शैली से प्रभावित हुए थे। जिस प्रकार इलियट के लिए कहा जाता है कि उसकी 'वेस्ट लैंड' कृति में इतना पांडित्य है, इतना संक्षेपीकरण है, इतने अधिक 'एल्यूजन्स' या संकेत हैं, इतना गम्भीर आशय है, इतनी गहन करुणा है कि उसे आज के युग का महाकाव्य भी कहा जा सकता है। निरालाजी इन चर्चाओं को सुन चुके थे। इसी-लिए उन्होंने 'कुकुरमुत्ता' में कई स्थानों पर ऐसे अपरिचित और गूढ़ संदर्भ दिये हैं जिनका अर्थ समझने में गंभीर अध्ययन आवश्यक होता है। उदाहरण के लिये—

मैं 'कुकुरमुत्ता' हूँ
पर बेनजोइन (Benzoin) वैसे,
बने दर्शन शास्त्र जैसे।
ओमफलस (Omphalos) और ब्रह्मवर्त
वैसे ही दुनियाँ के गोले और पतं।^१

जिस तरह भारतीय दर्शन का परिचय हुए बिना इलियट की "दत्त। दयध्वम्। दम्यत।" की शब्दावली नहीं समझी जाती, या 'शांतिः, शांतिः शांतिः'^२

१ निराला : कुकुरमुत्ता (द्वितीय संस्करण), पृ० ६-७.

2 T. S. Elliot : Waste Land, lines—432, 433.

"Datta. Dayadhvam. Damyata,

Shantih Shantih Shantih"

का वाक्य 'कसा अग्रज पाठक के लिए निरर्थक हो जाता है, वैसे ही निराला जी के 'कुकुरमुत्ता काव्य' के कुछ स्थलों को पाश्चात्य दर्शन की जानकारी के बिना समझा नहीं जा सकता। पूरे 'कुकुरमुत्ता' काव्य में अतिशयोक्ति और अतिरंजना के माध्यम से हास्य और विनोद की सृष्टि की गई है (कुकुरमुत्ता अपनी अहमन्यता में अपने को बड़े-बड़े उपमान दे देता है। आत्मप्रशंसा की भूमिका पर वह संसार की सर्वश्रेष्ठ कलाकृतियों को भी मात कर देता है। परन्तु एक प्रच्छन्न व्यंग्य द्वारा निराला के 'कुकुरमुत्ता' के आत्मप्रलाप पाठक के लिए आद्यन्त एक विनोद-भावना ले आते हैं। यद्यपि प्रगतिवादी समीक्षकों ने 'कुकुरमुत्ता' की काव्यकृति को सर्वहारा वर्ग के उत्कर्ष का व्यंजक माना है ; परन्तु तटस्थ दृष्टि से इस काव्य का अनुशीलन करने वाले सभी सहृदय इस रचना में कुकुरमुत्ता के मिथ्या गर्व की प्रतीति पाये बिना नहीं रह सकते। निराला का आशय यह है कि 'कुकुरमुत्ता' (सर्वहारा का प्रतिनिधि) अपने को गुलाब (सांस्कृतिक तथ्य का प्रतीक) से चाहे कितना ऊँचा घोषित करे, परन्तु दुनियाँ समझती है कि गुलाब गुलाब है और कुकुरमुत्ता कुकुरमुत्ता। हमें खेद के साथ कहना पड़ता है कि इस कविता की जितनी व्याख्याएँ अब तक हुई हैं, और इसके बल पर विशेषतः प्रगतिवादियों ने जिस मुखरता के साथ निरालाजी को अपनी जमात में लेने का प्रयत्न किया है, उस समस्त प्रयास में साहित्यिक शैलियों और व्यंजनाओं की नासमझी का ही इजहार हो पाया है। निराला के परवर्ती काव्य का अधिक विवरण पूर्ण अध्ययन करते हुये हम फिर इस विषय पर लौटेंगे।)

● 'बेला' और 'नये पत्ते'

निराला जी की 'बेला' काव्य-रचना सन् ४३ के आसपास लिखी गई थी, किन्तु इसका प्रकाशन कुछ विलंब से हुआ। इसमें कुछ स्वतंत्र गीतों के अतिरिक्त अधिकतर गजल शैली की रचनायें हैं जिन्हें निराला जी ने उर्दू के अनुकरण में लिखा है। इस संग्रह की सबसे बड़ी विशेषता इसकी बदली हुई भाषा और इसके उर्दू छन्द हैं, जिसके कारण इसे प्रयोगशील कृति के रूप में देखा गया है। उर्दू गजलों का चमत्कार लाने के लिए निरालाजी ने उर्दू काव्य की अलंकरणियों और मुहावरों का भी प्रयोग किया है।

चढ़ी हैं आंखें जहाँ की, उतार लायेंगी ।

बड़े हुआँ को गिराकर, संवार लायेंगी' ॥

परन्तु इस प्रकार के प्रयोगों के द्वारा निराला जी टकसाली उर्दू गजलों की कारीगरी को नहीं पा सके हैं और यह स्वाभाविक भी है, क्योंकि हिन्दी की भूमि पर उर्दू के मुहावरेदानी और तराश लाना संभव भी नहीं है। यह दो भाषाओं की

प्रकृति और परम्परा का अन्तर है। 'बेला' की भाषा में निराला जी के तीन प्रकार के प्रयोग मिलते हैं। कुछ तो संस्कारवश संस्कृत की पदावली आई है, परन्तु निराला जी का अधिकांश झुकाव या तो ठेठ हिन्दी या उर्दू मिश्रित हिन्दी की ओर रहा है। ठेठ हिन्दी की रचनायें अपेक्षाकृत अच्छी उतरी हैं।

हँसी के तार के होते हैं ये बहार के दिन
हृदय के हार के होते हैं ये बहार के दिन'

लेकिन जिन पदों में निरालाजी ने या तो हिन्दी-उर्दू को मिलाने का उपक्रम किया है अथवा खालिस उर्दू की कोशिश की है, वहाँ वे आंशिक रूप से ही सफल हुये हैं। कभी भी २-४ पंक्तियों से आगे बढ़कर निरालाजी खालिस उर्दू का निर्वाह नहीं कर सके हैं।

निगह तुम्हारी थी,
दिल जिससे बेकरार हुआ;
मगर मैं गैर से मिलकर
निगह के पार हुआ^२

चार पंक्तियाँ लिखने के बाद निरालाजी हिन्दी-उर्दू के मिश्रण पर आते हैं और लिखते हैं—

अंधेरा छाया रहा
रोशनी की माया में
कहीं भी छाया का आंचल
न तार तार हुआ

और फिर अगली चार पंक्तियों में संस्कृत और उर्दू की बेमेल खिचड़ी भी काते हैं—

वहीं नवीना सजी और,
वहीं बजी वीणा
शराबो प्याले का अब तक
न बहिष्कार हुआ ।

इसी कारण निरालाजी के 'बेला' संग्रह को एक नये प्रयोग के अतिरिक्त अधिक नहीं कहा जा सकता। परन्तु इसी काव्य-संग्रह में निरालाजी ने हिन्दी शैली के कुछ सधे हुए गान भी लिखे हैं, जिनकी तुलना उनके श्रेष्ठतम गीतों से की जा सकती है। इनमें उनकी नैसर्गिक अनुभूति का सहज विन्यास है।

१ निराला, बेला: पृ० २३।

२ वही, पृ० २६।

रूप की धारा के उस पार
कभी धंसने भी दोगे मुझे ?
विश्व की श्यामल स्नेहसंवार
हंसी हँसने भी दोगे मुझे ?'

कुल मिलाकर 'बेला' काव्य-संग्रह निराला की काव्य-प्रतिभा का एक अनोखा स्फुरण मात्र है ।

सन् १९४६ में निराला जी की 'नये पत्ते' शीर्षक पुस्तक प्रकाशित हुई । जिसमें अधिकतर उनके व्यंग्यात्मक पद्यों का संग्रह है । 'देवी सरस्वती' नाम की एक लम्बी कविता इस मुख्य प्रवृत्ति का अपवाद है । निरालाजी की व्यंग्यात्मक कृतियों में भी अन्तर्विनोद की ध्वनि रहा करती है । इसीलिये उनकी ऐसी रचनाओं से हास्य-रस का सृजन हो जाता है । इन स्फुट रचनाओं में कुछ भी व्यंग्य और कुछ में हास्य का पल्ला भारी हो गया है । पर दोनों का किसी न किसी अनुपात में मिश्रण प्रत्येक रचना में है । 'नये पत्ते' में 'स्फटिकशिला' नाम की एक प्राकृतिक पृष्ठभूमि की लम्बी कविता भी है । पर चित्रकूट जैसी रमणीक और प्राचीन स्मृतियों से आलोकित वनस्थली के वर्णन में भी निरालाजी ने व्यंग्यात्मक दृष्टि ही अपनाई है । जब हम यह विचार करते हैं कि 'प्रेयसी' (१६-१०-२५) और 'वनवेला' (११-७-३७) जैसी पूर्ववर्ती रचनाओं में निराला जी ने प्राकृतिक सौंदर्य-छवियों को उनके समस्त गौरव में आलेखित किया है, तब 'स्फटिक शिला' की यह लम्बी कृति अपने कुरूप यथार्थ के वर्णनों द्वारा एक विरोधाभास की सृष्टि करती है । इसे लोग यथार्थवाद का प्रभाव कह सकते हैं । निश्चय ही वह निराला जी की बदली हुई दृष्टि की परिचायक है । परन्तु इस बदली हुई दृष्टि में निराला के व्यक्तित्व का विघटन ही दिखाई देता है । कोई यथार्थवादी कवि भी चित्रकूट की इस सुरम्य छटा का वर्णन करते हुए इतना - व्यंग्यात्मक बाना ग्रहण करने में हिचकेगा । यदि उसे व्यंग्य ही करना होगा, प्रकृति की रूक्षता ही दिखानी होगी, मनुष्य की दरिद्रता का ही परिचय देना होगा, तो वह किसी दूसरे प्रसंग को चुनेगा ।

इसी प्रकार की एक अन्य रचना है जिसमें एक ग्रामीण नारी का तालाब में स्नान करते समय का दृश्य दिखलाया है । इस नारी की 'खजोहरा' के संसर्ग से जो दुर्गति दिखाई गई है, वह यथार्थवाद की सारी सीमाओं का उल्लंघन कर गई है । यथार्थवाद का अर्थ, यदि किसी निरीह नारी की दुर्दशा दिखाना हो तो इस कविता को अवश्य हम यथार्थवादी कहेंगे । पर हमारी दृष्टि में ये रचनायें यथार्थवाद के सच्चे स्वरूप को प्रस्तुत नहीं करतीं । इनकी अपेक्षा इस संग्रह की छोटी-छोटी रचनायें

‘रानी और कानी’, ‘मास्को डायलाग्स’, ‘गर्म पकौड़ी’, ‘प्रेम संगीत’ ‘झोंगुर डटकर बोला’ और ‘महँगू महँगा रहा’ जैसी सरल कृतियाँ अधिक आकर्षक हैं। ‘नये पत्ते’ में ‘कैलाश में शरत्’ शीर्षक एक अन्य रचना भी आई है जिसमें निराला जी की काल्पनिक कैलाश यात्रा एक फण्टेसी या अतिकल्पना के रूप में प्रस्तुत की गई है। ऐसी रचनाओं में निराला के व्यक्तित्व में आने वाले विक्षेप की झलक दिखायी देती है।

‘अर्चना, आराधना और गीतगुंज’

‘नये पत्ते’ के सामाजिक व्यंग्यों और ‘बेला’ की गजल शैली को पार कर निरालाजी अपनी अंतिम तीन पुस्तकों ‘अर्चना’ ‘आराधना’ और ‘गीतगुंज’ में क्रमशः आत्मगत होते गये हैं। बहिर्जगत से उनका संबंध छूटता गया है और वे प्रणति-निवेदन की भूमिका पर आ गये हैं। जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं, निरालाजी की काव्य-रचना का परवर्ती काल यद्यपि कुछ समीक्षकों द्वारा यथार्थवादी भावधारा का काल कहा गया है, पर वस्तुतः देखा जाय तो निराला की वस्तुमुखी कविताएँ संख्या और मात्रा में थोड़ी ही हैं। जहाँ तक यथार्थ-वाद के दार्शनिक पक्ष का प्रश्न है, निरालाजी ने भौतिकवादी दर्शन को कहीं भी नहीं अपनाया। जहाँ तक उनकी सामाजिक दृष्टि है वे आरम्भ से ही मानवतावादी रहे हैं। सांसारिक दुःख-दैन्य से ग्रस्त मनुष्यों और वर्गों के प्रति उनकी सदैव सहानुभूति रही है। इस मानवतावादी दर्शन की प्रेरणा उन्हें उस उच्चतर अद्वैतवादी दर्शन से मिलती रही है जिसका वर्तमान रूप में रामकृष्ण परमहंस और विवेकानन्द आदि ने परिष्कार किया है। गांधीजी के द्वारा ग्रामीण जनता और अछूतों के उन्नयन का जो अनेकशः प्रयत्न हुआ है, वह भी निराला की मानवतावादी चिन्ता-धारा में सन्निहित है (इस प्रकार जो समीक्षक उन्हें नये सिरे से यथार्थवादी ठहराना चाहते हैं, उन्हें निराला की कृतियों का फिर से अध्ययन करना चाहिये) जहाँ तक शैली का संबंध है, निरालाजी आरम्भ से ही नानाविध शैलियों का प्रयोग करते रहे हैं। इसलिये यदि उन्होंने अपनी परवर्ती रचनाओं में यत्रतत्र यथातथ्य चित्रण की शैली अपनाई है, तो यह भी उनका एक प्रयोग ही है और उसके कारण उन्हें यथार्थवाद का परिष्कर्त्ता नहीं कहा जा सकता।

कुल मिलाकर उनकी परवर्ती कविता में पूर्ववर्ती कविता से कुछ ही नये मौलिक तथ्य मिलते हैं। एक नया तथ्य है व्यंग्य और विनोद की प्रवृत्ति। उन्होंने केवल उच्चवर्गों पर ही व्यंग्य नहीं किया है। सामान्यजनों और उनकी प्रवृत्तियों पर भी अनेक बार व्यंग्य किये हैं। इसलिये इस व्यंग्यात्मकता के कारण निरालाजी को प्रगतिवादी कलाकार कहना केवल साम्प्रदायिक दुराग्रह है। प्रगतिवादी तो वे आरम्भ से ही रहे हैं। दूसरा मौलिक तथ्य जो परवर्ती कविताओं में दिखाई देता है,

उनके व्यक्तिगत अनुभवों और जीवन-संघर्ष से सम्बन्धित है। वे क्रमशः सौंदर्य और उदात्त संकल्पों की भूमिका से हटकर जीवन की कुरूपता और उसके वैषम्य के दर्शन करने लगे थे। किन्तु क्या इस बदली हुई दृष्टि को हम प्रगतिवादी दृष्टि कह सकते हैं? यह तो निराला के व्यक्तित्व की पराजय से सम्बन्धित दृष्टि ही कही जायगी। एक तीसरा परिवर्तन भाषा संबंधी है। पूर्ववर्ती काव्य की भाषा में एक स्वाभाविकता और समरसता है। कहीं भी संस्कृत-बहुल प्रयोगों के साथ उर्दू या फारसी का मिश्रण नहीं किया गया है और जहां कहीं है भी, वहां वह काव्य की स्वाभाविक गति से संबद्ध और संयुक्त है; परन्तु उनकी परवर्ती कविताओं में, विशेषकर उनकी उर्दू शैली की गजलों में संस्कृत और फारसी का योग चित्य हो गया है। ऐसे उदाहरणों में हम भाषा का सफल प्रयोग नहीं देखते। इस सम्बन्ध की अधिक चर्चा हम यथास्थान करेंगे।

एक ही तथ्य जो निराला के परवर्ती काव्य में महत्वपूर्ण दिखाई देता है, भाषा की सरलता की ओर ले जाने का है। अपनी मुक्त रचनाओं में प्रवाह की सम्यक योजना के लिये निरालाजी कोलचाल की शिष्ट भाषा का प्रयोग पहले से करते चले आ रहे थे। परन्तु अपने आरम्भिक गीतों में उन्होंने अधिकतर संस्कृत-बहुल भाषा और सामासिक पदावली का प्रयोग किया है। इस प्रकार के प्रयोगों के कारण उनके गीत कुछ लोगों को दुर्बोध भी प्रतीत हुये हैं।^१

अपने परवर्ती गीत 'अर्चना' 'आराधना' और 'गीतगुंज' में उन्होंने भाषा को नया मोड़ दिया है। इन गीतों में अपवादों को छोड़कर भाषा सरल हो गई है और बीच बीच में सुन्दर मुहावरों का साहचर्य पा गई है। निश्चय ही यह निराला के परवर्ती काव्य की उपलब्धि है। इन गीत-रचनाओं में सुन्दर मुहावरों के साथ कहीं-कहीं लोकजीवन में फैले हुये सुन्दर और अर्थ-व्यंजक शब्दों का प्रयोग भी हुआ है। इससे कविता में नई प्राणशक्ति आ गई है। निराला के आरम्भिक गीतों में इस प्रकार के जन-जीवन में व्याप्त भाषा-प्रयोग नहीं के बराबर थे।

- १ (क) "निरालाजी की भाषा अधिकतर संस्कृत की तत्सम पदावली से जुड़ी हुई होती है जिसका नमूना 'राम की शक्तिपूजा' में मिलता है। जैसा पहले कह चुके हैं, इनकी भाषा में व्यवस्था की कमी प्रायः रहती है जिससे अर्थ का भाव व्यक्त करने में वह कहीं-कहीं बहुत ढीली पड़ जाती है।"

—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ७१६।

- (ख) "स्फुट गीतों में निराला को ऐसा अवकाश नहीं मिलता। गीतिका के गीत ठूठ हो गये हैं और दुर्बोध तो हैं ही।"

—आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी : हिन्दी-साहित्य, पृ० ४६६।

‘अर्चना’ की भूमिका में निराला जी कहते हैं, “अर्चना का अंतरंग विषय यौवन से अतिक्रान्त कवि के परलोक से संबद्ध है, इसलिये यहाँ सम्मति का फल निष्काम में ही होगा ।^१ इतना ही नहीं, वे आगे यह भी कहते हैं कि ‘अर्चना’ के विषय में प्राचीन परंपरा से इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि—

भाव कुभाव अनख आलसहू;
राम जपत मंगल दिशि दसहू ।^२

इन उद्धरणों से यह स्पष्ट होता है कि निराला जी शृंगारिक और सौन्दर्य-काव्य की भूमिका को छोड़कर विनय और आत्म-साधनाप्रधान काव्य-रचना में प्रवृत्त हुये हैं । इतना कहना होगा कि इन समस्त रचनाओं में निराला का काव्य-सौष्ठव, उनका संगीत-ज्ञान उनकी लयप्रियता सर्वत्र देखे जाते हैं । प्रारम्भिक गीतों की अपेक्षा इनमें भाषा की और भी मितव्ययिता है । ‘गीतिका’ के गीतों में जो कार्य समास-गुणित पदावली के द्वारा लिया गया था, वह ‘अर्चना’ में भाषा के अधिक संयमित और अर्थप्रवण प्रयोगों द्वारा लिया गया है । इस विषय की विस्तृत चर्चा हम आगामी प्रकरणों में करेंगे ।

‘अर्चना’ में कहीं-कहीं अनुप्रास की ऐसी प्रवृत्तियों का भी परिचय मिलता है जो निराला के मानसिक विक्षेप का आभास देती हैं । उदाहरण के लिये—

अपने चक्कर से कुल कट गये,
काम की कला से दूढ़ हट गये,
छापे से तुम्हीं निपट पट गये,
उलटा जो सीधा ढेरा था ।^३

अथवा

कांत है कान्तार दुमिल,
सुघर स्वर से अनिल ऊमिल,
मीड़ से शत-मोह घूमिल ।^४

परन्तु ऐसे चित्य प्रयोगों की संख्या अधिक नहीं है । उल्टे बहुत ही आकर्षक और व्यञ्जक प्रयोगों की भी भरमार है ।

हरिण-नयन हरि ने छीने हैं ।
पावन रंग रग-रग भीने हैं ।^५

१ निराला : अर्चना की स्वयोक्ति ।

२ वही,

३ निराला : अर्चना (गीत-५८), (रचना ६-२-५०)

४ वही, (७३) गीत (रचना-१०-२-५०)

५ वही, (गीत ६०) (रचना १४-२-५०)

अथवा

गगन-गगन है गान तुम्हारा
घन-घन जीवन यान तुम्हारा^१

आदि पंक्तियों के शब्द-बंद श्रेष्ठ प्रतिभा के परिचायक हैं ।

‘आराधना’ काव्य पुस्तक ‘अर्चना’ का ही अग्रिम रूप है । वही भाव, वही भाषा, वही विषय, वही शैली । शब्द-योजना में चमत्कार की वृद्धि हुई है ।

छलके-छलके पैमाने क्या
आये बेमाने माने क्या ।
हलके-हलके हलके न हुए
दलके-दलके दल के न हुए,
उफले-उफले फल के न हुए,
वेदाने थे तो दाने क्या ?^२

इस प्रकार की पंक्तियाँ गहरे पैठने पर ही अपना अर्थ दे सकती हैं; परन्तु सामान्य पाठक को इसका आशय पाने में कठिनाई होती है । ऐसी शब्द-योजनाएँ कवि की भाषा-शक्ति की परिचायक भले हो हो, उसकी विक्षिप्तावस्था का संकेत भी करती हैं ।

निरालाजी का प्रिय विषय ऋतु-वर्णन उनकी प्रायः सभी कविता-पुस्तकों में आया है । उनके गीतबद्ध ऋतुचित्र हिन्दी में अनुपम कहे जा सकते हैं । ‘परिमल’ से लेकर ‘आराधना’ और ‘गीत-गुंज’ तक के उनके ऋतुगीतों पर एक स्वतन्त्र निबंध लिखा जा सकता है ।

सखि, बसंत आया
भरा हर्ष बनके मन
नवोत्कर्ष छाया^३

जैसी आरम्भिक रचनाओं में ऋतुसौंदर्य के साथ भावना का उत्कर्ष बड़े मुन्दर ढंग से बँधा हुआ है । उनके परवर्ती ऋतुगीतों में अलंकारिता और विशेषकर शब्दक्रीड़ा अधिक मिलने लगती है ।

बादल वे बदल गये
कटे छटे नये-नये

१ निराला : अर्चना, गीत-१०३ (रचना १४-८-५०)

२ वही, आराधना गीत-३० (रचना १४-११-५२)

३ वही, गीतिका, गीत-३ (रचना १६२८)

नभ में आये, उनये,
बंद हुई पुरवाई ।
जुही आनबान भरी,
चमेली जवान परी,
मालती खिली निखरी,
शीत हवा सरसाई ।^१

आदि में शब्दों की लघिमा तो है, परन्तु

रुखी री यह डाल
वसन वासन्ती लेगी^२

जैसी प्रारम्भिक ऋतु रचनाओं का समन्वित भाव सौंदर्य घटता दिखाई देता है ।

('आराधना' में निरालाजी की वैयक्तिक भक्ति-भावना अधिक प्रगाढ़ हो गई है, जिससे उनके गीतों में शांत और करुण रस का गहरा पुट मिलने लगता है । यह सत्य है कि इन गीतों में निरालाजी की मानवतावादी भूमिका भी स्थान-स्थान पर उभरी है ।)

रंग रंग से यह गागर भर दो,
निष्प्राणों को रसमय कर दो ।
माँ, मानस के सित शतदल को
रेणु-गंध के पंख खिला दो
जग को मंगल मंगल के पग
पार लगा दो, प्राण मिला दो; ^३

जैसी पंक्तियों में सामूहिक सवेदना की गहरी झलक है । परन्तु इसके अधिकतर गीतों में निराला की व्यक्तिगत विनय, संरक्षण-कामना और प्रपत्ति का ही प्रसार मिलता है ।

'आराधना' के पश्चात् निरालाजी का अंतिम गीत संग्रह 'गीतगुंज' (प्रथम संस्करण) सन् १९५४ में प्रकाशित हुआ । वस्तुतः 'अर्चना', आराधना और गीतगुंज के गेयपद एक ही मनोभावना और एक ही काव्यकौशल के परिचायक हैं । ये तीनों रचनाएँ मूलतः निरालाजी की आत्मसमर्पण या प्रपत्ति-भावना की प्रतिनिधि हैं, जो

१ निराला : आराधना-गीत २३ (रचना १६-६-५२)

२ निराला : गीतिका-गीत १४ पृ० १६ ।

३ निराला : आराधना-गीत ८ (रचना २६-८-५२)

संभवतः उनके बढ़ते हुए शारीरिक और मानसिक विकारों के उपचार रूप में लिखी गयी हैं ।

सुख का दिन डूबे डूब जाय
तुम से न सहज मन ऊब जाय^१

अथवा

पार-पारावार जो है, स्नेह से मुझको दिखा दो
रीति क्या, कैसे नियम, निर्देश कर करके सिखा दो ।^२

जैसी कविताएँ किसी अलौकिक शक्ति के प्रति आत्म-निवेदन के रूप में प्रस्तुत की गई हैं । परन्तु गीतगुंज में निरालाजी की सारी रचनाओं में व्याप्त प्रकृति-सौंदर्य के प्रति आकर्षण का भाव बना हुआ है । ऋतु वर्णन सम्बन्धी गीत निरालाजी अपनी अस्वस्थावस्था में भी लिखते ही थे । कदाचित् प्रकृति की रमणीयता ही उन्हें आश्वासन देती रही थी । यही एक प्रवृत्ति थी, प्रकृति के प्रति सहज सम्बन्ध की, जो निराला की कविताओं में आदि से अन्त तक पाई जाती है । नारी-छबि का वर्णन भी अब छूट गया; किन्तु प्रकृति और ऋतुओं का विमोहन अन्त तक उनके मानस से दूर नहीं हुआ ।

पड़ी चमेली की माला कल ।
गमक उठा निशि का नभमंडल ।
कूजे कंठ, उठे आनतमुख,
मिले लोग अपने व्याकुल सुख,
स्वर्गाभास हुआ जग का दुख,
तारों के नभ, हारों के गल ।^३

इन पंक्तियों को पढ़ने से ऐसा जान पड़ता है कि निरालाजी अपने यौवन-काल के प्रकृति-गीतों का नया संस्करण तैयार कर रहे हैं ।

श्याम-गगन नव-घन मंडलाए ।
कानन गिरि बन आनन छाये

१ निराला : गीतगुंज (प्रथम संस्करण); पृ० ४७ (रचना १४-११-५२)

२ निराला : वही ,, पृ० ६३ (रचना १७-११-५२)

३ निराला : वही (द्वितीय परिवर्द्धित संस्करण) पृ० ४०

(रचना २४-१०-५४)

लदे बाग आमों के परसे,
धानों के खेतों पर बरसे,
युवती निकली अपने घर से,
पुरवाई के झोंके खाये ।^१

यह भी उल्लेखनीय है कि हाल की रचनाओं में यत्रतत्र शाब्दिक क्रीड़ा और विचित्र अनुप्रासों का बढ़ता हुआ योग पाया जाता है। परन्तु जहाँ तक प्रकृति-सौंदर्य की रचनाओं का सम्बन्ध है, उनमें इस प्रकार की कृत्रिमता या विक्षेपावस्था नहीं पाई जाती। इससे यह सूचित होता है कि प्रकृति के सौंदर्य के प्रति निरालाजी के संस्कार इतने प्रबल हैं कि प्रकृति वर्णन का अवसर मिलते ही उनकी कल्पना पर से सारे विकार दूर हो जाते हैं और वे स्वस्थ सृष्टियाँ करने लगते हैं।

भाषा की सरलता, अनुप्रासों का आधिक्य, नये और सटीक मुहावरे जो उनकी परवर्ती कविता में बहुतायत से पाये जाते हैं, 'गीतगुंज' में भी मौजूद हैं। उनमें से अधिकांश तो उनके समृद्ध और लोक-जीवन के समीप पहुँचने वाले भाषा अधिकार के परिचायक हैं; पर कुछ अनुप्रास योजना ऐसी भी है, जो उनकी असतुलित मानसिक स्थिति की सूचना देती है। यदि निरालाजी के मानसिक विक्षेप की क्रमिक गतिविधि का परिचय उनके भाषा-प्रयोग से किया जाय, तो हम कुछ उपयोगी निष्कर्षों पर पहुँच सकते हैं। यह प्रयत्न हम आगे के अध्यायों में करेंगे।

निरालाजी के काव्य के विकासक्रम को दिखाते हुए ऊपर हमने उनके पूर्ववर्ती काव्य और परवर्ती काव्य की साधारण आधार भूमियों को देखने का प्रयत्न किया है। अब हम उनके पूर्ववर्ती काव्य और परवर्ती काव्य की भिन्नता का अधिक स्पष्ट रूप से उल्लेख करना चाहेंगे।

● शैलीगत अन्तर

शैली के अन्तर्गत हम भाषा-प्रयोग, छंद योजना तथा काव्य के बाह्य प्रकाशन सम्बन्धी तत्वों को ले सकते हैं। निराला के पूर्ववर्ती काव्य की सबसे प्रमुख शैलीगत विशेषता, भाषा की गतिशीलता और प्रवाहमयता है। उद्दाम और प्रबल भावावेगों को प्रकट करने के लिये कोई सुचिन्तित शब्द योजना या भाषा प्रयोग सम्भव नहीं होता। निराला की आरम्भिक भाषाशैली इस बात का प्रमाण देती है कि उसमें स्वाभाविकता का सबसे बड़ा गुण है। वे इन रचनाओं में शक्तिशाली शब्दावली का संगठन और परिष्कार, उसका अन्य भाषा के पृथक और अमिश्रित रूप, संक्षेप में जिसे हम भाषा की अरिस्टाक्रेसी या आभिजात्य कह सकते हैं, निराला के पूर्ववर्ती

१ निराला : गीतगुंज (द्वितीय परिवर्द्धित संस्करण), पृ० ३२

(रचना- १५-८-५४)

काव्य की विशेषता नहीं है। आवश्यकतानुसार निरालाजी तीन प्रकार के भाषा रूपों का प्रयोग करते रहे हैं। (१) संस्कृत-बहुल सामासिक भाषा (२) हिन्दी और संस्कृत मिश्रित प्रवाहपूर्ण भाषा और (३) हिन्दी और उर्दू मुहावरों से मिली स्वाभाविक भाषा। इन तीनों का एक एक उदाहरण देना अप्रासंगिक न होगा।

(१) संस्कृत समन्वित सामासिक भाषा : 'यमुना के प्रति' शीर्षक कविता की ये पंक्तियाँ :

मत्त-भृङ्ग-सम संग संग तम—
तारा मुख्य-अम्बुज-मधु-लुब्ध,
विकल विलोडित चरण अंक पर
शरण-विमुख नूपुर उर-क्षुब्ध;
वह संगीत विजय मद-गर्वित
नृत्य-चपल अधरों पर आज,
वह अजीत-यंगित मुखरित-मुख
कहाँ आज वह सुखमय साज ?^१

(२) संस्कृत-हिन्दी-मिश्रित प्रवाहपूर्ण भाषा के लिये 'पंचवटी-प्रसंग' की कुछ पंक्तियाँ देखिये—

लक्ष्मण—जीवन का एक ही अवलम्ब है सेवा;
है माता का आदेश यही,
माँ की प्रीति के लिये चुनता हूँ, सुमन दल-
इसके सिवा कुछ भी नहीं जानता—
जानने की इच्छा भी नहीं है कुछ।
माता की चरण-रेणु मेरी परम शक्ति है—
माता की तृप्ति मेरे लिये अष्ट सिद्धियाँ—
माता के स्नेह-शब्द मेरे सुख-साधन हैं।
धन्य हूँ मैं ;^२

(३) उर्दू हिन्दी के मुहावरों से मिली भाषा के लिए 'महाराजा शिवाजी का पत्र' की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

धोखा दिया है यह
उसने तुम्हें क्या ही !—

१ निराला : परिमल—यमुना के प्रति पृ० ५६, (रचना-१९२२)

२ " " पंचवटी प्रसंग-२, पृ० २४२

दगाबाज लाज जो उतारता है
मरजादवालों की,
खूब बहकाया है तुम्हें ।
सोचता हूँ अपना कर्तव्य अब—
देश का उद्देश,
पर क्या करूँ मैं,
निश्चय कुछ होता नहीं—
द्विधा में पड़े हैं प्राण ।
अगर मैं मिलता हूँ,
'डर कर मिला है'
यह शत्रु मेरे कहेंगे ।
नहीं यह मर्दानगी ।^१

[भाषा-सम्बन्धी इन तीनों शैलियों में निरालाजी का मुख्य ध्यान विषय के अनुरूप भाषा का चयन करने में रहा है ।^२ इस प्रेरणा से जहाँ सांस्कृतिक प्रसंग आये हैं, वहाँ भाषा संस्कृत बहुल हो गई है । जहाँ पर शृंगारिक भूमिका आई है, वहाँ भाषा में अपेक्षाकृत हिन्दी और संस्कृत का अधिक सुन्दर मिश्रण हुआ है, जिससे भाषा में शिष्टता बनी हुई है, वह पाठकों के अधिक समीप आ गई है । इन रचनाओं में कवि की भाषा-चयन की क्षमता कभी भी बाधित नहीं हुई है । तृतीय प्रकार की रचनाओं में अधिकतर वीररस का काव्य आता है । इसमें भाषा और भी सामान्य स्तर पर पहुँच गई है और हिन्दी, संस्कृत और उर्दू के शब्द-पुष्प एक ही भाषा में गुंथे हुये हैं ।

[भाषागत इन तीन भेदों के रहते हुये भी, रचनाओं में भाषा प्रयोग सम्बन्धी कृत्रिमता दिखाई नहीं देती । इसका मूल कारण प्रयोगों की विषयानुरूपता ही है । जिस प्रकार के भाव की सृष्टि करनी होती है, भाषा उसी ढाँचे में ढलती चली जाती है ।^३ 'परिमल' कालीन निराला की भाषा में शक्ति और शालीनता का गुण है । यद्यपि उसमें परिष्कार और शब्द योजना की ऐकान्तिक प्रवृत्तियाँ नहीं पाई जातीं । भाषा प्रयोग की दृष्टि में पवित्रतावादी आदर्श निराला का कभी नहीं रहा ।

'गीतिका' में अपेक्षाकृत अधिक परिष्कार है, क्योंकि एक तो गीत रचना में शब्दों को सीमित संख्या के अन्तर्गत समग्र प्रभाव उत्पन्न करना होता है । दूसरे गेय पदों में गद्यात्मक मुहावरे नहीं आ सकते, और उन गीतों में निरालाजी की प्रवृत्ति सदैव परिष्कृति की ओर रही है । निराला के पूर्ववर्ती काव्य की भाषा शैली की यही मुख्य विशेषता है ।

परवर्ती काव्य में निरालाजी की भाषा में गद्य के गुण अधिक मात्रा में संयोजित हुये हैं। विशेषकर उनकी हास्य और व्यंग्यप्रधान रचनाओं में भाषा गद्य के अधिक समीप है। 'कुकुरमुत्ता' की आरंभिक पंक्तियाँ देखिये—

एक थे नब्बाब,
फारस से मंगाये थे गुलाब;
बड़ी बाड़ी में लगाये,
देशी पीधे भी उगाये,
कई माली रखे नौकर,
गजनवी का बाग मनहर
लग रहा था ।^१

इसे यदि हम थोड़े से परिवर्तन के साथ लिखें, तो हिन्दी गद्य का एक औसत उदाहरण बन जायगा। पूर्ववर्ती कविताओं में निराला की बातों के साथ जो एक इलास्टिसिटी या तरलता का गुण है, वह परवर्ती काव्य में कम हो गया है।

कुछ लम्बी कविताओं में निराला जी की बदली हुई शैली का एक अन्य स्वरूप भी दिखाई देता है, वह है 'वर्णनात्मक कथानकों का प्रयोग'। इन कथानकों में भाव-प्रवाह स्वभावतः मंद है और उसी के अनुरूप भाषा में भी एक प्रकार की मंथरता आ गई है। प्रवाह की पूर्ति निराला जी को ग्रैफिक या सर्वांगीण वस्तु-वर्णन द्वारा करनी पड़ी है और वस्तुवर्णन में भाषा और छंदों की योजना द्रुतगामिनी नहीं हो सकती। द्रुतगामिता के स्थान पर जो विवरणपूर्ण वस्तुमुत्ता निराला जी की परवर्ती कविताओं में मिलती है, उसका एक अच्छा उदाहरण 'अणिमा' की सन् ४३ की 'स्वामी प्रेमानन्द जी महाराज' शीर्षक कविता है। इस कविता में निरालाजी की भाषा गद्य के अधिक समीप तो है ही, वह अधिक सुगठित भी नहीं रह गई है।

इस गठनहीनता का और स्पष्ट उदाहरण उनकी 'कुकुरमुत्ता' कविता में मिलता है जो अन्य दृष्टियों से एक सफल रचना है। 'कुकुरमुत्ता' को उर्दू छंद में ढालने का प्रयत्न निरालाजी की भाषा को शिथिलता और अनगढ़पन प्रदान करता है।

आया मौसिम, खिला फारस का गुलाब,
बाग पर उसका जमा था रोबोदाब,
वहीं गन्दे पर उगा देता हुआ बुत्ता
उठाकर सर शिखर से अकड़ कर बोला कुकुरमुत्ता—^२

यद्यपि इन पंक्तियों में उर्दू का सौन्दर्य है, पर हिन्दी के कवि के लिये उर्दू भाषा का अधिकारपूर्ण निर्दोष सौन्दर्य लाना कठिन ही है ।

‘कुकुरमुत्ता’ में जहाँ कहीं निरालाजी ने उर्दू हिन्दी मिश्रित शब्दों के साथ संस्कृत के शब्दों का प्रयोग किया है, वहाँ वे पूर्णतः सफल नहीं हुये हैं ।

लगाता हूँ पार मैं ही,
डुबाता हूँ मझधार मैं ही ।
डब्बे का मैं ही नमूना,
पान मैं ही, मैं ही चूना ।^१

की सुन्दर और मुहावरेदार पंक्तियों के साथ जब हम—

मन्द्र होकर कभी निकला,
कभी बनकर ध्वनि क्षीणा ।^२

पंक्तियों को पढ़ते हैं, तो भाषा का असंतुलन स्पष्ट हो जाता है । यदि यह हास्यरस की कविता न होती, तो इस प्रकार की बेमेल भाषा लिखने के लिये कवि को क्षमा नहीं किया जा सकता था ।)

(परवर्ती काव्य में जो गीत आये हैं, वे शायद निराला की उस समय की सर्वश्रेष्ठ कृति कहे जा सकते हैं । इन गीतों में उनके पूर्ववर्ती गीतों की अपेक्षा सरल भाषा और मार्मिक मुहावरों का प्रयोग चमत्कार की नृष्टि, अनुप्रासों की योजना अधिक सघन है ।)

ये ऐसी विशेषताएँ हैं जो निराला के परवर्ती गीतों को एक नया ही सौष्ठव प्रदान करती हैं । यह सच है कि इन गीतों में कल्पना की वह चित्रोपमता नहीं है जो ‘गीतिका’ के गीतों में है । परन्तु ‘गीतिका’ के गीत और शब्दयोजना मूलतः संस्कृत के सौन्दर्य पर आधारित हैं, जब कि परवर्ती गीतों में हिन्दी का अपना सौन्दर्य है । ‘गीतिका’ का एक गीत देखिये—

कौन तुम शुभ्र-किरण वसना ?

सीखा केवल हँसना-केवल हँसना^३—

परवर्ती गीत के लिये ‘आराधना’ का एक गीत देखिये—

१ निराला : कुकुरमुत्ता, पृ० ६ ।

२ वही, पृ० ७ ।

३ निराला : गीतिका, गीत-२६, पृ० ३४ ।

सुख का दिन डूबे डूब जाय,
तुम से न सहज मन ऊब जाय—
उलटी गति सीधी हो न भले,
प्रतिजन की दाल गले न गले,
टाले, न बान यह कभी टले,
यह जान जाये तो खूब जाये^१—

यदि हम इन दोनों उद्धरणों को निराला के पूर्ववर्ती और परवर्ती गीतों का सामान्य भेद मानें, तो ऊपर दिये हुये वक्तव्य का प्रमाण मिल जाता है।

● विचारधारा का अन्तर

निरालाजी की विचारधारा में सहसा कोई बड़ा परिवर्तन नहीं हुआ है। अपनी आरम्भिक शिक्षा में उन्होंने जिस वेदान्तीय दृष्टि को अपनाया था, वह इतनी मजबूती से उनके साथ बँधी रही है, कि किसी नए विचार का आना प्रत्याशित भी नहीं था। किन्तु मूलधारणा के बहुत कुछ सम रूप रहते हुये भी निराला की व्यावहारिक चिंतना में परिवर्तन होते गये हैं। इनमें से कुछ परिवर्तन तो निराला के निजी अनुभवों की वृद्धि के साथ जुड़े हुये हैं और कुछ अन्य परिवर्तन युग की परिस्थिति के कारण भी हुए हैं। हम यह ऊपर उल्लेख कर चुके हैं कि निराला की आरम्भिक विचारधारा स्वच्छंदतावादी और सौंदर्यवादी रही है। निराला का विद्रोही व्यक्तित्व उनके स्वच्छंदतावादी काव्य को सामाजिक स्वतन्त्रता का समर्थक और पुरस्कर्ता बनाने में समर्थ हुआ है। यह स्वच्छंदतावादी काव्य एक ओर नारी और पुरुष के स्वच्छन्द प्रेम का पोषक रहा है तो दूसरी ओर यह सामाजिक वैषम्य को दूर कर' में भी प्रयत्नशील रहा है। राष्ट्रीय और सांस्कृतिक एकता के तत्वों का संचयन भी निराला-काव्य की विशेषता रही है। इसके अतिरिक्त निराला का सौन्दर्यवादी काव्य जो विशेषतः 'गीतिका' के गीतों में मिलता है, स्वस्थ सौन्दर्य और सामाजिक आधार से संबद्ध रहा है। प्रकृति की रमणीय भूमिका सदैव साथ रही है। निराला के सौन्दर्य-गीतों में कल्पना की वायवीयता नहीं है। वे भावात्मक, मानवीय तत्वों से युक्त हैं। इसी प्रकार निराला की आरम्भिक विचारधारा में आदर्शवाद का भी यथेष्ट पुट है। 'पंचवटी-प्रसंग' में चित्रित लक्ष्मण का चरित्र निराला के अपने आदर्शवाद का प्रतिनिधि कहा जा सकता है, इस प्रकार निराला की आरंभिक विचारधारा में स्वच्छंदता और सौन्दर्य के स्वस्थ उपकरण मिलते हैं। सन् १९३५ के पश्चात् निराला की विचारधारा में परिवर्तन होने लगे हैं। गद्य-कृतियों में 'अप्सरा' (१९३१) और 'निरूपमा' (१९३६) के आधार पर 'कुल्लीभाट' (१९३६) और 'बिल्लेसुर बकरिहा' (१९४१) की सृष्टियां बदली हुई मनोभावना और विचारधारा

का स्पष्ट परिचय देती हैं। अब निरालाजी संसार की कुरूपता और उसके लक्ष्म-वेषों से परिचित हो गये थे। उनके व्यक्तिगत अनुभवों ने उन्हें बताया कि जाति या वर्ण की उच्चता से कहीं अधिक महत्वपूर्ण अर्थ की संपन्नता है। नेतागिरी के लिये भी उच्चशिक्षा के साथ समृद्ध आर्थिक साधन अपेक्षित हैं। तरुणाई के उन्मेष और उत्साह में जीवन के जिन गंभीर और यथार्थ पक्षों की उपेक्षा की जा सकती है, आयु और अनुभव के बढ़ने पर वैसा नहीं किया जा सकता। इसी बढ़ते हुये अनुभव ने निराला को आदर्श से यथार्थ की ओर प्रेरित किया होगा। किन्तु निराला की यह यथार्थोन्मुख प्रवृत्ति भौतिकवाद की भूमि पर खड़ी नहीं है। उनकी विचारधारा आदि से अंत तक मानववादी और सांस्कृतिक बनी रही है।

‘कुल्लीभाट’ उपन्यास या रेखाचित्र में निराला यद्यपि राजनीतिक नेताओं की गतिविधि पर व्यंग्य करते हैं, पर साथ ही वे ‘कुल्लीभाट’ जैसे टुटपुंजिया नेताओं को भी परिहास का विषय बनाते हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि निरालाजी की दृष्टि में नेतृत्व का अधिकार न तो आर्थिक भूमिका पर गठित होना चाहिए और न विपन्नता या गरीबी की भूमिका पर। वे वस्तुतः आधार सांस्कृतिक चेतना को मानते हैं। उनका आदर्शवादी स्वरूप यहाँ भी ज्यों का त्यों बना है, निराला की कविताओं का दार्शनिक आधार यही है। कुछ लोग ‘कुकुरमुत्ता’ कविता को प्रगतिवादी मानते हैं, परन्तु निराला की इन परवर्ती काव्य रचनाओं में भी प्रगतिशीलता का पक्ष बहुत थोड़ी मात्रा में आया है। जहाँ वे एक ओर ‘कुकुरमुत्ता’ से गुलाब की निंदा करते हैं वहीं दूसरी ओर ‘कुकुरमुत्ता’ का भी बड़ चढ़कर बातें करने के लिये परिहास करते हैं। एक उदाहरण देना पर्याप्त होगा—

विष्णु का मैं ही सुदर्शन-चक्र हूँ,
काम दुनिया में पड़ा ज्यों, वक्र हूँ;
उलट दे, मैं ही जसोदा की मथानी,
और भी लम्बी कहानी,—^१

निराला के परवर्ती काव्य में गीतों की प्रचुर संख्या है। यहाँ तक कहा जा सकता है कि पिछले १० वर्षों में निरालाजी ने गीत ही सर्वाधिक लिखे हैं। निरालाजी के ये गीत उनके प्रारम्भिक और परवर्ती गीतों से भिन्न भाव-भूमिका पर नहीं हैं। उनका वैचारिक आधार वही है जो पहले के गीतों में रहा है। अंतर केवल-इतना है कि जब उनके प्रारम्भिक गीतों में सौन्दर्योन्मेष की प्रधानता है, तो इन परवर्ती गीतों में विनय और प्रार्थना के गंभीर भाव हैं। निराला ने ऋतु-गीतों की जो

परंपरा अपने आरम्भिक काल में निर्धारित की थी, उस पर वे अब तक चले जा रहे हैं ।

● जीवन-सम्बन्धी दृष्टिकोण का अन्तर

विचारधारा के साथ जीवन-दृष्टि का सम्बन्ध काफी घनिष्ठ होता है । जीवन-दृष्टि से ही विचारों का प्रवर्तन होता है । विचारों का समुच्चय ही जीवन-दृष्टि का निर्माण करता है । जिस प्रकार निराला की विचारधारा में कोई आकस्मिक परिवर्तन नहीं है, उसी प्रकार उनकी जीवन-दृष्टि में भी । हम कह सकते हैं कि जीवन-दृष्टि में अध्यात्म पक्ष की प्रधानता रही है । यद्यपि उन्होंने युग-जीवन के अनेकानेक पक्षों को खुली आंखों देखा है और उसका अबाध वर्णन भी किया है, पर उन सबका समा-हार वे एक आध्यात्मिक दार्शनिकता में करते आये हैं । मानवजीवन के भौतिक और आत्मीय पक्ष में से उन्होंने आत्मीय पक्ष को सदैव प्रधानता दी है । यह बात दूसरी है कि उनके निजी जीवन में संघर्षों की प्रचुरता रही है और वे क्रमशः सामाजिक जीवन के वैषम्य से आक्रांत होते गये हैं और इसी कारण उनके काव्य में यथार्थो-न्मुख जीवन-प्रतिक्रियायें भी उपलब्ध होती हैं । पर जहाँ तक उनकी मूल जीवन दृष्टि का सम्बन्ध है, वह सदैव मानवीय और आध्यात्मिक स्तर पर ही बनी रही है । मानव जीवन का लक्ष्य उन्होंने मनुष्य-मनुष्य की समानता, सहानुभूति और प्रेम-भावना को ही माना है । यह मानवतावादी लक्ष्य उस भौतिकवादी आधार से बिल्कुल भिन्न है, जिसमें वर्गों का संघर्ष ही उभर कर आता है । निराला के परवर्ती काव्य में यह मानवतावादी लक्ष्य अधिक परिष्कृत हुआ है । परन्तु इस कारण उनके जीवनदर्शन में कोई आपातिक परिवर्तन नहीं होता । एक ओर जहाँ उनकी परवर्ती कविता में युगीन वैषम्यों का व्यंग्यात्मक चित्रण है, वहाँ दूसरी ओर विश्वशक्ति या विश्वात्मा के प्रति उनकी आस्था भी बढ़ती गई है । पिछले १०-१५ वर्षों के उनके गीतिकाव्य में यह आत्मिक तत्त्व प्रगाढ़ होता गया है । उनके आरम्भिक गीतों में जहाँ पर यह विराट् आत्मतत्त्व एक अलंकार बनकर आया है, वहाँ पिछले खेव के गीतों में वह कहीं अधिक व्यक्तिगत भावभूमि के केन्द्र में स्थित है । इससे भी यही सूचित होता है कि निरालाजी की जीवन-दृष्टि न केवल अध्यात्मोन्मुखी बनी रही है, बल्कि अधिक सुदृढ़ हो गई है और इसी से उन्हें वर्तमान रुग्णावस्था में अमित प्रेरणा और समाधान प्राप्त होता रहा है ।

● विषयवस्तु और रस आदि का अन्तर

निराला-काव्य के आरम्भिक काल की विषयवस्तु प्रमुखतः स्वच्छंदतावादी है और उसका प्रधान रस शृंगार है । उनकी प्रारम्भिक रचना 'पंचवटी-प्रसंग'

यद्यपि विषय की दृष्टि से पौराणिक है, परन्तु उसका चित्रण पूर्णतः स्वच्छन्दतावादी कहा जा सकता है। प्रकृति की रमणीक चित्रपटी पर राम और सीता जैसे तरुण नायक-नायिका का चित्र आज्ञाकारी और भ्रातृवत्सल वीर लक्ष्मण के साथ अंकित किया गया है। इसमें आंशिक रूप से उदात्त दार्शनिक तथ्यों का योग भी है। प्रकृति, जीव और जगत् के रहस्यों पर प्रकाश डाला गया है। एक विनोदात्मक वातावरण की सृष्टि हुई है। 'परिमल' की अधिकांश रचनाओं में प्राकृतिक और मानवीय शृंगार के साथ वीर रस और क्रांतिकारी भावना का मणि-कांचन योग हुआ है। कहीं-कहीं अतीत के चित्र भी मिलते हैं, जैसे 'यमुना के प्रति' शीर्षक कविता में। दार्शनिकता का पुट प्रायः सभी रचनाओं में मौजूद है। पर कुछ कृतियाँ तो विशुद्ध दार्शनिक हैं। विविध रूपों के सौंदर्यों का वर्णन बार-बार आया है। प्रकृति को नारी रूप में। देखने की शैली अनेकशः अपनायी गई है। प्रायः यही प्रवृत्तियाँ उनकी 'गीतिका' में भी मिलती है। इसके अतिरिक्त कुछ राष्ट्रीय भावना से सम्पन्न गीत भी मिलते हैं। संक्षेप में यही उनकी पूर्ववर्ती काव्य की विषय और भाव-योजना है।

निराला के परवर्ती काव्य में अनेक नये विषयों का चुनाव किया गया है। 'तोड़ती पत्थर' जैसी कविता में सामाजिक जीवन के वैषम्य का चित्र है। 'खंडहर के प्रति', 'मित्र के प्रति' कविताओं में व्यंग्य की प्रवृत्ति दिखाई देती है जो प्रारम्भिक रचनाओं में नहीं है। 'राम की शक्तिपूजा' में एक बार फिर से पौराणिक इतिवृत्त लिया गया है, इस पर कविता में 'पंचवटी प्रसंग' की सी प्रगल्भ भावधारा नहीं है, बल्कि यथार्थ मनोवैज्ञानिक चित्रण और औदात्य की प्रवृत्ति है। 'तुलसीदास' भी एक काल्पनिक मनोवैज्ञानिक काव्य है, जिसमें गोस्वामी तुलसीदास के मानसिक परिवर्तन की घटना ही केन्द्र में है।

'अणिमा' में यद्यपि कुछ 'गीतिका' की शैली के गीत भी हैं, परन्तु क्रमशः निराला के गीत भाषा की दृष्टि से अधिक सरल और भावना की दृष्टि से अधिक संयत होने लगे हैं। 'मैं अकेला' (सन् ४०) जैसे गीत में बैयक्तिक अवसाद का चित्र है, जो 'कभी न होगा मेरा अन्त' जैसे निराला के प्रारम्भिक काल के गीत से भिन्न भावधारा का द्योतक है। इसी प्रकार 'प्रसादजी के प्रति', 'संत कवि रविदास के प्रति', 'विजयालक्ष्मी पंडित के प्रति', 'श्रीमती महादेवी वर्मा के प्रति' जैसे सामयिक विषयों से सम्बन्धित प्रशस्तियाँ हैं, जो निराला के पूर्ववर्ती काव्य में नहीं आई हैं। 'सड़क के किनारे दूकान हैं' जैसी यथार्थोन्मुखी शैली की वस्तुचित्रण-प्रधान कविता भी निरालाजी लिखने लगे थे।

'बेला' और 'नये पत्ते' की कविताओं में निरालाजी के व्यंग्यात्मक प्रयोगों का बाहुल्य है। 'बेला' की तो शैली भी उर्दू प्रमुख हो चली है। इन दोनों पुस्तकों

में निराला जी की भाषा, चित्रण-प्रकार और विचार-भूमिका अधिक सरल और यथार्थोन्मुख होने लगी है जब कि उनकी आरम्भिक कविताओं की विषयवस्तु एक प्रसन्न शृंगारिकता से ओतप्रोत है तब उनकी परवर्ती कविताओं में व्यंग्यात्मक चित्रण और हास्यविनोद के साथ अधिक गंभीर प्रकार की आत्मनिष्ठता आने लगी है। उनकी 'अर्चना', 'आराधना' और 'गीतगुंज' उनके विनय-भाव और आत्मनिवेदन की प्रतिनिधि कृतियाँ कही जा सकती हैं।

(रस की दृष्टि से निराला का परवर्ती काव्य हास्य, रौद्र, शांत और करुण तत्वों से आपूरित है।)

परवर्ती काव्य का विहंगावलोकन

(युग की संवेदना से द्रवीभूत निराला का व्यक्तित्व किसी स्थिर-बिन्दु पर नहीं रुकता है। काल की गति और निरालाजी की नई स्वीकृति केवल उनके व्यक्तित्व की भावात्मक ग्रहणशीलता को ही नहीं सूचित करती, जैसा कि छायावादी अन्य कवियों में देखा जाता है। निराला में बौद्धिक उन्मेष तथा वातावरण की यथा-स्वीकृति का पक्ष भी प्रबल रहा है। उनके मन की अभिव्यक्ति साहित्य में फायड के दिवास्वप्न के सिद्धांत को लेकर नहीं होती, उसमें वैयक्तिक जीवन की अन्तर्मुखी वायवीयता नहीं है। उसकी भूमि वस्तुमुखी तत्वों से युक्त है।)

यदि हम निराला के प्रारम्भिक साहित्य को लक्ष्य करके नये काव्य का मूल्यांकन करें तो हमें ज्ञात होता है कि निराला अवचेतन से चेतन की व्यापक एवं व्यक्त चित्रपटी को बौद्धिक धरातल से देखने लगे हैं।) इस प्रकार निराला का परवर्ती काव्य उनके चेतन-व्यक्तित्व, समाजशास्त्रीय धरातल, नवीन समाजवादी-मनोभावना तथा जनसमाज की दैनिक समस्याओं पर विचारात्मक व्यंग्यों से पूर्ण है। यदि पूर्ववर्ती काव्य मानवीय अन्तश्चेतना में निहित तात्त्विक-जिज्ञासा की अध्यात्मपरक अभिव्यक्ति करता है, तो परवर्ती काव्य चेतना-जगत की मानवीय समस्याओं को निकटता से देखता है। यदि पूर्ववर्ती काव्य राष्ट्रीय सीमाओं में जातीय व्यक्तित्व के गुणों की संस्कृति से सन्निहित है, तो परवर्ती काव्य सामाजिक वैषम्यों की गहन अनुभूतियों पर आश्रित है। निराला १९३९ के बाद जनजीवन की दैनन्दिनी के दर्शक रहे हैं, समस्याओं के विचारक, कार्यशक्ति के प्रेरणा-संचालक रहे हैं। यही कारण है कि उनका परवर्ती काव्य का स्वरूप नया-नया सा दिखाई देता है।)

निराला के परवर्ती काव्य की प्रवृत्तियों का आधार हम पहले देख चुके हैं, जहाँ उनके परिवर्तनशील व्यक्तित्व के कारणों पर हमने प्रकाश डाला है। सन् १९३६ तक निराला का व्यक्तित्व अव्याहत व्यक्तित्व का प्रतिनिधित्व कर रहा था। बाद में वह रूपांतरित हो गया और उसमें एक नया परिवर्तन आने लगा। 'कुकुरमुत्ता' काव्य तक उनकी परवर्ती शैली बहुत कुछ स्पष्ट हो गई थी। 'कुकुरमुत्ता' में हास्य

और विनोद की सृष्टि है। निराला का जो पूर्ववर्ती गंभीर काव्य था, 'तुलसीदास' रचना में जो औदात्य था, 'गीतिका' में जो सौंदर्य-सृष्टि थी, उसके स्थान पर हलके हास्य की सृष्टियाँ कवि के बदले हुये दृष्टिकोण को सूचित करती हैं। जब किसी कवि के आदर्श सामाजिक संवर्षों से आहत हो जाते हैं, तब वह संसार को विनोद की दृष्टि से देखने लगता है। उसकी गंभीर आस्थायें दुर्बल हो जाती हैं। जगत के विषय में दृष्टिकोण बदल जाता है। १९३६ तक निराला की रचनायें स्थिर रही हैं, वे समरस हैं। ३६ के पश्चात् उनकी अनुभव-भूमि बदली है, पर जीवन-लक्ष्य नहीं बदला। महान कवि संकल्पवान होते हैं। उनके संकल्प टूटते नहीं। क्षतविक्षत भले ही हो जाये, पर मूलवस्तु दूर नहीं होती। स्वच्छन्दतावाद उनके इस लक्ष्य का साधन रहा है। उनकी निर्बाध प्रेम की भावनायें उनके सांस्कृतिक आदर्श के अनुरूप रही हैं। स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियाँ उस आदर्श के सहायक रूप में आई हैं।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि १९४२ की क्रांति और बंगाल का अकाल भारतीय राजनीति और भारतीय जनता की भविष्यगत का सूचक था। साथ ही दमनकारी नीति और आतंकवादी मनोवृत्तियों से नया समाज मर्महत हो चुका था तथा भारतीय पूंजीवाद के प्रारम्भिक विकास में शोषण और शोषित वर्ग की समस्याएँ उभरने लगी थीं। निराला का आर्थिक अभाव और उसकी प्रतिक्रिया से बना नया मन जागरूकता को लेकर समाज के यथार्थ धरातल को स्पर्श करने लगा।

परवर्ती काव्य के केन्द्रीय तत्व : (अ) नयी जीवन-चेतना, (ब) नये विषय, (स) नई काव्य शैली (द) नयी भाव-भाषा-योजना।

यदि निराला के परवर्ती काव्य की आरम्भिक तिथि सन् ३८-३९ के बीच की मानी जाय और यदि उसके दो तीन वर्ष पहले की 'सरोजस्मृति', 'तुलसीदास' 'राम की शक्तिपूजा' और आरम्भिक ध्यंगात्मक उक्तियों को उनकी संक्रांतिकालीन भाव-भूमिका से संबद्ध माना जाय, तो हम कह सकते हैं कि निराला के परवर्ती काव्य का मूल तत्व जीवन के प्रति, विशेषकर सामाजिक जीवन के प्रति, एक अवसादात्मक दृष्टिकोण है। इस समय तक निरालाजी काफी संघर्ष झेल चुके थे और उनकी आरम्भिक आशावादिता और प्रखर पौरुष, उनकी सौंदर्य-चेतना और उनकी उदात्त दार्शनिकता सभी कुछ बाधित होने लगे थे। उनकी पूर्ववर्ती कविताएँ सभी रसों की हैं। परन्तु उन सब में कवि की दृष्टि भावात्मक या रचनात्मक बनी हुई है। उनकी पूर्ववर्ती कविता में एक सहजता पाई जाती है। भाव और भाषा का अप्रतिम सामंजस्य देखा जाता है। गीतिका की कल्पना-छवियाँ अतिशय सुसज्जित हैं और आह्लादमूलक हैं। इन कविताओं का प्रवाह और इनका सौंदर्य-संसार अस्खलित है। वे सब भावात्मक प्रगीत-रचना के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। किन्तु निरालाजी की परवर्ती कृतियों में नये तत्वों का आगमन हुआ है। एक समय था, जब उन्होंने यह

घोषणा की थी कि हिन्दी में मुक्त-छंद काव्य की मुक्ति का परिचायक है।^१ मनुष्यों की मुक्ति की तरह काव्य की भी मुक्ति होती है। यद्यपि निरालाजी के इस वक्तव्य में छंद को ही काव्य का पर्याय मान लेने की अतिरंजना है; प्रत्येक मुक्तछंद अनिवार्य रूप से काव्य की मुक्त भाव-भूमिका का प्रतीक नहीं हो सकता। परन्तु निरालाजी के इस कथन से इतना तो सूचित होता ही है कि उनकी आरम्भिक रचनाएँ काव्य-रूढ़ियों के विरुद्ध एक क्रांति का संदेश लेकर आई थीं। निराला के इस अतिरंजित वक्तव्य में उनकी उस समय की प्रवृत्ति का, उद्दाम भावावेग का परिचय मिलता है। उनके परवर्ती काव्य में यह भावोद्वेग बहुत कुछ प्रशमित हो गया है और अब वे जीवन को अधिक पैनी निगाह से और तथ्यमूलक दृष्टि से देखने लगे हैं। निराला की आरम्भिक सांस्कृतिक चेतना समाप्त नहीं हुई है। उनकी मूल जीवन-दृष्टि ज्यों-की-त्यों बनी हुई है। परन्तु उनके सांसारिक अनुभवों में परिवर्तन अवश्य आया है।

परवर्ती काव्य में निराला की शैली, निराला के वर्ण-विषय बदलने लगे हैं। 'अणिमा' में उन्होंने संत रविदास से लेकर विजय लक्ष्मी पण्डित तक को अनेक श्रद्धांजलियाँ और प्रशस्तिगीत भेंट किये हैं। स्पष्टतः ये कवितायें गतिशील या प्रखर व्यक्तित्व की परिचायिका नहीं है। निरालाजी मुड़कर पीछे की ओर देखने लगे हैं। इसी प्रकार 'भगवान बुद्ध के प्रति' और 'सहस्राब्दी' शीर्षक रचनाओं में निरालाजी की दृष्टि अतीत की ओर चली गई है।

इस परवर्ती काल में निरालाजी अपने चित्रणों में अधिक वस्तुमुखी हो गये हैं। 'स्वामी प्रेमानंद जी महाराज' शीर्षक कविता की पार्श्वभूमि इस प्रकार बनाई गई है—

आमों को मंजरी पर
उतर चुका है बसन्त,
मंजु-गुंज भीरों की
बीरों से आती हुई,
शीत-वायु ढो रही है,
मन्द-गन्ध रह-रह कर।

१ देखिये—निराला की 'परिमल' की भूमिका, पृ० १२ : "मनुष्यों की मुक्ति की तरह कविता की भी मुक्ति होती है। मनुष्यों की मुक्ति कर्मों के बन्धन से छुटकारा पाना है, और कविता की मुक्ति छंदों के शासन से अलग हो जाना है। जिस तरह मुक्त मनुष्य कभी किसी तरह भी दूसरे के प्रतिकूल आचरण नहीं करता, उसके तमाम कार्य औरों को प्रसन्न करने के लिये होते हैं—फिर भी स्वतन्त्र, इसी तरह कविता का भी हाल है।"

विनोद, व्यंग्य-विडंबना, प्रयोग और प्रगति के सारे आयामों को पार कर निराला अपने अन्तिम वर्षों में फिर से अपनी भावात्मक भूमिका पर उतर आये थे। परन्तु जहां उनके आरम्भिक काव्य में भावना का तरल उच्छ्वास है वहां इन अन्तिम वर्षों में अधिक मार्मिक और प्रगाढ़ भाव-संवेदन उभर उठा है। यह ठीक है कि इन अन्तिम वर्षों में निरालाजी ने कोई लम्बी या विशद काव्य-रचना नहीं की। परन्तु इन छोटे गीतों में उन्होंने अपने हृदय और अपनी समग्र काव्य-साधना का सार रख दिया है।

अपने समस्त परवर्ती काव्य में निराला अपनी अभिव्यंजना को सरलतर बनाते गए हैं, और यह एक बड़े कवि के प्रौढ़ काल की स्वाभाविक परिणति कही जा सकती है। इस भूमिका पर निराला की तुलना टालस्टाय जैसे मनीषी से की जा सकती है, जिसने अपनी अन्तिम कृतियों में समस्त अलंकरण का परित्याग कर सीधी और चोट करने वाली ऐसी सरल शैली का प्रयोग किया है, जो आबाल-वृद्ध सबकी समझ में आती है। निराला के इन परवर्ती गीतों में भाषा की वैसी ही सरलता है, पर साथ ही उनकी काव्यात्मक विशेषता समाप्त नहीं हुई है। इन गीतों की भाषा अधिक व्यंजक हो गई है। प्रायः छोटे छन्दों में एक समग्र भाव की योजना भाषा के अर्थप्रवण प्रयोग पर ही अवलंबित है। यही नहीं, निरालाजी के इन गीतों में अनेकानेक मुहावरे और लोकोक्तियां आई हैं। सम्भवतः निराला ने अपनी उद्-भावना से अनेकानेक नये भाषा-प्रयोग भी किये हैं, जो स्वयं नया मुहावरा बन गये हैं। जब कि निराला-काव्य की आरम्भिक भाषा संस्कृत के सौन्दर्य से समुपेत है, तब उनके परवर्ती गीतों में हिन्दी भाषा का अपना निखार, अपनी व्यंजकता और अपना स्वारस्य आ सका है।

● निराला के परवर्ती काव्य की पूर्व पीठिका :

(१) आरंभिक समाजोन्मुख रचनायें-निराला के आरम्भिक काव्य में सामाजिकजीवन के प्रत्यक्ष अनुभव विद्यमान हैं ; परन्तु वे सभी प्रसंग भावात्मक हैं और प्रायः करुण रस की सृष्टि करते हैं। कुछ क्रांतिमूलक भावनायें भी व्यक्त हुई हैं, जिनमें वीर रस का प्राधान्य है। कतिपय उद्बोधनात्मक कविताएं और पत्र-गीत भी हैं।

✓ करुणरस की कविताओं में 'परिमल' की 'दीन', 'भिक्षुक', 'विधवा', कवितायें उल्लेखनीय हैं। उदाहरणों में 'बादल राग', 'जागो फिर एक बार', 'महाराज शिवाजी का पत्र', आदि रचनायें हैं। विशुद्ध गीत में लिखा गया 'जागो जीवन घनिके' गीत भी समाज के आर्थिक विकास से सम्बन्धित है। इन सभी कविताओं में व्यंग्य का पक्ष गौण है, भावात्मक पक्ष की प्रधानता है। निराला के परवर्ती काव्य में यह भावात्मकता व्यंग्यात्मकता में परिणत हो गई है।

'दीन' कविता में निराला जी लिखते हैं—

यहाँ कभी मत आना,
उत्पीड़न का राज्य, दुख ही दुख
यहाँ है सदा उठाना ।
क्रूर यहाँ पर कहलाता शूर,
और हृदय का शूर सदा ही दुर्बल क्रूर
स्वार्थ सदा रहता परार्थ से दूर,
यहाँ परार्थ वही जो रहे
स्वार्थ से ही भरपूर ।^१

उत्पीड़न की इस चर्चा के साथ निरालाजी संसार के जीवन को ही दुःखमय बतलाते हैं और सांसारिक जीवन के प्रति क्षोभ प्रकट करते हैं। वे कहते हैं—

यही मेरा इनका सबका स्पन्दन
हास्य से मिला हुआ क्रंदन ।
यही मेरा इनका उनका सबका जीवन
दिवस का किरणोज्वल उत्थान
रात्रि की सुप्ति पतन

स्पष्ट है कि इस रचना से निरालाजी 'दीन' के प्रति संवेदना प्रकट करते हुए भी समस्त सांसारिक जीवन को ही दुःखमय मान लेते हैं। अतएव यह कविता विशुद्ध रूप से सामाजिक वैषम्य से संबंधित बन सकी है।

इसी प्रकार 'भिक्षुक' कविता में निरालाजी ने 'भिक्षुक' का दयनीय चित्र खींचा है। देखिये—

वह आता—
दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता ।
पेट-पीठ दोनों मिलकर हैं एक,
चल रहा लकुटिया टेक,
मुट्ठी भर दाने को-भूख मिटाने को—
मुंह फटी-पुरानी झोली का फैलाता^२

यहां भिक्षुक हमारी सहानुभूति तो आकृष्ट करता है, पर हमारे सामाजिक आक्रोश के लिए भूमिका नहीं देता। 'विधवा' कविता में भी कर्णरस का सुन्दर परिपाक हुआ है।

१ निराला : परिमल— 'दीन' कविता से - पृ० १४४।

२ निराला : 'परिमल'-भिक्षुक कविता से - पृ० १३३।

दुख-रूखे सूखे अधर त्रस्त चितवन को
 वह दुनिया की नजरों से दूर बचाकर,
 रोती है अस्फुट स्वर में;
 दुख सुनता है आकाश धीर,
 निश्चल समीर,
 सरिता की वे लहरें भी ठहर ठहर कर ।^१

किन्तु इस विधवा के वैधव्य का दोष दैव पर दे दिया गया है और भाग्य की भूमि पर सारी कविता खड़ी रह गई है।

इन करुणरस की कविताओं के समकक्ष ही क्रांति की भावना से आपूरित कुछ रचनायें हैं, जिनमें 'बादल राग' प्रमुख है। परन्तु क्रांति का तथ्यात्मक स्वरूप सर्वत्र साकार नहीं हुआ। अंतिम 'बादल राग' में किसानों के स्वागत योग्य और अट्टालिका में निवास करने वाले सम्पन्न जनों के लिये भयावनी क्रांति का आभास भी दिया गया है, फिर भी इन रचनाओं में कल्पना और अलंकृतियाँ इतनी प्रमुख हो गई हैं कि विद्रोह का सामाजिक पक्ष पूरी तरह उभर नहीं पाया।

रुद्ध कोश, है क्षुब्ध तोष,
 अंगना-अंग से लिपटे भी
 आतंक-अंक पर काँप रहे हैं
 धनी, वज्र गर्जन से, बादल,
 त्रस्त नयन-मुख ढाँप रहे हैं ।
 जार्ण बाहु, है शीर्ण शरीर,
 तुझे बुलाता कृषक अधीर,
 ऐ विप्लव के वीर !
 चूस लिया है उसका सार,
 हाड़ मात्र ही हैं आधार,
 ऐ जीवन के पारावार ।^२

'जागो फिर एक बार' की दोनों रचनाएँ सामाजिक उद्बोधनात्मक हैं; परन्तु इनमें पहली तो दार्शनिक उद्बोधन ही बन सकी है। दूसरी कविता में सामाजिक पक्ष अधिक मात्रा में आया है।

सिंह की गोद से
 छीनता रे शिशु कौन ?

१ निराला : परिमल—'विधवा' कविता से पृ० १२६।

२ निराला : परिमल—'बादल राग' (६) पृ० १८८।

मौन भी क्या रहती वह
 रहत प्राण ? रे अजान !
 एक मेषमाता ही
 रहती है निर्निमेष,
 दुर्बल वह—
 छिनती सन्तान जब
 जन्म पर अपने अभिशप्त
 तप्त आंसू बहाती है,—
 किन्तु क्या ?
 योग्य जन जीता है,
 पश्चिम की उक्ति नहीं,
 गीता है, गीता है,
 स्मरण करो बार-बार—
 जागो फिर एक बार ।^१

यहाँ पर 'जागरण' के लिये बड़ी सुन्दर रूपयोजना की गई है। यद्यपि इस कविता में भी भावोद्रेक की प्रधानता है, तथ्यनिर्देश की नहीं। 'महाराजा शिवाजी का पत्र' अधिक व्यावहारिक भूमिका पर आया है। इसमें राष्ट्रीय एकता का संदेश मुखरित हुआ है और देश-प्रेम की भावना उद्दीप्त हुई है। इस कविता का लक्ष्य राजनीतिक है। इसे हम साम्राज्यवादी व्यवस्था के विरुद्ध निराला का आक्रमण मान सकते हैं। 'गीतिका' में आई हुई 'जागो जीवन घनिके' कविता में निरालाजी ने भारतीय दैन्य के निवारण के लिये भारत-लक्ष्मी का आवाहन किया है। सामान्यतः गीतों में 'निराला' अपनी वैयक्तिक भावचेतना को ही अभिव्यक्त करते रहे हैं। परन्तु इस कविता में उन्होंने एक सामाजिक यथार्थ पर दृष्टि डाली है और देश के आर्थिक उत्थान का संकेत दिया है।

● पूर्ववर्ती काव्य में व्यंग-विडम्बना

निरालाजी का पूर्ववर्ती काव्य भारत की सांस्कृतिक, दार्शनिक तथा राष्ट्रीय चेतना की सौन्दर्यमयी अभिव्यक्ति करता है। वस्तुपक्षीय विस्तार में स्वच्छन्दतावादी कला-सौष्ठव के उत्तम उदाहरण हमें उनकी प्रारम्भिक रचनाओं में मिलते हैं, यद्यपि रहस्यवादी और वेदान्तिक दर्शन की पुष्टि भी उनकी कविताओं के अंतिम चरणों में मिलती है। दृश्य-सौन्दर्य एवं मानवीय प्रेम की स्वस्थ स्थली में रहस्य-प्रवृत्ति का स्वरूप उनके काव्य को परम सामाजिकता प्रदान करता है। इसका अर्थ यह नहीं कि उन्होंने कविता को दार्शनिक की चिन्तादृष्टि से देखा है, कलाकार की भाँति

निराला की कविताओं का सौंदर्य वस्तु और उसकी विकासात्मक चेतना को भी मुखरित करता है। 'अनामिका', 'परिमल' उनकी स्वच्छंदतावादी दृष्टि के सफल प्रयोग हैं। परन्तु 'दूसरी अनामिका' (बृहत संस्करण) में, जिसमें १९३८ तक की कवितायें मिला दी गयी हैं, यत्र-तत्र उनकी यथार्थवादी, व्यंग्य-विनोदात्मक शैली की कविताओं के उदाहरण भी मिल जाते हैं, जिनको क्रमशः इस प्रकार देखा जा सकता है। यों व्यंग्य-विनोद की प्रवृत्ति अपने में कोई गंभीर प्रवृत्ति नहीं है। हास्यतत्त्व के मूल में बुद्धितत्व भी यथेष्ट मात्रा में रहता है। उनकी एक प्रवृत्ति विनोदात्मक-व्यंग्यात्मक काव्य की दृष्टि से स्वतंत्र प्रकार की है। उनकी 'मित्र के प्रति' कविता (७-७-३५) में नये उन्मेष की भावना का स्वरूप प्रेरणा-ग्रहण के रूप में मिलता है।

“कहते हो, नीरस यह
बन्द करो गान—
कहां छंद, कहां भाव
कहां यहां प्राण” १

भाव के बन्धनों में मानवता के नए स्वरों की गुंजार संभव न थी। प्रेम की अन्तर्मुखता में 'कल्याण की पुनीत भावना को जगह नहीं थीं, अहं के व्यक्तीकरण में समाज की अभिव्यक्ति अग्राह्य थी। अतः प्राणों की लालसा मानवीय हित-साधनों में ही निहित थी, जिसको निराला के कवि मन ने निकट से अनुभव किया था। समाज और व्यक्ति की समस्या को बुद्धिवादी-स्वरूप प्रदान करके निराला ने बहुजन-पक्षीय दृष्टि में उसका समाधान खोजा है। उनकी 'दान' कविता (१५-४-३५) इस प्रकृति का प्रारम्भ-बिंदु कही जा सकती है। बसंत की रम्य प्रकृति के प्रत्यूष-काल का आकर्षक सौंदर्य, कवि-मन में हिल्लोल पैदा कर देता है और गोमती नदी के पुनीत तट पर निर्मित एक पुल पर खड़ा होकर व्यष्टि-चेतना के सौंदर्य के साथ वह सामाजिक-समस्याओं में उलझ जाता है। वह सोचने लगता है कि जब दयामयी प्रकृति स्वयं सब कुछ देती है, तब उसमें व्यवधान उपस्थित करने की कोई आवश्यकता नहीं है। मानव ही उस विश्व-सृजन-क्रिया में श्रेष्ठ उपलब्धि है। लेकिन—

फिर देखा, उस पुल के ऊपर
बहु संख्यक बैठे हैं वानर।
एक ओर पथ के, कृष्ण काय
कंकाल शेष नर मृत्यु-प्राय
बैठा सशरीर दैन्य दुर्बल,
भिक्षा हो उठी दृष्टि निश्चल

अति क्षीण कंठ है, है तीव्र स्वास
जीता ज्यों जीवन से उदास ।^१

और पुण्य-प्राप्ति के इच्छुक धार्मिक पुरुष जो प्रतिदिन सरिता-मज्जन करने जाते हैं, झोली से पुए निकालकर बंदरों को देते हैं, तब उन्होंने—

देखा भी नहीं उधर फिर कर
जिस ओर रहा वह भिक्षु इतर;
चिल्लाया किया दूर दानव,
बोला मैं 'धन्य, श्रेष्ठ मानव ।'^२

निराला ने मानवीय प्रवृत्तियों को प्रकृतिस्थ रूप देकर प्रथमवार उसकी यथार्थवादी स्थिति को विवेचित किया है। 'दान' कविता की शैली संस्कृत गर्भित तथा सामान्य खड़ी बोली के मेल में स्वच्छन्दतावादी ही है। उनकी 'सच है' कविता (७-१०-३५) में यथार्थवादी शैली का नया प्रयोग दिखाई देता है जिसमें कवि की लालसा, 'जनता का ज्ञान' तथा सच्चे कल्याण की भावना है। ११-७-३७ की 'वन-बेला' कविता में कवि प्राकृतिक दृश्य-स्थली में एकाएक सोचने लगता है—

मैं भी होता यदि राजपुत्र—
जितने पेपर, सम्मानित कण्ठ से गाते मेरी कीर्ति अमर,
लक्षपति का यदि कुमार /
होता मैं शिक्षा पाता अरब-समुद्र-पार,
देश की नीति के मेरे पिता परम पण्डित
एकाधिकार रखते धन पर भी, अविचल-चित
होते उग्रतर साम्यवादी, करते प्रचार,
चुनती जनता राष्ट्रपति उन्हें ही सुनिर्धार,
पैसे में दस राष्ट्रीय गीत रचकर उन पर
कुछ लोग बेचते गा-गा गर्दभ-मर्दन-स्वर,—^३ इत्यादि

युग की समस्याओं को छल कपट, पैसा और कूटनीतिज्ञता से बस में करने वाले राजनीतिज्ञ, जो देशोद्धार की बातों में जातिगत, परिवारगत स्वार्थों से भरे हुये हैं; जिनकी यश-प्रशस्ति को बढ़ाने में पेशेवर कवि गान रच रहे हैं, जिनके परिवार की भी, स्थिति अतिरिक्त विलासों तथा विदेशी वस्तुओं की सहज प्राप्ति से अनोखी है, जिनके लड़के विलायत में शिक्षा पाते हैं; आदि—पूँजीवादी वर्ग पर व्यंग किया गया है। इसी प्रकार 'हिन्दी के सुमनों के प्रति' (७-४-३७) कविता में भाषा-विचार

१ निराला : अनामिका, 'दान' कविता से, पृ० २४।

२ वही, पृ० २५।

३ निराला : अनामिका—'वनबेला' कविता से, पृ० ८५-८६।

पर व्यंग्य-दृष्टि तथा 'ठूठ' (१६-६-३७) कविता में कवि अपने को मानव के रूप में मानकर उसकी पूर्वप्रवृत्तियों पर व्यंग्य करता हुआ दिखाई देता है।

ठूठ यह है आज।

गई इसकी कला,

गया है सकल साज।

झरते नहीं यहाँ दो प्रणयियों के नयन-नीर,—^१

इस प्रकार निराला के पूर्ववर्ती व्यंग्य-काव्य का प्रथम चित्र 'दूसरी अनामिका' में प्राप्त कुछ रचनाओं में दिखाई देता है। छायावादी-रहस्यवादी दृष्टि से यथार्थवाद की ओर प्रयाण, प्रगतिवादी दृष्टि का भावात्मक रूप, हास्य-व्यंग्यों से भरी अभिव्यक्ति जिसमें अप्रत्यक्ष ध्वनियाँ हैं, इस संग्रह में यत्र-तत्र मिल जाती हैं, परन्तु यहाँ समाधान खोजने का लक्ष्य प्रतीत नहीं होता। एक मर्माहत संवेदना से भरा हुआ गान ही प्रस्तुत किया गया है। इन कविताओं की आत्मा में निरालाजी की अपनी परिस्थितियों तथा सामाजिक विकृतियों की प्रतिक्रिया का स्वरूप परिलक्षित होता है। शैली की दृष्टि से इन्हें यथार्थवादी नहीं कहा जा सकता। स्वच्छंद छंदों में लय का बन्धन तथा संस्कृत-गर्भित क्लिष्ट भाषा का प्रयोग भी इनमें मिलता है। यह स्वच्छंदतावादी भूमिका पर यथार्थ वस्तु के प्रयोग की उपलब्धियाँ हैं। निरालाजी इसी प्रारंभिक भूमिका से यथार्थवादी-व्यापक क्षेत्र को सफलता के साथ अपना सके हैं, जिस पर उनका परवर्ती काव्य रचित है।

● निराला के परवर्ती काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

निराला के पूर्ववर्ती काव्य की भाषा संस्कृत भाषा के सौंदर्य से संपन्न है। इस परवर्ती काव्य में निरालाजी ने हिंदी की भूमिका अपनाई है। यहाँ हम हिंदी की अपनी अलंकृति का काव्य पाते हैं। निराला में इतनी क्षमता है कि वे एक ओर अपनी संस्कृत ढंग की कविता प्रस्तुत करते हैं तो दूसरी ओर हिंदी के वैशिष्ट्य और महत्ता को प्रकट करके वे संस्कृत-मिश्रित हिंदी काव्य प्रस्तुत करते हैं। इस नये काव्य में हिंदी उर्दू का भी मेल-जोल है। परवर्ती रचनाओं में कुछ तो धारा हास्य-व्यंग्य की है; कुछ सामाजिक वेषम्यों से प्रेरित रचनाएँ हैं। कुछ चमत्कार-प्रधान कविताएँ हैं। नयी भाषा शैली, नये भाव आदि सभी एक प्रकार की प्रयोगवादी रचनाएँ हैं। उर्दू गजल आदि की कृतियाँ भी इसी काव्य के अंतर्गत आती हैं। साहित्यिक वैशिष्ट्य की दृष्टि से उनकी परवर्ती रचनाएँ यथार्थोन्मुख हैं। इसलिये कहा जाता है कि निरालाजी परवर्ती काव्य में लोकोन्मुख हैं। यों परवर्ती काव्य-कृतियाँ तो आत्मनिवेदन से संबंधित हैं और यदि कहीं यथार्थवाद है, तो उनके व्यक्तिगत दृष्टिकोण में है।

व्यंग्यात्मक रचनाओं में जो यथार्थवाद है वह जीवन-सौंदर्य के विरोध में है। इसी विरोध में कुरूपता नजर आती है। कुरूपता को देखने वाला यथार्थवाद एक प्रकार का औपचारिक यथार्थवाद है। कहीं-कहीं गहरी कुरूपता के चित्र भी अंकित किये हैं जो एक प्रकार का नग्न चित्रण है। जो असामान्य सौंदर्य के चित्र हैं, वे निरालाजी की उदात्त कल्पनाओं के द्योतक हैं। उनकी प्रगतिशील कविता—

वह तोड़ती पत्थर,

देखा मैंने उसे इलाहाबाद के पथ पर—

आदि में सामाजिक वैषम्य का चित्रण है जो इतिवृत्तात्मक है। इसमें सशक्त विद्रोह की कल्पना परिलक्षित नहीं होती। निराला के छंद, भाषा और कथन-शैली सब नये प्रयोग के परिचायक हैं।

प्रगति और प्रयोग को सिद्धांत-दृष्टि देकर निराला दोनों के वादीय पक्ष से ऊपर उठ जाते हैं। साहित्य में जिसे प्रगतिवाद और प्रयोगवाद कहा गया है, निराला उसके प्रथम सिद्धांत-दायक हैं। परन्तु रचना-भूमि पर वे दोनों शैलियों को अधिक व्यापक बना देते हैं। कहने का अर्थ यह है कि निराला ने न तो स्वयं को साम्यवादी सिद्धांत-कर्त्ता कहा; न स्वयं को प्रयोग-कर्त्ता के रूप में सिद्धांत-अनुगामी होने दिया है। यही कारण है कि उनके बुद्धिपरक सामाजिक व्यंग्य यथार्थवत् होकर भी स्वाभाविक स्वच्छन्दता के अनुकूल तथा रुढ़िगत प्रयोगशीलता के प्रतिकूल हैं। यहाँ हम निराला के परवर्ती काव्य की कुछ मुख्य प्रवृत्तियों पर विचार करेंगे।

(१) वस्तुमुखी या यथार्थोन्मुख चित्रण : निराला का परवर्ती साहित्य जीवन की समस्याओं को खुले रूप में प्रस्तुत करता है। उनके कथा साहित्य, उनके काव्य 'कुकुरमुत्ता', 'बेला', 'नये पत्ते' आदि में यथार्थोन्मुख शैली का चित्र प्रस्तुत किया गया है। निरालाजी के यथार्थवाद का स्वरूप न तो प्रगतिशील कलाकारों की भांति साम्यवादी सिद्धांतों की दलील प्रस्तुत करता है और न प्रवृत्ति-पक्ष में उसके आंशिक पक्ष का उद्घाटन करता है। उनका यथार्थ अनुभवमूलक है, जिसमें जन-मन के अभावों की, उनकी बाह्य दयनीयता की मर्मस्पर्शी रूपरेखा मिलती है। उसका समाधान प्रेमचन्द की प्रचारात्मक एवं सुधारात्मक प्रवृत्ति में नहीं किया गया है। वरन् प्रसाद जी के 'कंकाल' की भांति बौद्धिक धरातल से पर्दाफाश के रूप में किया गया है। मानव का मानव की रुज्जात्मक प्रकृति पर जो व्यंग किया गया है, वह सामाजिक समस्याओं का ही समाधान बन जाता है। 'कुकुरमुत्ता' का मर्म इसी मानवीय पक्ष के उभारने में तर्क-परक व्यंग्य को सामने लाता है। यहाँ हम निराला के यथार्थवाद की विवेचना नहीं कर रहे हैं, उस प्रवृत्ति के स्वरूप और क्षेत्र का एक रूप-चित्र ही दे रहे हैं। निराला का यथार्थवाद वर्गीय समस्याओं से लेकर देशीय और विदेशीय विषय-वस्तुओं तक, समाज के व्यक्तिपरक आधार से लेकर उसके

समूह-परक रूप तक प्रसरित है। निराला की इस नवीन वस्तुमुखी दृष्टि का एक स्वाभाविक परिणाम उनकी चित्रण-शैली में भी नये स्वरूप का विधान है। यह नया स्वरूप यथार्थोन्मुख या वस्तुपरक ही कहा जा सकता है, जो भावमूलक और विषय-प्रधान शैली से भिन्न है। इस नवीन चित्रण-शैली के संबंध में हम इस अध्याय के प्रारंभ में संक्षेप में विचार कर चुके हैं। यहाँ हमें इतना और निवेदन करना है कि निराला जैसे उत्कृष्ट कलाकार विषयानुरूप शैली को अपनाने के लिये बाध्य थे। उन्होंने अपने पूर्ववर्ती काव्य की शैली का बहुत कुछ कायापलट ही कर दिया है। उनके परवर्ती काव्य का समस्त संसार बदला हुआ है। उन्हीं में से एक नवीन चित्रण-शैली भी है। इस यथार्थोन्मुख चित्रण-शैली के लिये भाषा को भी नया स्वरूप देना था और निरालाजी ने यह कार्य भी संपन्न किया है। नई शैली का एक उदाहरण देखिये—

✓ बहुत दिनों बाद खुला आसमान,
निकली है धूप, हुआ खुश जहान।
दिखीं दिशाएँ, झलके पेड़,
चरने को चले ढोर-गाय-भैंस-भेड़,
खेलने लगे लड़के छेड़-छेड़—
लड़कियां घरों को कर भासमान।^१

यहाँ 'भासमान' शब्द को छोड़कर शेष सारा परिधान निराला की नई कला के अनुरूप है।

(२) व्यंग, विनोद, हास्य की प्रवृत्ति : नये युग की प्रत्येक अवस्था को निरालाजी ने अपनी लेखनी का विषय बनाया है। नागरिक, ग्रामीण राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक रूपों का यथातथ्य चित्र भी खींचा है। उनका यह चित्र असंतुलन और विघटन के तत्वों पर व्यंग करता है। इसमें अनेकोन्मुख दृश्यों का बाहुल्य है।

व्यंग मूलतः बुद्धिपरक विवेचन को सामने लाता है, जिसका रूप-वैभव हलका होता है। व्यंगों के अनेक प्रकार हो सकते हैं। व्यंग वैयक्तिक भी हो सकते हैं। परन्तु निरालाजी के व्यंग सामाजिक यथार्थपरक हैं। उन्हीं व्यंगों के रूप में वे नये तर्क उपस्थित करते हैं। उनका समाधान करते हैं तथा नये समाज की चेतना को व्यापक बनाते हैं। निरालाजी के ये व्यंग हास्यात्मक शैली में मानवतावादी मर्म को सामने रखते हैं। 'कुकुरमुत्ता' भारतीय वर्गीय जीवन की साधारण व्यंग-कथा नहीं है। उसका रूप-वैभव बहुत सरल जान पड़ता है। 'नये पत्ते' की कविताओं में राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक व्यंग्यों का भरपूर चित्रण दिखाई देता है। सामाजिक व्यंग का एक उदाहरण देखिये—

दौड़ते हैं बादल ये काले काले,
हाईकोर्ट के वकले मतवाले ।
जहाँ चाहिए वहाँ नहीं बरसे,
धान सूखे देखकर नहीं तरसे ।
जहाँ पानी भरा वहाँ छूट पड़े,
कहकहे लगाते हुए टूट पड़े ।'

(२) हास्यविनोदात्मक शैली:—व्यंगों का अर्थ ही पाठक के मन पर सहज चोट करना होता है। निरालाजी के व्यंग यथार्थ जीवन से लिये गये हैं। उनकी सामाजिक उपादेयता है। वे जनता की समस्याओं को सूचित करते हैं। अतः उनकी शैली में तीखी भाव-व्यंजना प्रस्तुत की गई हैं।) उपन्यास-साहित्य में उपजातियों के वैमनस्य, ग्रामीण जीवन के प्रवृत्तिगत दोषों, नर नारियों के चारित्रिक रूपों पर यत्रतत्र व्यंग्य किये गये हैं। काव्य में उनका विकास विस्तृत भूमि पर हो सका है। हास्य विनोदात्मक शैली का एक उदाहरण इस प्रकार है—

मैं ही डांडी से लगा पुल्ला,
सारी दुनियाँ तोलती गल्ला;
मुझसे मूर्छे, मुझसे कल्ला,
मेरे लल्लू, मेरे लल्ला;
कहे रुपया या अधन्ना,
हो बनारस या नेवन्ना;
रूप मेरा, मैं चमकता,
गोला मेरा ही बमकता
लगाता हूँ पार मैं ही,
डूबता मंझधार मैं ही।
डब्बे का मैं ही नमूना,
पान मैं ही, मैं ही चूना।'

(३) प्रगतिशील भाव धारा :—जैसा कि पहले कहा जा चुका है, जिसे हिन्दी में प्रगतिवाद कहा जाता है, निराला उसके व्यावहारिक पक्ष को किसी सिद्धांतबद्धता में स्वीकार नहीं करते। वे मार्क्सिय विचारधारा से परिचित थे, परन्तु हिंसा और नागरिक क्रांति को खूनी नहीं बनाना चाहते थे। निराला ने क्रांति की सूचना दी, परन्तु उनकी क्रांति का स्वरूप वैचारिक है, बौद्धिक है, तर्कपरक है।

१ निराला : नये पत्ते, खजोहरा कविता से—पृ० ११।

२ निराला : कुकुरमुत्ता से—पृ० ६।

साहित्य-निर्माण के लक्ष्य की सजगता दिखाई देती है। यही कारण है कि उनका साहित्य विचार-भूमि पर भी गतिशील तत्वों को जुटाता रहा है।

उनके छायावादी स्वच्छंद छंद जहां लय-संगीत की ध्वनियों से नई स्वर लहरी को व्यंजना देते थे, वहीं अब विचाराधिक्य के कारण गद्यपरक हो गये हैं। उनमें काव्य-शोभा के उपकरण व्यंग्य और विनोद ही हैं। उनकी व्यंग्यात्मक रचनाओं का लक्ष्य विषयपरक है, केवल शैलीपरक नहीं।

उनके परवर्ती काव्य में उनके पूर्ववर्ती रूप भी दिखाई देते हैं। 'आराधना' और 'गीतगुंज' में उपासनापरक धार्मिक कवितायें उन्हें आस्तिक कवि के रूप में सामने लाती हैं, जिनमें वेदान्तिक स्पर्श तथा लोकपरक अध्यात्म का रूप भी देखने को मिलता है। समग्र रूप से निराला की यह गीतसृष्टि उनके संपूर्ण सृजन की परिणति कही जा सकती है। यह उनके पूर्ण व्यक्तित्व की अंतिम स्वस्थ झांकी है।

१९३९ के बाद जब निरालाजी साहित्य को सामाजिक भूमि पर लाते हैं और जनता की समस्याओं को व्यंग-शैली में व्यक्त करते हैं, तब से लेकर 'गीतगुंज' (१९५६) तक उक्त प्रवृत्तियों का ही क्रमिक विकास दिखाई देता है। समग्र रूप से निराला का यह काव्य-विकास उनके व्यक्तित्व की बहिर्चेतना का सामाजीकरण कहा जा सकता है, जिसमें जीवन के कटु अनुभवों से प्राप्त व्यंग्यों को रखा गया है। इस प्रकार उनके इस साहित्य में सामाजिक विषमता की अग्नि का धुंआ ही नहीं है, उसका प्रकाश भी दीप्तिमान होता है, यही प्रकाश उनकी आशाभूमि है, उनका गति-सूचक उत्साह है।)

निराला की हास्य और व्यंग्यमूलक कविताओं का अध्ययन

❶ काव्य में हास्य और व्यंग का अर्थ

काव्य का मूल आनन्द है। आनन्द को यदि किसी दार्शनिक या अन्य गंभीर उद्देश्य की भूमिका में बांधकर न देखें, उसे लोक-जीवन के सामयिक तथा सामासिक मूल्यों में रखकर देखें, तो बहुत कुछ वह मनोरंजन के समीप दिखाई देगा। अतः मनोविनोद या मनोरंजन भी कलागत चिन्तन के मूल में अपना स्वतन्त्र अस्तित्व रखता है। कला या काव्य के प्रयोजन में हास्य और व्यंगों की उपादेयता, सामाजिक अस्तित्व की व्यवस्थाओं से लेकर वैयक्तिक जीवन की अवस्थाओं तक, दिखाई देती है। यहाँ प्रश्न उठता है कि क्या कलागत हास्य और व्यंगों का कोई गंभीर लक्ष्य या स्वरूप नहीं हो सकता? क्या उनकी लम्बी परंपरा का स्थायित्व नई अवस्थाओं में जल्दी स्वीकार नहीं किया जा सकता? क्या इस उद्देश्य से लिखा गया साहित्य जीवन की आलोचना का मुख्य पहलू नहीं कहा जा सकता? इन प्रश्नों का उत्तर खोजने के लिये हमें साहित्य की विकासात्मक परंपरा पर दृष्टिपात करना पड़ेगा, जिसके अन्दर इस प्रकार के साहित्य का मूल्यांकन किन्हीं नये उपकरणों को ला सका है।

❷ भारतीय वाङ्मय में हास्य-व्यंग्य

भारत में कला और काव्य का इतिहास, चेतना की गंभीरतम उपलब्धियों को, जीवन-चिन्ता के फल के स्वरूप में प्रस्तुत करता है। परिणामतः भारत की ललित कलाओं का अंकन, दर्शनशास्त्र के आधार से हुआ है। स्वतन्त्र रूप से क्या की इयत्तायें आदर्शपरक भाव-सौन्दर्य की सृष्टि करती रहीं हैं। इन सबके सृजन का मूल कारण, सांस्कृतिक निष्ठा रही है। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि हास्यात्मक व्यंग्य विनोद भारतीय वाङ्मय के अंग नहीं रहे हैं। पंचतंत्र और जातक-कथाओं में, विविध धर्मों की साम्प्रदायिक-विवेचनाओं में, जातीय अहं की स्थापनाओं में, इनका स्वर सुनाई देता है। परन्तु हास्य-हास्य के लिये, व्यंग्य, व्यंग या विनोद के लिये हमारे साहित्य में कम मिलता है। पूछा जा सकता है कि भारतीय कला का लक्ष्य सदैव सुखांत माना गया है, परन्तु भारतीय सुखांत की व्यापकता में समस्त दार्शनिक

अनुचितन, जीवन का अंतिम लक्ष्य समा जाने के कारण, उसकी शारीरिकता अर्थात् स्थूल साज-सज्जा, छुटपुट रंगीनी का अभाव हो गया है।

● पश्चिमी दृष्टि

पाश्चात्य साहित्य में सुखांत की परंपरा को दुःखांत से अलग देखा गया है, उसके अपने स्वतन्त्र विवेचन हुये हैं। अरस्तू से लेकर होरेस तक हास्य की रूपरेखाओं पर शास्त्रीय पद्धति से विचार विमर्श हो चुका था। अतः इस प्रकार के साहित्य की प्राचीन परंपरा वहां देखने को मिलती है। प्रसिद्ध औपन्यासिक थेकरे ने सर्वश्रेष्ठ हास्य का गुण बतलाते हुए कहा है—‘सबसे सुन्दर हास्य वह है जो आदि से अंत तक सहृदयता और सहानुभूति से सुवासित हो।’^१ परन्तु इसमें सामाजिक सुधारात्मकता या एक प्रकार की यांत्रिक आदर्शपरकता दिखाई देती है। स्थूल लक्ष्यों की नियोजना शास्त्रीय युग की देन कही जा सकती है। मध्यकाल तथा आधुनिककाल में इसका स्वरूप बदलता रहा है।

भारतीय दृष्टि संस्कृति को ज्ञान-चेतना का उन्मेष तथा समग्रजीवन की कृति समझती है; यही कारण है कि हमारे यहाँ साहित्य का भौतिक आधार अपेक्षाकृत निर्बल रङ्ग है। पाश्चात्य संस्कृति में भौतिक दृष्टियों का प्राधान्य दिखाई देता है। जीवन को ऐहिक संभावनाओं से ऊपर किसी उच्चतर भूमिका पर नहीं देखा गया है। आनन्द को इन्द्रिय-संवेदन की इयत्ता से बांध दिया गया है। धर्म को प्रवृत्तिगत सुलभता प्राप्त करने का रास्ता बना दिया गया है। यही कारण है कि पाश्चात्य संस्कृति में जीवन के ऊपरी रूप महत्वपूर्ण रहे हैं।

साहित्य क्योंकि सामाजिक चेतना का प्रतिबिम्ब है, अतः उनके साहित्य में, मानसिक प्रवृत्तियों के गुणों-अवगुणों का चिट्ठा बड़े ही आकर्षक ढंगों से प्रस्तुत किया गया दिखाई देता है।

उनके साहित्य में दुःखांत की भूमिका का गंभीर उद्देश्य चारित्रिक उन्मेष की गम्भीरता में रहा है भले ही सामाजिकता की दृष्टि से नीतिपरक परिणकारों को महत्व दिया गया हो। अरस्तू ने रेचन सिद्धान्त के सहारे दुःखांत कृति को नीतिपरक बनाने का गंभीर विवेचन प्रस्तुत किया था। परन्तु सुखांत कृति के विवेचन में हमें भेदे रूपों की क्रियाओं का भान भी होता है, जिनका अपना स्वतंत्र शास्त्र रहा है। अधिक शास्त्रीय विवेचन में न जाकर हम अपने विषय पर ही रहना अधिक समीचीन समझते हैं।

पाश्चात्य देशों में ‘हास्य’ के कई उपकरण देखने को मिलते हैं। पाश्चात्य विद्वानों ने इसे इस क्रम से रखा है—

1 “The best humour is that which is flavoured throughout with liveliness and kindness. Thackeray : Humour and Humourists.

स्मित हास्य	(Humour)
वाक्छल	(Wit)
व्यंग्य	(Satire)
वक्रोक्ति	(Irony)
प्रहसन	(Farce)

यहाँ इन पाँचों भागों पर स्वतंत्र रूप से कुछ न कहकर केवल हास्य और व्यंग्य की चर्चा करना ही उपयुक्त है ।

● हास्य और व्यंग्य में अन्तर

प्रसिद्ध विद्वान सूलि का मत है कि 'हास्य स्पष्टतः एक भाव है; किन्तु साथ ही इसमें बौद्धिक तत्त्व की विशिष्ट योजना रहती है ।'^१

निकोल ने भी हास्य की विशेषताओं में समझदारी और नासमझी के बीच का व्यापार प्रदर्शित किया है ।

मेरिडिथ ने संतुलन की मांग प्रस्तुत की है ।

व्यंग्य का स्वतंत्र अस्तित्व नाटकों में दिखाई देता है । व्यंग्य भी सोद्देश्य होता है जिसके मूल में विनोदात्मक दंड देना कहा है । (To punish with laughter) मेरिडिथ के अनुसार 'व्यंग्यकार नैतिकता का ठेकेदार होता है । प्रायः वह सामाजिक कूड़ा कर्कट का बटोरने वाला जमादार (झाड़ूवाला) होता है ।'^२

निकोल ने कुछ नये ढंग से कहा है—'व्यंग्य इतना तित्त भी हो सकता है कि उसमें हास्य की क्षमता जाती रहती है । उसमें भारीपन आ जाता है । लेखक की नैतिक चेतना शून्य हो जाती है । उसमें सहानुभूति, दया और उदारता के भाव समाप्त हो जाते हैं । वह मनुष्य के बाह्य-स्वरूप या आकृति पर बेरहम होकर चोट करता है । वह मनुष्य के चरित्र पर आक्रमण करता है । युग के रहन-सहन पर कठोरता से आघात करता है । क्षमा करना जानता ही नहीं ।'^३ डा० बरसाने-

- 1 "Humour is distinctly a sentiment yet at the same time it is markedly intellectual."—Sully.
- 2 "The satirist as a moral agent often a social scavenger working on a storage of bile." Meridith : The Idea of Comedy, p. 79
- 3 "Satire can be so bitter that it ceases to be laughable in the very least, satire falls heavily. It has no moral sense. It has no pity, no kindness, no magnanimity. It lashes the physical appearance of person, sometimes with unmitigated cruel. It attacks the character of man. It strikes at the manners of the age, with a band that spares not.

—A. Nichol ; An Intro. to Dramatic Theory.

लाल ने ठीक ही कहा है कि 'व्यंग्य की भाषा में गुदगुदी कम, तित्कता अधिक रहती है ।'

वास्तव में हास्य और व्यंग्य को दो अलग भूमियों में देखना चाहिये । हास्य का लक्ष्य साधारण मनोरंजन, दिल बहलाव हो सकता है । व्यंग्य मूलतः हास्यात्मक प्रहार है जो तीखी चोट पैदा करता है । हास्य के लिए हास्य की भूमिका बनाई जा सकती है । परन्तु व्यंग्य के लिए व्यंग्य की भूमिका वैमनस्य और अव्यवस्था में बदल सकती है । हास्य सहज व्यक्तित्व का खिला रूप है, तो व्यंग्य गंभीर व्यक्तित्व का तीखा स्वभाव भी हो सकता है । हास्य मन का विलास है, तो व्यंग्य मन की प्रहार-योजना । एक में चरित्र का मीठापन है तो दूसरे में चटपटाहट । परन्तु क्या व्यंग्यों का प्रयोग हास्य के रूप में और हास्य का प्रयोग व्यंग्य के रूप में नहीं हो सकता ? हास्य-लक्षित व्यंग्य हास्य की परिभाषा में खटमीठा स्वाद जोड़ देता है और व्यंग्य की लक्ष्य-सीमा में हास्य नमक के स्वाद को कुछ कड़वा बना सकता है । कहने का तात्पर्य है कि यदि व्यंग्य को किसी व्यावहारिक लक्ष्य में रखें तो वर्गगत विभेद बन जाते हैं, जो हास्य में दिखाई नहीं देते । हास्य को जीवन का आवश्यक उपकरण बतलाते हुए कहा जा सकता है कि हास्य और व्यंग्य जीवन को उत्तेजित करने में, उसमें कर्मशक्ति की प्रेरणा फूंकने में, किसी नयी भूमिका से निकट परिचय दिलाने में तथा आचरणनिष्ठ बनाने के साधनों में उतने ही गम्भीर हो सकते हैं, जितना महत्व साहित्य में दुखान्तकी का होता है ।

● हिन्दीसाहित्य में हास्य और व्यंग्य का विकास

हिन्दीसाहित्य के आदिकाल से ही हास्य और व्यंग्य की परम्परा का प्रारम्भिक स्वरूप दिखाई देता है । अपभ्रन्श की कृतियों में सामंती हास्य की रूपरेखा मिलती है । राजकीय मनोविनोदों तथा समान शक्ति-संपन्न वाले वीर पुरुषों के वैयक्तिक व्यंगों का प्राचुर्य भी मिलता है । कायर, डरपोक इत्यादि हास्यरस के आलंबन थे । वीर गायकों के ये हास्य और व्यंग्य शृंगार और वीर रस के उपालम्भ स्वरूप दिखाई देते हैं । कहने का तात्पर्य यह है कि शृंगार रस की मनोविनोदात्मक क्रीड़ाओं में व्यंगों की फुहार भावनाओं की उत्तेजना में नयी दीप्ति लाती थी तथा वीरकर्म में कायर की भीरुता, उनके मन की ललकार को नया ओज देती थी । इस प्रकार की हास्य और व्यंग्य की परम्परा क्रमिक विकास में संतकाव्य की पीठिका ग्रहण करके धार्मिक मतवादों, समाज की रूढ़ियों, अंधविश्वासों, जातीय भेदभावों तथा कुरीतियों, व्यभिचारों आदि के विरोध का माध्यम बन गई । कबीरदास, मलूकदास, रैदास आदि संतों से लेकर वैष्णव मतावलम्बी तुलसी, सूर, नंददास आदि तक में व्यंग्यों की प्रचुरता मिलती है । भ्रमरगीत का उपालम्भ व्यंग्य-काव्य

का मार्मिक रूप है। तुलसी की रामायण में सामाजिक व्यंगों का बाहुल्य है। राक्षसों की प्रवृत्तियों और उनकी रूप-सज्जा पर हास्य-दृष्टि का प्रयोग भी किया गया है। इसी प्रकार रीतिकालीन काव्य में यत्रतत्र हास्य-विनोद की परम्परा मिलती रही है। परन्तु मध्ययुगीन हास्य व्यंग्यों का स्वरूप सुधारात्मक नीतियों के अवलम्ब पर था। यथार्थ जीवन की कुरीतियों पर सद्बृत्तात्मक आवरण डालने के निमित्त जो प्रयोग उस युग में किये गये, वे शास्त्रीय परम्परा के अन्तर्गत ही आ सकेंगे। हिन्दीसाहित्य में हास्य और व्यंगों का उत्स आधुनिक साहित्य से ही बढ़ता हुआ दिखाई देता है। अंग्रेजी शासन ने भौतिकवादी लक्ष्यों को हमारे सामने रखकर अपनी सांस्कृतिक, धार्मिक परियोजनाओं का दर्शन भी कराया। ऐहिक जीवन के प्रति अंतिम विश्वास तथा नयी राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक मान्यताओं ने हमारे परम्परागत जीवन में नयी क्रांति पैदा की। उनके साहित्य को पढ़ कर तथा अपनी परिस्थितियों को अधिक स्थूल बनाकर हमने अपनी चिंतन-पद्धति में उनके किये गये प्रयोगों को अपनाया। फल यह हुआ कि नई साहित्यिक विधाओं के विकास ने हमारे जीवन की विवेचना करना बहुत निकट से प्रारम्भ कर दिया है। दूसरे शब्दों में मानवीय प्रवृत्तियों के गुणों-अवगुणों को सामाजिकता के अनुरूप-यथार्थचित्र में प्रस्तुत करना अधिक उपयोगी समझ लिया गया है।

● आधुनिक युग

आधुनिक साहित्य में जिसकी तिथि भारतेन्दु युग से प्रारम्भ होती है, हमें इन सब नये रूपों का पूर्ण स्वरूप दिखाई देता है। पूर्व भारतेन्दु युग भारतीय कला की कारीगरी का सैद्धान्तिक नमूना कहा जा सकता है, क्योंकि मुगलकालीन जीवन की एकनिष्ठ संपन्नता में, विलासिता में, वैविध्य समाप्त हो गया था। अतः नये साहित्य-रूपों का विकास भारतेन्दु युग से आरम्भ होता है।

डा० एस० पी० खत्री ने अपनी पुस्तक 'हास्य की रूपरेखा' में कहा है—
“हिन्दी साहित्य के प्रति भी प्रायः यही विचार मान्य रहा है कि उसमें हास्य की न्यूनता है और इस क्षेत्र में जितनी साहित्यिक उन्नति पाश्चात्यदेशों—इंग्लिस्तान तथा फ्रांस—के साहित्यिकारों ने की, उतनी नहीं हो सकी है।”^१

विद्वानों ने हास्य और व्यंग की कमी के मुख्यतः दो कारण बताये हैं।
(१) प्रजातंत्रीय विचारों का अभाव तथा (२) नारी के प्रति पश्चिमी दृष्टि का अभाव जिसमें “हास्य और व्यंग की उन्नतिशील रूपरेखा के दर्शन होते हैं।”^२

१ डा० एस० पी० खत्री, 'हास्य की रूपरेखा'—पृ० २४६।

२ वही, पृ० २५४।

साधारणतः उसके विकास का प्रामाणिक संकेत भारतेन्दु युग के आरम्भ से ही देख सकेंगे ।^१

डा० नगेन्द्र ने ठीक ही कहा है कि 'उन्नीसवीं शताब्दी में रीतिकाल का अन्त और आधुनिक काल का आरम्भ होता है । भारतेन्दु बाबू दोनों प्रवाहों के संगम-स्थल पर खड़े हुए हैं । उनके समय से ही जहाँ कविता की अन्य प्रगतियों में परिवर्तन हुआ; वहाँ हास्य के क्षेत्र में भी नवीनता आई । हास्य के आलंबन अब सूम तथा अरसिक ही नहीं रह गये, सरकार के खुशामदी, दम्भी देशभक्त, पुरानी लकीर के फकीर, फैशन के गुलाम आदि में भी हँसने की सामग्री मिलने लगी ।'^२

विद्वानों ने भारतेन्दुयुग को इस प्रकार के साहित्य का स्वर्णयुग कहा है । आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इस युग के साहित्य में "जिन्दादिली और मनोविनोद की मात्रा का आधिक्य पाया है ।"^३

भारतेन्दु बाबू की कविता में राजनीतिक, सामाजिक तथा धार्मिक कुरीतियों पर व्यंग मिलते हैं । यथार्थ चित्रण के प्रति कोई साधुता बर्ती हुई नहीं मिलती । इसी प्रकार प्रतापनारायण मिश्र, बालमुकुंद गुप्त, तथा पं० शिवनाथ शर्मा में भी व्यंगों की प्रचुरता दिखाई देती है ।

हास्य और व्यंग्य की विकासशील परम्परा द्विवेदी-युगीन साहित्यिक युगान्तर में क्षीण हो गई । नीतिवादी आदर्शों की परम्परा के विकास में जीवन के परिष्कृत सौष्ठव का महत्व ऊँचा किया । परिणामतः लेखकों और कवियों की दृष्टि अधिक गम्भीर-सी हो गयी । डा० बरसानेलाल ने ठीक ही कहा है कि "व्यंग्य का प्रयोग अब उतना अधिक न रह गया जितना भारतेन्दु-युग में था ।"^४

इस युग में हास्य-व्यंग्यकार नाथूरामशंकर, ईश्वरीप्रसाद शर्मा, जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी आदि हैं । इसमें पाश्चात्य संस्कृति के प्रति हीन दृष्टि तथा उसके अनुकरणकर्ताओं की खिल्ली उड़ाना ही लक्ष्य रहा है ।

द्विवेदी युगीन काव्य के बाद हिन्दी साहित्य विद्रोह भाव और नयी संस्कृति की उपलब्धियों को कल्पना के माध्यम से व्यक्त करने लगता है । छायावाद यद्यपि कवियों की वैयक्तिक चिन्तना, अनुभूति और कल्पना की अभिव्यक्ति है, फिर भी उसमें मानव-जीवन की पूर्णता को एक बड़े पैमाने में स्वीकार किया गया है । यह मानवतावादी आंदोलन था, जिसका गम्भीर आशय राष्ट्रीय संस्कृति के सौंदर्य का

१ डा० एस० पी० खत्री : हास्य की रूप-रेखा, पृ० २५६ ।

२ डा० नगेन्द्र : हिन्दी साहित्य में हास्यरस (लेख), 'वीणा', नवम्बर, १९३७ ।

३ आचार्य रामचंद्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास-पृ० ३९३ ।

४ डा० बरसाने लाल चतुर्वेदी : हिन्दी साहित्य में हास्यरस, पृष्ठ २०१ ।

उद्घाटन कहा जा सकता है। निराला, प्रसाद, पंत, और महादेवी की काव्य-कला में इसी प्रकार की समस्याओं का समाधान मिलता है। परन्तु १९१४ से प्रारम्भ होकर १९३६ तक इस काव्य का स्वस्थ स्वरूप सामने आता है, बाद में प्रगतिवादी विचारधारा के विस्तार से हिंदी काव्य यथार्थपरक दृष्टिसंपन्न हो जाता है।

पंत और निराला ने इस नयी काव्यधारा में योगदान दिया है, परन्तु पंत का पदार्पण एक सैद्धान्तिक सहानुभूति के रूप में ही रहा है। वह विचारधारा को अपनाकर प्रजातांत्रिक बन गये, परन्तु व्यवहार ने तुरन्त दर्शन की ओर मोड़ दिया। इस दृष्टि से निरालाजी अधिक सम्माननीय हैं। स्वच्छन्दतावादी साहित्य में क्रांति-सूचक परिवर्तन लाने के बाद निरालाजी यथार्थ की भूमिका पर भी उतरे।

● नये युग की परिस्थितियाँ

// निरालाजी का संवेदनशील व्यक्तित्व उन्हें हमेशा गति देता रहा है। युग और देश की परिस्थितियों का भावात्मक प्रभाव सबसे अधिक निराला ही को पीड़ित करता रहा है। यही कारण है कि १९३९ के आसपास से निरालाजी एकदम प्रजा-तांत्रिक भूमिका पर आकर सामाजिक भूमि पर यथार्थ की काट-छाँट करने लगे। बंगाल के अकाल तथा उनकी व्यक्तिगत आर्थिक विषमताओं ने जो स्थायी अभाव छोड़ा उससे उनकी दृष्टि व्यंग्यात्मक-सी हो गई। क्रियात्मक सहानुभूति के पक्ष में रह कर उन्होंने सामाजिक विषमताओं को वैयक्तिक-सा बना लिया था। इस दृश्य-भूमिका पर निरालाजी अपने पूर्ववर्ती काल से बहुत कुछ अलग दिखाई देने लगते हैं।

● निराला के परवर्ती काव्य का स्वरूप और व्यंग्यों के प्रयोग

अपने परवर्ती काव्य में, जिसका तिथि-निर्धारण १९३८-३९ से किया गया है, निराला जी समाज की प्रत्यक्ष भूमिका का निरीक्षण और प्रयोग करते हैं। सामाजिक व्यवहार की कुरीतियों को, उनके अनेकमुखी छल-कपटों को निराला जी अपने कथा-साहित्य में चित्रित करते हैं। डा० रामविलास शर्मा ने व्यंग्य-प्रधान साहित्य को लक्ष्य करके कहा है—

“यहाँ हम रहस्यवादी कवि श्री निराला की प्रतिभा का एक दूसरा पहलू देखते हैं। कल्पना-लोक के आदर्श के साथ एक बार जब वे यथार्थ संसार को देखने लगते हैं, तो आदर्शवादी भावनाओं को कठोर धक्का लगता है। मनुष्य अभी इस आदर्श से कितनी दूर है, कम-से-कम देश के प्रचलित राजनैतिक, धार्मिक, सामाजिक विचार लेखक के व्यंग्य का लक्ष्य होते हैं। समाज, देश, या संसार, संतोषजनक दशा कहीं नहीं है। फिर भी लोग अपनी क्षुद्रता को महत्ता समझ कर उस पर संतोष ही नहीं, गर्व का भी अनुभव किये बैठे हैं। ऐसा शिष्ट व्यंग्य, सच्ची अन्तर्व्यथा से निकला

हुआ, जो पढ़ते ही सहृदय को प्रभावित कर सके, साहित्य में बहुत कम देखने को मिलता है ।”^१

इस प्रकार व्यंग्य लिखने की प्रतिभा उनमें असाधारण रही है । ‘परिमल’ काल से ही उनका इस ओर ध्यान रहा है । पंचवटी प्रसंग में शूर्पणखा के चित्रण में गुप्त हास्य की जो झलक है, उनकी प्रतिभा का सुन्दर नमूना है ।

छूट जाता है धैर्य ऋषि मुनियों का
देवी-भोगियों की तो बात ही निराली है ।^२

उनकी ‘अनामिका’ संग्रह में यत्र-तत्र हास्य और व्यंग्य के पुट दिखाई देते हैं । ‘दान’ ‘मित्र के प्रति’ ‘सच है’ ‘बनबेला’ ‘हिंदी के सुमनों के प्रति पत्र’, ‘उक्ति’ ‘ठूठ’, आदि कविताओं में व्यंग्य चित्रों का सजीव अंकन हुआ है ।

दम्भी और बगुला-भगतों पर व्यंग्य करते हुये वे कहते हैं—

मेरे पड़ोस के वे सज्जन,
करते प्रतिदिन सरिता-मज्जन ।

× × ×

बोला, मैं धन्य श्रेष्ठ मानव

‘सरोज-स्मृति’ में लिखा है—

ये कान्यकुब्ज-कुल-कुलांगार
खाकर पतल में करें छेद,
इनके कर-कन्या, अर्थ खेद ।

× × ×

वे जो जमुना के-से कछार
पद फटे बिवाई के, उधार
खाये के मुख ज्यों, पिये तेल
चमरीधे जूते से सकेल
निकले, जी लेते, घोर गन्ध,
उन चरणों को मैं यथा बन्ध,
कुल घ्राण-प्राण से रहित
हो पूजूं, ऐसी नहीं शक्ति ।
ऐसे शिव से गिरजा-विवाह
करने की मुझको नहीं चाह,—आदि ।

१ डा० रामविलास शर्मा : स्वधीनता और राष्ट्रीय साहित्य, पृ० १२५ ।

२ निराला : परिमल, पृ० १४८ ।

डा० बच्चनसिंह ने 'अनामिका' की व्यंग्यात्मक कविताओं के सम्बन्ध में लिखा है—

‘इनमें शुद्ध व्यंग्य तथा सामाजिक दृश्यों का चुभता हुआ चित्रण हुआ है।’^१

प्रगतिवादी भूमिका को अपना कर निरालाजी उसकी सैद्धांतिक सीमाओं से दूर रहे हैं। जन-मन की समस्याओं का खुला चिट्ठा पेश तो किया है, परन्तु उसके स्वरूप को आकर्षक बनाकर। यही आकर्षण उनका हास्य विनोदात्मक तथा व्यंग्यात्मक प्रयोग है। डा० बच्चनसिंह ने इनको व्यंग्य विनोद तथा यथार्थ-चित्रण के रूप में रखा है।^२

‘इस काव्य-क्रम का स्वाभाविक विकास ‘कुकुरमुत्ता’ और ‘नये पत्ते’ हैं। जो संगीत-माधुरी निराला के छायावादी काव्य में थी, आज वह लगभग विलीन हो चुकी है। कवि ने आज कठोर, क्रूर यथार्थ का वरण किया है। स्वप्नों का शृंगार उसे कभी वांछित नहीं था, किन्तु वह अब कुरूप जीवन का आलिंगन करने से भी नहीं हिचकिचाता। निराला का नया काव्य धरती के अधिक निकट है।’^३

अब हम उनकी परवर्ती कृतियों के क्रमानुसार उनके हास्य-व्यंग्य का अध्ययन करेंगे।

● कुकुरमुत्ता

सामाजिक जागरण का यथार्थवादी दृष्टिकोण, प्रगतिशील शैली में व्यंग्यात्मक प्रवृत्ति, जिसमें जीवन की अनेकमुखी दशाओं पर व्यंग्य है, निरालाजी ने अपने इस संग्रह में इसको बड़ी कुशलता से प्रस्तुत किया है। व्यंग्यप्रधान कविताओं में ‘कुकुरमुत्ता’ सर्वश्रेष्ठ है। कुकुरमुत्ता विनोद की सृष्टि पैदा करने वाली एक विशिष्ट प्रकार की काव्य-रचना है। आचार्य पं० नन्ददुलारे वाजपेयी ने कहा है “कुकुरमुत्ता में विनोद की सृष्टि अतिरंजित वर्णनों द्वारा की गई है। यत्र-तत्र यथार्थवादी चित्रण की प्रवृत्ति भी दिखाई देती है।”^४ समीक्षकों ने कुकुरमुत्ता को जो सर्वहारा वर्ग का प्रतीक मानकर उसकी व्याख्या की—उसकी प्रशंसा हुई और उन्हें प्रगतिवादी कहना ही पर्याप्त समझा। परन्तु इसमें व्यंग्य के भीतर व्यंग्य है और उस व्यंग्य के भीतर व्यंग्य है। असली मतलब तो यह है कि केवल सर्वहारा वर्ग ही जाति का आदर्श नहीं हो सकता। इसमें सबसे पहले तो स्वयं कुकुरमुत्ता संसार भर की मूल्यवान उपलब्धियों का सृष्टा अपने को बताता है।

१ डा० बच्चनसिंह : क्रांतिकारी कवि निराला, पृ० १४१।

२ डा० बच्चनसिंह : क्रांतिकारी कवि निराला, पृ० १४१।

३ डा० प्रकाशचन्द्र गुप्त : ‘नया साहित्य’ पत्रिका में प्रकाशित लेख।

४ आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी : आधुनिक साहित्य (भूमिका)

प्रकाशचन्द्र गुप्त ने लिखा है—कुकुरमुत्ता को निरालाजी ने दीन-हीन शोषित जनता का प्रतीक माना है और गुलाब को शोषक अभिजात वर्ग का—इस रूपक में परम्परागत भाषा, संगीत, उपमाएँ, शब्दचित्र आदि सब विलीन हो गये हैं और एक नई कला का जन्म हुआ है। यह कला कुकुरमुत्ता के समान ही बंजर धरती की उपज है, इसमें रूप, गंध, रस आदि की कमी है। उसकी सामाजिक उपस्थिति है।

● संक्षिप्त कथा

एक नवाब थे; जिन्होंने फारस से कुछ गुलाब मंगाए और बाड़ी में लगवाये। साथ ही देशी पौधे भी उगाये गये। कई नीकरो, मालियों द्वारा उनकी सेवा की गई। सब कुछ गजनवी के बाग के समान सजाया गया। उसमें बेला, गुलशब्बो, चमेली, कामिनी, जूही, नरगिस, रात की रानी, कमलिनी, गुलमेंहदी, गुलखैरन, गुले अब्बास गेंदा, आदि आदि फूलों की क्यारियां थीं। यहीं फारस का गुलाब खिला था। पास ही नाले के, कुकुरमुत्ता खड़ा एँठ रहा था। बाग के बाहर झोपड़ों में नवाब के खादिम रहते थे। उनमें एक मालिन थी, जिसकी लड़की गोली नवाबजादी बहार की हम-जोलिनी थी। एक दिन अचानक दोनों बाग में घूमने आयीं, जहाँ गुलाब और कुकुरमुत्ता महोदय खिले थे। पूछने पर गोली ने बताया, इसका बड़ा स्वादिष्ट कवाब बनेगा। दोनों ने बंगलिन से कवाब बनवा कर खाया। घर पर आकर बहार ने कवाब की चर्चा नवाब से की। नवाब का हुक्म हुआ कि कुकुरमुत्ता का कवाब बनेगा। माली ने कहा; हुजूर कुकुरमुत्ता अब नहीं रहा, रहे हैं सिर्फ गुलाब। नवाब गुस्से से कांपकर बोले—जहाँ गुलाब उगाये हैं, वहाँ कुकुरमुत्ता उगाओ। माली ने क्षमा मांगी और कहा—कुकुरमुत्ता उगाया नहीं जाता; हुजूर।

कथा का उतना महत्व नहीं, उसको प्रस्तुत करने की शैली तथा विषय-निरूपण का लक्ष्य महान है। महान इस अर्थ में कि कला-हीन सौंदर्य में भावयुक्त सौंदर्य की सजीवता इस रचना में सर्वत्र बनी रही।

● कुकुरमुत्ता के व्यंग्य : विद्वानों में मतभेद

(१) जनता की संस्कृति की ओर कवि की अपील है। हमारी ऊपर की श्रेणी की तहजीब देशी नहीं है। यह कुकुरमुत्ते की तहजीब और उसकी संस्कृति का व्यंग्य चित्र है। जिसे उसका स्वाद लगा कि विदेशी रस नीरस हो गये। बहार इसी देशी संस्कृति का प्रतीक है।^१

(२) “कुकुरमुत्ता केवल व्यंग्यात्मक कविता है। दो भागों में विभक्त है। प्रथम भाग में प्रलाप से, जो पूंजीवादियों का प्रतीक है, सर्वहारा के प्रतीक कुकुरमुत्ता की बातचीत वर्णित है। इसमें यह भी दिखाया गया है कि साम्यवाद के समर्थक

बकवादी हुआ करते हैं। द्वितीय भाग में साम्यवादी सिद्धांतों पर घातक प्रहार किया गया है। गोली और बहार की मित्रता मानवतावाद पर आधारित है। जिसमें मैत्री संभव नहीं हो सकती।”^१

(३) “लोगों का इस बात पर मतभेद रहा है कि निराला इस कविता में किस पर व्यंग्य करना चाहते हैं। इस मतभेद का कारण कविता की अस्पष्टता है। जो युद्धकाल में उनके विश्वासों के डिग जाने के कारण हुई है। कुरुरमुत्ता उनके अद्वैतवाद की नकल हो सकता है, क्योंकि ब्रह्म की तरह वह बलराम के हल से लेकर आधुनिक पैराशूट तक सभी में व्याप्त है। इसके साथ वह दीन वर्ग का भी प्रतीक हो सकता है और खाद का खून चूसने वाले गुलाब को कैपीटलिस्ट कहकर निन्दा भी करता है। लेकिन दुनियाँ से गुलाब उड़ा दिये जायें, यह बात ठीक नहीं बैठती। उपयोगितावाद के विकृत रूप को स्वीकार करने पर ही ऐसी कल्पना सार्थक लगेगी। शायद निरालाजी ने प्रगतिवाद को इसी तरह का उपयोगितावाद समझा था। इसलिए कुरुरमुत्ता का व्यंग्य जहाँ गुलाब को मारता है, वहाँ खुद उसे भी हास्यास्पद बना देता है।”^२

इस प्रकार विद्वानों में मतभेद रहा है। व्यंग्यात्मक चित्रण की अनेकमुखता की बहुलता इसमें लक्षित होती है।

● कुरुरमुत्ता के हास्य-व्यंग्य का स्वरूप

कुरुरमुत्ता धनीमानी व्यक्तियों के प्रति चुभता हुआ व्यंग्य है जो साम्यवादी बनने का ढोंग भी रचते हैं। कुरुरमुत्ता गुलाब से तुलना करता है। चीन की छतरी, भारत का छत्र, विष्णु का सुदर्शनचक्र, सभी कुरुरमुत्ते की नकल पर बने हैं। दुनिया की गोलाई, डमरू, तबला, तान पूरा का रूप, कथकली या बालडान्स का ढंग, रामेश्वर और मीनाक्षी के मन्दिर, विक्टोरिया मेमोरियल, गिरजाघर, गुम्बद, आदि कुरुरमुत्ते की नकल पर निर्मित हुए हैं। अन्त में कहता है कि तू नहीं, मैं ही बड़ा हूँ। गुलाब से कहता है—

अबे सुन बे गुलाब,
भूल मत गर पाई खुशबू रंगोआब,
खून चूसा खाद का तूने अशिष्ट,
डाल पर इतरा रहा है कैपीटलिस्ट
कितनों को तूने बनाया है गुलाम
माली कर रखा, सहाया जाड़ा घाम।

१ डा० बच्चनसिंह : क्रांतिकारी कवि निराला, पृ० १४४, ४५, ४६।

२ निरंजन : नया साहित्य (पत्रिका) लेख, पृ० ६२।

इस भूमिका पर कुकुरमुत्ता को गुलाब का प्रतिद्वन्द्वी बनाकर निरालाजी राजनीति, समाजनीति, अंग्रेजी फैशन आदि पर तीखे व्यंग्य करते हैं।

शाहों, राजों अमीरों का रहा प्यारा
इसलिये साधारणों से रहा न्यारा
काँटों ही से भरा है, यह सोच तू
X X X

पूँजीपतियों पर व्यंग्य—

✓ घड़ों पड़ता रहा पानी
तू हरामी [खानदानी] →

सर्वहारा का स्वरूप—

और अपने से उगा मैं
नहीं दाना पर चुगा मैं
कलम मेरा नहीं लगता
मेरा जीवन आप जगता। अतः,
तू है नकली मैं हूँ मौलिक
तू है बकरा मैं हूँ कौलिक
तू रंगा और मैं घुला
पानी मैं, तू बुलबुला

दोनों के कार्यों में अन्तर—

┌ तूने दुनिया को बिगाड़ा,
मैंने गिरते से उभाड़ा
तूने जनखा बनाया, रोटियाँ छीनीं
X X X

कुकुरमुत्ता जब अपनी तारीफ के पुल बाँधता है, तो हास्यात्मक दृश्य सामने आता है। कुकुरमुत्ता क्या नहीं है? ब्रह्मसृष्टि के सृजन से उसके विकास तक का स्वरूप यहाँ तक कि २० वीं सदी की भौतिकवादी सभ्यता ने भी उसके स्वरूप का निखार प्रस्तुत किया है।

संस्कृत, फारसी, अरबी, ग्रीक लेटिन के जने
मन्त्र, गजलें, गीत, मुझी से हुये शौदा
X X X

सब में मेरा ही गठन
मेरा ही रहता है सब पर ताब—

मैंने बदले पैतरे,
जहाँ भी शासक लड़े.....आदि

×

×

×

नये प्रयोगों पर लक्ष्य—

रस ही रस मेरा रहा

×

×

×

दुनियाँ में सबने मुझी से रस चुराया,
मुझी में गोते लगाये आदि कवि ने, व्यास ने,
मुझी से पोथे निकाले भास, कालीदास ने

×

×

×

कहीं का रोड़ा कहीं का लिया पत्थर
टी० एस० इलियट ने जैसे दे मारा
पढ़ने वालों ने जिगर पर हाथ रखकर
कहा, कैसा लिख दिया जहाँ सारा

लक्ष्य की ओर प्रेरित होकर अन्त में निरालाजी काव्य-संग्रह का उद्देश्य बताते हैं—

“कहा, चल गुलाब जहाँ थे, उगा,
सबके साथ हम भी चाहते हैं कुकुरमुत्ता
(माली के कहा माफ करें खता
कुकुरमुत्ता उगाया नहीं उगता ।”

धनंजय वर्मा ने अपनी पुस्तक ‘निराला : काव्य और व्यक्तित्व’ में ठीक ही कहा है कि ‘कुकुरमुत्ता असफलता नहीं, व्यंग्य की सफलता है। मेरी दृष्टि में कुकुरमुत्ता का व्यंग्य विविधक्षेत्रीय एवं तीव्र है। जो भी वर्ग कुकुरमुत्ता के प्रति मोह दिखाकर अपना प्रतीक मानेगा, वही व्यंग्य का शिकार होगा। इस रचना के पीछे कोई असाधारण प्रतिभा और लक्ष्य कार्य कर रहा है।”^१ इस प्रकार व्यंग्य-काव्य की परम्परा में ‘कुकुरमुत्ता’ का महत्व बहुत अधिक है जो व्यंग्यात्मक चल् भाषा में, यथार्थवादी जीवन की अनेकमुखी कमजोरियों को चित्रित करता है। यह मानव मात्र की खिल्ली का, उसके बौद्धिक अहं के भुलाने का, उसकी भावात्मक गरिमा के नक्शे का नक्शा है। यह दोहरी तलवार है जिसमें समस्त वर्गों, वादों तथा हर प्रकार की नीतियों का मजाक उड़ाया गया है। /

● हमारी व्याख्या

‘कुकुरमुत्ता’ के वास्तविक आशय को समझने के लिए स्वयं निरालाजी के ‘आवेदन’ की कुछ पंक्तियों को उद्धृत करना आवश्यक है। वे लिखते हैं- ‘अर्थ-समस्या में निरर्थक को समूल नष्ट करना साहित्य और राजनीति का कार्य है। बाहरी लड़ाव हटाना ही चाहिए, क्योंकि हम जिस माध्यम से बाहर की बातें समझते हैं, वह भ्रामक है। ऐसी हालत में—‘इतो नष्टस्ततो भ्रष्टः’ होना पड़ता है। किसी से मैत्री हो, इसका अर्थ यह नहीं है कि हम बेजड़ और बेजर हैं। अगर हमारा नहीं रहा तो न रहने का कारण है। कार्य इसी पर होना चाहिए।’ निरालाजी की इन पंक्तियों से दो बातें स्पष्ट होती हैं।

(१) अर्थसमस्या में निरर्थकता को समूल नष्ट करना और (२) अगर हमारा न रहा, तो न रहने का कारण है। कार्य इसी पर होना चाहिए।

पहली बात अर्थसमस्या में निरर्थक को समूल नष्ट करना, यह स्पष्ट संकेत करती है कि निरालाजी वर्तमान अर्थव्यवस्था से असंतुष्ट थे और उसके और अर्थ के निरर्थक या अन्यायपूर्ण विभाजन से वे बहुत अधिक क्षुब्ध थे। वे अर्थ के न्यायपूर्ण विभाजन के अभिलाषी रहे हैं। इस हद तक उनका झुकाव पूंजीवाद के विरुद्ध और साम्यवाद के अनुकूल था। दूसरा तथ्य यह है कि वे साम्यवाद की पश्चिमी प्रगति से संतुष्ट नहीं थे, और उसे भारतीय स्वरूप देने के पक्षपाती थे। साम्यवाद से उनकी मैत्री थी; पर वे कहते हैं कि किसी से मैत्री हो, इसका अर्थ यह नहीं कि हम बेजड़ और बेजर हैं। दूसरे शब्दों में वे एक प्रकार के भारतीय साम्यवाद के हिमायती दिखाई देते हैं। कुकुरमुत्ता में यही दो प्रवृत्तियाँ प्रमुख रूप से पाई जाती हैं। प्रथम साम्यवाद की ओर झुकाव और द्वितीय साम्यवाद की भारतीय कल्पना। कविता के आरंभ में नवाब के वैभव का वर्णन और वैभव के चरम प्रतीक गुलाब के प्रति कुकुरमुत्ता का आक्रोश निराला की पूंजीवाद-विरोधी भावना का निदर्शक है। परन्तु यहीं से निराला कुकुरमुत्ता के प्रति भी प्रच्छन्न व्यंग प्रारम्भ करते हैं। यह अंश निराला की दृष्टि में पश्चिमी साम्यवादी एकांगिता के विरुद्ध व्यंग है। पश्चिम में मार्क्स ने क्रांति का नेता सर्वहारा को बताया है। निराला की दृष्टि में कुकुरमुत्ता सर्वहारा वर्ग का प्रतिनिधि है। पर वे शिक्षाहीन, संस्कृतिहीन वर्ग को नये मानवीय विकास के लिए उपयुक्त नहीं मानते। इसलिए कुकुरमुत्ता के मुँह से खूब बड़ी-बड़ी बातें कहलाकर उसे उपहासास्पद सीमा तक पहुँचा देते हैं। यह साम्यवाद की कल्पना का व्यंग है। साम्यवाद की भारतीय कल्पना के अनुसार निराला का मतव्य है किसी भी सामाजिक उन्नयन के लिये, सामाजिक अवतारणा के लिए कुकुरमुत्ता पर्याप्त नहीं है। उनके वेदान्ती दृष्टिकोण के अनुसार साम्यवाद केवल आर्थिक भूमिका पर नहीं होगा, बल्कि वास्तविक साम्यवाद, मानव के विकसित व्यक्तित्व से संबन्धित है। जब

कुरमुत्ता में विकास के तत्व समाहित होंगे, जब वह ज्ञान के आलोक से आलोकित होकर मानव-मात्र की समानता का संदेश दे सकेगा, तभी वह वास्तविक साम्यवादी माना जायेगा। इसके पहले वह चाहे जितना दंभ करे, उसकी स्थिति हास्यास्पद ही बनी रहेगी। इस प्रकार 'कुरमुत्ता' कविता में निरालाजी ने पूंजीवाद के विरोधी साम्यवाद के पक्ष में अपना अभिमत तो प्रकट किया है; पर साम्यवाद की उनकी कल्पना वेदांत पर आश्रित है।

● कुरमुत्ता का साहित्यिक मूल्य

व्यंग्य-रचना का मूल्य उसकी सार्वजनिक ग्राह्यता के साथ-साथ चमत्कार और आकर्षण-बहुलता में भी रहता है। कुरमुत्ता की भाषा विषय के अनुकूल, प्रस्तुत शैली के विवेचन के अनुकूल है तथा उसकी भावपक्षीय क्षमता उसके उद्देश्य के अनुकूल है। व्यंग्य रचना के नाते कुरमुत्ता हिन्दी काव्य में सफलता की रचना है। “यह नई कविता का आदिकाव्य है; इसमें गद्यमय सजीव व्यंग्य हैं।” कुरमुत्ता स्पष्टतः नवीन आविष्कार है जो समस्त कृतियों और प्रवृत्तियों से भिन्न है। व्यंग्य, विनोद और हास्य का प्रांजल स्वरूप, उर्दू का आंशिक पुट, भाषा में सहजता की ओर झुकाव, यथार्थोन्मुख चित्रण, हास्य में अतिरंजना का योग, प्रचलित सामाजिक, राजनीतिक विचारों पर एक स्वतंत्र दृष्टिपात आदि सांकेतिक और संदर्भों से भरी यह कविता है।

● नये पत्ते

‘कुरमुत्ता’ के विषयादर्श पर ही ‘नये पत्ते’ का निर्माण लक्षित होता है। निराला के सामाजिक विचारों के प्रति असंतोष की अभिव्यक्ति, उनका सौंदर्य विरोधी दृष्टिकोण, प्राकृतिक वर्णनों में बदली हुई दृष्टि, प्रकृति में सौंदर्य न देखकर उसका ऊबड़-खाबड़ स्वरूप, तदन्तर भक्ति का आगमन, वैयक्तिक भूमिका पर भक्ति-भावना का प्रारम्भ, अति काल्पनिक दृश्यों (फन्टेसी) का चित्रण, सामाजिक वैषम्य के प्रति आक्रोश आदि की उपज नये पत्ते हैं। इसमें जीवन के यथार्थवादी दृष्टिकोणों को नयी काव्य-शैली में प्रस्तुत किया गया है, जो जनसुलभ ग्राह्य पक्ष को प्रधानता देती है। इसमें समाज के वाह्य पक्ष को उसी के रूप में देखने का प्रयत्न किया गया है। अर्थात् व्यावहारिक जीवन की दिनचर्या को उसी के रूप में देखने का प्रयत्न किया है, जिसमें हास्य के साथ-साथ व्यंग्यों का प्राचुर्य है। इसमें पददलित वर्णों के प्रति सहानुभूति का आदर्श है। ‘नये पत्ते’ काव्य की भूमिका में निरालाजी ने स्वयं कहा है, “इसमें हास्य की प्रचुरता, भाषा अधिकांश बोलचाल वाली। पढ़ने पर काव्य की कुंजों के अलावा ऊँचे नीचे फारस के-जैसे टीले भी। अधिक मनोरंजन और बोधन की

निगाह रक्खी गयी है ।” इस प्रकार प्रस्तुत संग्रह में हास्य और मनोविनोदपूर्ण शैली में सामाजिक व्यंग्यों को रखा गया है । गिरीशचन्द्र तिवारी ने विषय की दृष्टि से सम्पूर्ण संग्रह का विभाजन निम्न प्रकार से किया है ।

- (१) सामाजिक एवं राजनैतिक व्यंग्य की कवितायें
- (२) मार्क्सवादी विवेचन संबन्धी कविताएं
- (३) सामान्य प्रकृति के चित्र रूप में कवितायें
- (४) सांस्कृतिक कवितायें ।

यहाँ हम उनकी प्रथम प्रकार की कविता का विवेचन करेंगे ।

● व्यंगात्मक तथा हास्य विनोदात्मक कवितायें

रानी और कानी, खजोहरा, मास्को डायलाग्स, खुशखबरी, दगा की पांचक, गर्म पकौड़ी, प्रेमसंगीत, छलाँग मारता चला गया, डिप्टी साहब आये, मंहगू मंहगा रहा, आँख आँख का काँटा हो गई, थोड़े के पेट में बहुतों को आना पड़ा, राजे ने अपनी रखवाली की, चरखा चला तथा तारे गिनते रहे, कवितायें निराला की हास्य-व्यंग्य शैली के चुभते उदाहरण हैं जो स्वरूप में तथा प्रभाव में वजनदार हैं ।

‘रानी और कानी’ में लेखक का यथार्थवादी दृष्टिकोण है, जिसमें सामान्य मानव के सुखात्मक एवं दुःखात्मक अनुभवों का चित्र उपस्थित किया गया है । इसमें हास्य और मनोविनोद के सहारे जो व्यंग्य उपस्थित किया गया है वह मार्मिक है । रानी के रूपचित्रण की कुरूपता में रानी के हृदय की भावनायें छिपी हैं, जो विवाह की समस्या बन कर उसकी माँ को सदैव चिन्ता का कारण बन गई ।

चेचक के दाग, काली, नाक चिपटी,
गंजा सर, एक आँख कानी
रानी अब हो गई ,सयानी
× × ×
फिर भी मां का दिल बैठा रहा
× ✕ ✕
सोचती रहती दिन रात
कानी की शादी की बात

समस्या सामान्य है पर विशिष्ट भी । अतः व्यंग्य का सामाजिक तथा वैयक्तिक पक्ष यहां स्पष्ट होता है । इसी प्रकार ‘खजोहरा’ में जिस रूपक के सहारे चित्र है, वह भी यथार्थ व्यंग्य को जाहिर करता है ।

दौड़ते हैं ये बादल काले-काले
हाईकोर्ट के वकले मतवाले,
जहाँ चाहिए वहाँ नहीं बरसे,

धान सूखे देखकर नहीं तरसे,
जहाँ पानी भरा वहाँ छूट पड़े,
कहकहे लगाते हुए टूट पड़े ।

यहाँ से आरम्भ करके यह कविता घोर यथार्थवादी विषय में प्रवेश करती है। ग्राम के प्रांगण का समूचा चित्र दिया है। हल्का हास्य है। इसी प्रकार 'मास्को डायलाग्स' उन समाजवादी नेताओं पर तीखा व्यंग्य है जो रूस को ही आधार मानकर सिद्धांतों का पिष्टपेषण करते हैं। (पूँजीवादी जामे में 'रूस के डायलाग्स' पढ़ना जिनका आदर्श है, समाज के सच्चे नेताओं को फंसाकर स्वार्थसिद्धि करना जिनका कर्म है, वह राजनीति के साथ-साथ साहित्य को भी विकृत करना चाहते हैं। कविता में प्रारम्भ से ही समाजवादियों की रीति-नीति पर व्यंग्य है ।)

“.....श्रीयुत गिडवानी जी

बहुत बड़े सोशलिस्ट,
मास्को डायलाग्स लेकर आए हैं मिलने
सुभाष बाबू ने इसे जेल में मंगाया था ।

✕

✕

✕

दो प्रतियां आई थीं,.....
लेकिन.....वक्त नहीं मिलता है.....
समाज में बड़े-बड़े आदमी हैं
एक से हैं एक मूर्ख

उनको फँसाना है,
ऐसे कोई साला एक धेला नहीं देने का
उपन्यास लिखा है
जरा देख दीजिए ।

अगर कहीं छप जाय
तो प्रभाव पड़ जाय उल्लू के पट्ठों पर
मनमाना रुपया ले लूँ इन लोगों से । आदि
इसमें राजनीतिक व्यंग्य है ।
एक तीसरी प्रसिद्ध कविता 'गर्म पकौड़ी' है, जिसमें सामाजिक व्यंग्य है ।

बम्हन की पकाई, घी की कचौड़ी
तेल की भुनी—ये गर्म पकौड़ी । आदि
'प्रेम—संगीत' शीर्षक कविता में निराला जी ने लिखा है—
बम्हन का लड़का मैं उससे प्यार करता हूँ
जात की कहारिन वह, मेरे घर की है पनहारिन वह,
आती है होते तड़का, उसके पीछे मैं मरता हूँ; तथा

‘महंगू महंगा रहा’ में उन राजनीतिज्ञों के प्रति व्यंग्य है जो कि बड़े बाप के बेटे हैं, लंदन में शिक्षा पायी है, आजादी के भूखे, दीवाने की भांति घूम-घूम कर उपदेश देते हैं। लेकिन महंगू सुनता रहा—बोला

हां, कम्यू में किरिया के गोली जो लगी थी
उसका कारण पण्डित जी का शागिर्द है—

अन्त में कहता है—मैं महंगू हूं,

पैरों की धरती आकाश को भी चली जाय
मैं कभी न बदलूंगा, इतना महंगा हूंगा।

इस प्रकार निराला जी ने इस काव्य-संग्रह में तात्कालिक परिस्थितियों का जो व्यंगात्मक चित्र उपस्थित किया है, उसे जनवादी परंपरा के साहित्य में एक नया प्रयोग कहा जा सकता है। ‘नये पत्ते’ की मीठी चुटकियों पर डा० बच्चन सिंह ने कहा है—‘यहां उनके विचारों पर साम्यवाद तथा वर्ग-संघर्ष का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है।’ ‘महंगू महंगा रहा’ में ‘बनबेला’ की भावनायें ही व्यक्त हुई हैं। जमींदारों, मिल मालिकों और बड़े-बड़े नेताओं के गठबंधन पर कड़ा प्रहार किया गया है। ‘थोड़े के पेट में बहुतों को आना पड़ा’ भी इस ओर संकेत करता है। ‘राजे ने अपनी रखवाली की’ में बतलाया गया है कि किस प्रकार से पंडित, नाट्यकार सामंत अपना सम्मान खोकर राजा की सम्बर्धना में संलग्न रहे। इस प्रकार जनता पर जादू चला राजे की समाज का।।

● स्फुट कविताएं

‘अणिमा’ की एक कविता देखिए—

चूंकि यहाँ दाना है,
इसलिए दीन है, दीवाना है।
लोग हैं, महफिल है,
नगमें हैं, साज है, दिलदार है और दिल है,
शमा है, परवाना है,

× × ×

अम्मा है, बप्पा है,
झांपड़ है और गोल गप्पा है, आदि—

इस कविता में पैसे पर व्यंग्य है।

निराला जी के काव्य में यथार्थवादी शैली का व्यावहारिक पक्ष दिखाई देता है जिसमें समस्त वर्गों, जातियों, राजनीतिक, सामाजिक आर्थिक विषमताओं को उनके खुले रूप में देखा गया है। निरालाजी किसी सिद्धान्त का सहारा लेकर चलने

वाले नहीं थे। वे तो यथातथ्य को हँसकर कहने में विश्वास करते थे। निराला का परवर्ती काव्य इस दृष्टि से काफी महत्वपूर्ण है।

● व्यंग्यों का काव्यात्मक सौष्ठव

शिष्ट और स्वस्थ व्यंग्य अधिकांश रूप में वैयक्तिक नहीं हुआ करते हैं, उनमें प्रच्छन्नता का गुण विद्यमान रहता है। निरालाजी के काव्यात्मक व्यंग्यों में हमें यह विशेषता बराबर मिलती है। सरल, बोलचाल की भाषा में विषय का चौखटा तैयार करना, जिससे उसकी अतिवादिता नष्ट हो जाय, निरालाजी की विशेषता कही जा सकती है। निरूपण शैली में स्वच्छंदता है, भाव-प्रयोगों में केवल चुड़ल बाजी या 'हास्य, हास्य के लिए' का प्रयोग नहीं है। निराला की संवेदना का सामाजीकरण, उनकी विचारात्मकता का सरलीकरण इन कविताओं में देखा जा सकता है।

इन कविताओं को पढ़कर यदि निरालाजी के समग्र साहित्य पर दृष्टि डालते हैं तो स्पष्टतः ज्ञात होने लगता है कि कला की अलंकृति में अति-सूक्ष्मता के कारण कवि यहां पर खुले प्रांगण में समाज की वायु का सेवन करता है। यद्यपि विनोद-पद्धति उनकी स्वाभाविक विचारणा के प्रतिकूल दिखाई देती है, फिर भी, अपनी निजी परिस्थितियों से बचने तथा उनके तीखे अनुभवों से साहित्यिक के उत्तरदायित्व को निभाने में निराला का यह परवर्ती रूप भी महत्वपूर्ण है। आस्थानशैली में लोक जीवन की समस्याओं को उसी के वातावरण में प्रस्तुत करना उनकी प्रतिभा का नया रूप कहा जा सकता है। यही कारण है कि इन कविताओं में शैलीगत भिन्नता लक्षित होती हैं। डा० बच्चनसिंह ने कहा है 'निषेधात्मक जीवन इनको व्यंग्यात्मक रचना करने की ओर ले जाता है। ये विनोद और व्यंग्य-प्रधान सृष्टियां भाषा के नवीन और प्रचलित स्वरूप का दर्शन कराती हैं। यहां भाषा नवीन विनोदात्मक प्रयोगों के अनुकूल अवश्य है, किन्तु यह इतकी पूर्ववर्ती भाषा का मुकाबला नहीं कर सकती। जहां तक अनामिका की व्यंग्यात्मक कविताओं का संबंध है, कुछ में शुद्ध व्यंग्य तथा सामाजिक स्थितियों का चुभता हुआ चित्रण हुआ है। किन्तु 'कुकुरमुत्ता' तक पहुँचते पहुँचते कवि प्रगतिवाद के विरोध में तर्क उपस्थित करने लगता है।'।

● निराला के कथा साहित्य के व्यंग्यों से तुलना

निराला के कथा साहित्य में व्यंग्यों का शिष्ट-अशिष्ट, स्वस्थ-अस्वस्थ चित्र देखने को मिल जाता है। 'बिल्लेसुर बकरिहा', 'काले कारनामों'—आदि में हास्य

विनोद और व्यंग्यों की झड़ी लगी हुई दिखाई देती है। डा० रामविलास शर्मा ने कहा है, 'यहाँ हम रहस्यवादी कवि श्री निराला की प्रतिभा का एक दूसरा पहलू देखते हैं। कल्पना-लोक के आदर्श के साथ एक बार जब वे यथार्थ संसार को देखने लगते हैं तो आदर्शवादी भावनाओं को कठोर धक्का लगता है। मनुष्य अभी उस आदर्श से कितनी दूर है—परन्तु यह जैसे आदर्श हो; साहित्य उसी को पकड़ने के लिये असफल प्रयत्न करता रहा है।' 'वे आगे कहते हैं—

'जहाँ लोग अपनी पतित मनोवृत्तियों से संतोष कर बैठे रहे हैं, वहाँ प्रतिभाशाली लेखकों ने अपने तीव्र व्यंग्य-बाणों से उन्हें जगाया है। अच्छे व्यंग्यपूर्ण गद्य की हमारे समाज और साहित्य को नितान्त आवश्यकता है—निरालाजी के हास्य की यह विशेषता है कि वह घटना-प्रधान नहीं, विचित्र घटनायें, दृश्य, व्यक्ति आदि का चित्रण करके हमें केवल हँसाना नहीं चाहते। हास्य और व्यंग्य सबको आनन्द देता है। उसकी शिष्टता, स्वाभाविकता और निर्दोषता सर्वप्रिय है।'

'प्रबन्ध-पद्म' में निरालाजी ने हिन्दी के हित-चित्तकों पर व्यंग्य किया है। वे लिखते हैं, 'हिन्दी की हितैषणा की गांठ में गठिये का असर उसके सेवकों के तर दिमाग के कारण बढ़ता ही जा रहा है।' इस प्रकार उनके गद्यात्मक व्यंग्य कभी तीखे और कठोर भी हो जाते हैं। यदि उनके कथा-व्यंग्यों में विस्तार है, तो कविताओं की व्यंग्यात्मक उक्तियाँ अधिक प्रौढ़ कही जा सकती हैं। उनके कथा-व्यंग्य समस्या की पूर्णता को व्यक्त करते हैं किन्तु कविताओं में केवल दिग्दर्शना ही है। उनके कथा-व्यंग्यों में हास्य की प्रचुरता है, काव्य में इसकी कमी लक्षित होती है। उनके कथात्मक व्यंग्यों का विकास यदि संपूर्ण जीवन के भोंड़पन को व्यक्त करता है तो कविताओं का व्यंग्य केवल क्षणिक परिस्थितियों को। इस प्रकार दोनों में अंतर दिखाई देता है। फिर भी निरालाजी के कथात्मक व्यंग्य न तो नागार्जुन की भाँति अश्लील हैं और न यशपाल की भाँति सिद्धान्त-बद्ध। उनमें सहज विस्तार है। उनके काव्य की भाँति एक तटस्थता भी लक्षित होती है।

● निष्कर्ष

निष्कर्षतः उनके काव्यात्मक व्यंग्यों का मूल्य, जातीय या वर्गीय न होकर मानवतावादी है, जिसमें सामान्य दीन-दुखी व्यक्तियों की चर्या से लेकर पूंजीपतियों की चर्या तक का वर्णन मिलता है। सामान्य के प्रति क्रियात्मक सहिष्णुता का भाव है, परन्तु विशिष्ट के प्रति कोई तीव्र घृणा नहीं दिखाई देती। उनके व्यंग्यों में गति

१ डा० रामविलास शर्मा, स्वाधीनता और राष्ट्रीय साहित्य, पृ० १२५।

२ वही, पृ० १३०।

३ निराला : प्रबंध पद्म, एक बात, पृ० ५७।

है। वे किसी एक उद्देश्य से उलझे हुये नहीं हैं। निरालाजी ने स्वयं लिखा है : 'साहित्य में अनेक दृष्टियों का एक साथ रहना आवश्यक है, नहीं तो दिग्भ्रम होने का डर है। इसीलिये मैंने तमाम भावों की एक साथ पूजा करने का समर्थन किया।' 'उनमें प्रगतिशीलता के प्रयोगों का प्राधान्य रहा है, जिनमें बौद्धिक-तुलना का वैशिष्ट्य दिखाई देता है; अर्थात् समीक्षात्मक दृष्टि का प्राधान्य है। परन्तु निराला की यह आलोचनात्मक दृष्टि जीवन को अनावृत्त रूप में देखती है। किसी सिद्धान्त की आड़ लेकर नहीं। इसमें उनकी स्वाभाविक मनस्विता तथा रुढ़ि-विद्रोह से भरे व्यक्तित्व के गुण मिलते हैं।

निराला की उर्दू शैली की कविताओं का अध्ययन

● हिन्दी-उर्दू की पृष्ठभूमि

(हिन्दी में संस्कृत का सौंदर्य भरने वाले और सामाजिक पदावली में काव्य रचना करने वाले कवि निराला ने उर्दू, फारसी छंदों, बहरों को भी अपनाया और 'कुकुरमुत्ता', 'बेला' और 'नये पत्ते' नाम की तीन पुस्तकों में उर्दू के प्रयोग किये। हिंदी कवियों का उर्दू की ओर उन्मुख होना, कोई नई बात नहीं थी। पर छायावादी काव्य में उर्दू की ओर झुकाव किसी भी कवि का नहीं दिखाई देता। उर्दू काव्य-रचना तो दूर रही, उर्दू के चलते प्रयोग और प्रचलित भाषा और मुहावरे भी छायावादियों ने नहीं अपनाये। इसका कारण मुख्यतः यह है कि छायावादी कवि वस्तु के क्षेत्र में ही नहीं, भाषा के क्षेत्र में भी सौंदर्यवादी थे। एक तो उनकी भावात्मक प्रेरणा संस्कृत और अंग्रेजी काव्य और भाषासौंदर्य से ली गई थी, जिससे उर्दू का कुछ भी मेल नहीं बैठता था। दूसरे उन कवियों ने जिस प्रकार की भाव प्रधान काव्य-रचना की है, उसमें उर्दू की चमत्कार-प्रधान और मुक्तक शैली की काव्य-कृतियों के लिये अवकाश न था। छायावादी कवियों का श्रृंगार, कल्पना प्रधान और दार्शनिक था। उर्दू की श्रृंगारिक रचनायें ऐंद्रिक आकर्षण की अतिरंजना से भरी हुई थीं। दोनों में किसी प्रकार का सामंजस्य लाना संभव न था। कहा जा सकता है कि हिन्दी कविता उर्दू की काव्य प्रकृति से भिन्न दिशा में जा रही थी। वह अंग्रेजी के स्वच्छन्दतावादी कवियों की भाव-भूमियों के अधिक समीप थी। इसलिये आश्चर्य नहीं होता, जब हम यह देखते हैं कि छायावादी काव्य में अंग्रेजी की ही भांति प्राकृतिक उपमानों का बहुलता से प्रयोग हुआ, पर पड़ोस में रहने वाली उर्दू भाषा और उसकी भावनाधारा से छायावाद युग की हिंदी का बहुत कम संपर्क रहा।

हम यह भी देखते हैं कि उर्दू कविता में ईरान और फारस के सौंदर्य प्रतीक और पौराणिक तथा ऐतिहासिक प्रकरण और संकेत बड़ी मात्रा में अपनाये गये हैं, जिसके कारण सामान्य जनसमाज और हिन्दी की कवि-मंडली में भी उर्दू काव्य के प्रति अधिक उत्साह न था। वह समय बीस-~~सुना-का~~, जब उर्दू-भाषा-पठित वर्ग हिंदी को द्वासी भाषा कह कर उस पर गंवारूपन का आरोप लगाते और उसकी उपेक्षा

किया करते थे। अब वह समय आ गया था, जब उर्दू-भाषियों की हिंदी के नये काव्य-सौंदर्य के समकक्ष पहुँचने की लालसा होने लगी थी, उर्दू मुशायरे, समस्त हिंदी भाषी प्रदेशों में हुआ करते थे। उन्हें सुनने के लिये हिंदी के काव्य-रसिक भी पहुँचते थे और उन मुशायरों से वे एक विशेष प्रकार का प्रभाव लेकर लौटते थे। वह प्रभाव निश्चय ही मनोरंजन-प्रधान होता था। मनोरंजन से आगे बढ़ने पर उन्हें मुक्तक काव्य का चमत्कार जो उर्दू मुहावरों पर आश्रित रहता था, दिखाई पड़ता था। इसका यह अर्थ नहीं कि उर्दू-कविता में गंभीरता या दार्शनिकता नहीं थी। वह था, पर उर्दू कविता की शैली में उसे समाहित रूप मिलना कठिन था। दो-दो चार-चार पंक्तियों में किसी समग्र भावनाधारा को अभिव्यक्त करना, कल्पना-छाँवियों की एक-तानता प्रदर्शित करना, अथवा दार्शनिक आशयों को संपूर्णता में व्यक्त करना, उर्दू की मुक्तक काव्य-शैली के अनुरूप न था। आगे चल कर उर्दू में भी संग्रथित कविता की जाने लगी। नज्मे लिखी गई; पर तब तक हिंदीकविता बहुत आगे बढ़ चुकी थी।

हम ऊपर कह आये हैं कि हिंदी के छायावादी कवियों ने अंग्रेजी प्रगीत का आदर्श ग्रहण किया था और शैली, कीट्स, वर्ड्सवर्थ की प्रगीत-शैली से अनुप्राणित हो रहे थे। हिंदी ही क्यों? बंगला, मराठी और गुजराती भाषायें भी पश्चिमी काव्य के प्रभाव से अछूती नहीं थीं। कहना यह चाहिये कि हिंदी और बंगला जैसी प्रगति-शील भाषाओं के कवि अब अंग्रेजी और विदेशी काव्य-भूमियों के अधिक समीप आ गये थे। हिंदी के रीतिकाल में जिस प्रकार फारसी भाषा और साहित्य की जानकारी आवश्यक मानी गई थी, वैसे ही वर्तमान काल में अंग्रेजी भाषा का माध्यम नये काव्य-विकास के लिये सहायक माना जाने लगा। अब हमारे कविगण उर्दू फारसी काव्य-रचना से विरक्त हो कर अंग्रेजी और संस्कृत के काव्य-रूपों और प्रतिमानों को ग्रहण करने लगे थे।

ऐतिहासिक दृष्टि से देखने पर यह विदित होता है कि उर्दू और फारसी मुसलमानी शासन-काल में तो राजभाषा के रूप में प्रतिष्ठित ही थीं, वे सम्यता या तहजीब की भाषायें भी बनी हुई थीं। अंग्रेजों के राज्य ग्रहण करने के पश्चात् बहुत दिनों तक यही स्थिति बनी रही। उर्दू कचहरियों की भाषा बनी रही, उसे राजाश्रय मिलता रहा। कदाचित् इसी कारण वह भारतीय जनता के समीप नहीं पहुँच सकी। उर्दू काव्य की प्रगति अधिकतर दिल्ली और लखनऊ जैसे नगरों में हुई थी, जिससे नागरिक जीवन की रंगीनियाँ तो उसमें आ सकीं, पर लोक-जीवन की विशद और प्रशस्त भूमिकाएँ उससे अपरिचित ही रह गईं। भारतेन्दु हरिश्चन्द्रसे आरम्भ होने वाले हिंदीसाहित्य के आधुनिक युग में हिंदी-काव्य जनता की आशा-आकांक्षाओं का काव्य रहा है। हिंदीकविता की प्रगति संघर्ष की भूमिका पर हुई है। जब द्विवेदी युग में भारतीय पुनरुत्थान की राष्ट्रीय चेतना का प्रसार हुआ, तब हिंदी के कवि उर्दू से और भी दूर जा पड़े और उन्होंने संस्कृत का पराकाष्ठा बड़ी मजबूती से पकड़ा। इसके कारण

हिंदीकाव्य अधिकाधिक संस्कृत पदावली से समन्वित होता गया और छायावाद-युग में आकर उसकी संस्कृतनिष्ठा और भी स्पष्ट हो गई। अभिव्यंजना में संस्कृत का आधार और भावात्मक भूमिका पर प्राचीन रहस्यवादी कवियों और अंग्रेजी के स्व-च्छंदतावादियों की काव्य-रचना छायावादी कवियों का आदर्श बन गई। उर्दू भाषा और साहित्य से उनका रहा सहा संबंध भी छूट गया। उर्दू के कवि और लेखक अब भी हिंदी को अविकसित भाषा मानते थे। कदाचित् इसीलिये हिंदी के कवि और लेखक उर्दू के प्रति और भी उपेक्षाशील बन गये।

आरम्भ में हिंदी और उर्दू दो पृथक् भाषायें नहीं थीं। दक्षिण के हैदराबाद केन्द्र में वली जैसे अनेकानेक कवियों ने हिंदी में ही काव्य-रचना की। परन्तु क्रमशः उर्दू को राजनीतिक विशेषाधिकार मिल जाने से उसकी लोकप्रियता कम होती गई और उसका काव्य क्षेत्र सीमित होता गया। नगर निवासी जनसमाज को छोड़कर उसका प्रचलन कहीं नहीं था। इन कृत्रिम कारणों के प्रभाव से हिंदी और उर्दू का अन्तर बढ़ता गया और अन्ततः उर्दू साहित्य राष्ट्रीय स्तर की व्यापकता से दूर होकर अपने सीमित क्षेत्र में इस प्रकार की काव्य-रचना करता रहा, जिसे हम एक शब्द में 'दरबारी' काव्य कह सकते हैं, जब कि हिंदी कविता दरबारों से दूर रही। वह अपनी सरलता और सहजता में भी लोकजीवन के गहरे संस्पर्शों से अपना विकास करती रही। हिंदी के वर्तमान युग में अनेक कवियों ने उर्दू की काव्य शैलियों को अपनाया, पर ऐसा करने में उनका कोई गंभीर आशय न था। भारतेन्दु हरिश्चंद्र और उनके सहयोगियों ने उर्दू कविता भी की है, परन्तु उनका उर्दू काव्य राष्ट्रीय विषयों और भावनाओं को लेकर आगे बढ़ा। द्विवेदी युग में लाला भगवानदीन जैसे कवियों ने उर्दू छंदों को अपना कर बीररस की काव्य-रचना की, क्योंकि उन्हें उन छंदों में प्रवाह अधिक दिखाई पड़ा। इसी युग में अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' ने भी खड़ी बोली की ठेठ भाषा में 'बोल चाल', 'चुभते चौपदे' और 'चोखे चौपदे' लिखे, जिनमें मुहावरों का सौंदर्य उर्दू काव्य-शैली के समकक्ष लाने का प्रयत्न किया गया। परन्तु हरिऔधजी का यह प्रयास केवल उनके भाषा-अधिकार का द्योतन करता है। उनके इन काव्य ग्रंथों में सामाजिक सुधार का आशय प्रमुख है। काव्यात्मक वैशिष्ट्य और सौंदर्य की दृष्टि से वे प्रयत्न सफल नहीं कहे जा सकते। इस प्रकार आधुनिक युग में हिंदी कवियों के उर्दू संबंधी प्रयोग एक सीमित भूमिका पर और प्रासंगिक लक्ष्यों को लेकर ही किये हुये हैं। विशुद्ध काव्योत्कर्ष के रूप में उर्दू का आधार नहीं के बराबर है।

आधुनिक हिंदी साहित्य में कुछ ऐसे लेखक भी हैं, जिन्हें हिन्दी और उर्दू में बराबर अधिकार रहा है। परन्तु जब हम उनके साहित्यिक प्रणयन को देखते हैं, तब ज्ञात होता है कि उन्हें उर्दू की अपेक्षा हिन्दी में आत्मप्रकाशन करने में अधिक सफलता मिली है। ऐसे लेखकों में बालमुकुंद गुप्त, गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' और

प्रेमचन्दजी के नाम लिये जा सकते हैं। गुप्तजी ने द्विवेदी युग के आरम्भ से ही हिंदी उर्दू की मिली-जुली शैली को अपनाया था। पर उनकी रचनाओं का क्रमिक अध्ययन करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि समय की गति के साथ वे उर्दू की अपेक्षा हिन्दी की ओर अधिक झुकने लगे और उनकी भाषा में संस्कृत का पुट अधिकाधिक बढ़ने लगा। प्रेमचन्दजी ने तो उर्दू से ही अपना लेखन कार्य आरम्भ किया और उर्दू की कुछ कृतियों का हिन्दी में अनुवाद भी किया। वे उर्दू के लेखक बने रह कर भी उच्चतम स्थान के अधिकारी हो सकते थे। उर्दू वालों ने उन्हें काफी प्रतिष्ठा भी दी और उनकी मित्रमंडली में उर्दू के लेखक अधिक संख्या में थे। पर कोई ऐसी प्रेरणा थी, जिसने उन्हें उर्दू से हिन्दी की ओर निर्देशित किया। वह कौन सी प्रेरणा हो सकती है। प्रेमचन्दजी के संबंध में यह तो कहा नहीं जा सकता कि वे उर्दू को मुसलमानों और हिन्दी को हिन्दुओं की भाषा मानते थे। भाषा के क्षेत्र में जातिवाद का कुछ भी प्रभाव उन पर नहीं था। वैसी स्थिति में उर्दू से हटकर हिन्दी की ओर आने में प्रेमचन्दजी इन दोनों भाषाओं की सापेक्षिक राष्ट्रीयता के स्वरूप से प्रभावित हुये होंगे। उन्हें यह अनुभव हुआ होगा कि जिस देश, जाति, और समाज का चित्र वे उपन्यासों में देना चाहते हैं, वह हिन्दी के माध्यम से ही दे सकते हैं। जनभाषा के रूप में उर्दू की अपेक्षा हिन्दी की पहुँच कहीं अधिक है। इसलिये हिन्दी का अपेक्षाकृत कम ज्ञान रखते हुये भी उन्होंने अपने प्रौढ़ उपन्यासों में उसी का पल्ला पकड़ा। यदि प्रेमचन्द की राष्ट्रीयता और उनके समाज हित के आदर्शों पर हमें संदेह नहीं है, तो हम यह कहने को बाध्य हैं कि प्रेमचन्द द्वारा हिन्दी का अपनाया जाना, हिन्दी की व्यापकता और उसकी राष्ट्रीय परंपरा का ही परिचायक है। जब प्रेमचन्दजी ने गद्य के क्षेत्र में हिन्दी उर्दू का यह मौलिक अन्तर समझा था, तब काव्य के क्षेत्र में दोनों भाषाओं की प्रवृत्तियों का अन्तर समझने में और भी आसानी है। काव्य सदैव गद्य की अपेक्षा लोकजीवन के मूलभूत तत्वों से अधिक संलग्न रहता है। कविता हमारे हृदयों का उद्गार होने के कारण गद्य की अपेक्षा कहीं अधिक राष्ट्रीय या जातीय वस्तु कही जा सकती है।

इस संबंध में एक और उदाहरण 'सनेही'जी का प्राप्त होता है, जिन्होंने स्वराज्य आन्दोलन के समय में अपनी राष्ट्रीय कविताओं के द्वारा अत्यधिक कीर्ति अर्जित की थी। उनकी कवितायें हिन्दी और उर्दू के पत्रों में काफी प्रकाशित होती रहीं। उर्दू में उन्होंने अपना उपनाम भी अलग ही रखा था। पर अन्ततः यह देखा गया कि सनेही जी की हिन्दी में लिखी राष्ट्रीय कवितायें अधिक प्रचलित हुईं और अधिक स्थायित्व प्राप्त कर सकीं। इन उदाहरणों से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि हिन्दी और उर्दू की समानांतर प्रगति में, राष्ट्रीय और लोकजीवन के क्षेत्र में, उर्दू क्रमशः पिछड़ती गई है और हिन्दी अधिकाधिक लोकप्रिय होती गई है।

छायावाद युग में आकर हिन्दी कविता अपने युगसम्मत वैष्ट्य को पूरी तरह प्रमाणित कर चुकी है।

● निराला का उर्दू काव्य : प्रेरणा और उद्देश्य

हिन्दी और उर्दू सम्बन्धी जो पृष्ठभूमि ऊपर दी गई है, उससे यह प्रकट होता है कि ज्यों ज्यों उर्दू साहित्य को राजाश्रय मिलता गया और वह नागरिक जीवन की रंगीनियों में पड़ती गई, त्यों त्यों हिन्दी से उसका पार्थक्य बढ़ता गया है। आरम्भ में इन दो भाषाओं का अन्तर अत्यन्त अल्प था नहीं के बराबर था, जब इनका प्रयोग हिन्दू और मुसलमान बिना भेदभाव के किया करते थे। इसे रखता हिंदवी आदि के नाम से पुकारा जाता था। इन दोनों भाषाओं में समानरूप से लोकजीवन के वर्ण्य विषय रहा करते थे, और दोनों ही एक समान संस्कृति की उन्नति कर रही थीं। बल्कि हिन्दी के रीतिकाल के उत्तरार्द्ध में हिन्दी की अपेक्षा उर्दू ही लोकजीवन के समीप थी। परन्तु समय के परिवर्तन से उर्दू भाषा और उसका साहित्य लोक भूमिका को छोड़कर विशिष्ट राजकीय आश्रय और राजकीय मनोरंजन का साधन बन गई। इसके विपरीत हिन्दी काव्य राजाश्रय को छोड़कर आधुनिक युग की जनतांत्रिक भावनाओं को अपनाता गया है। इस युग में जब-जब किसी कवि ने उर्दू में काव्य लिखने का उपक्रम किया है, तो इस दृष्टि से नहीं कि वह उर्दू के चमत्कार को, नागरिक सौंदर्य को हिन्दी में उतारे; वरन् इसीलिए उर्दू के प्रयोग किये हैं कि उसे लोक जीवन के अधिक समीप लाया जाय। इसीलिए हिन्दी कवियों ने उर्दू की विषय वस्तुओं में अस्पृष्ट रहकर उसके छंदों और मुहावरों को ही अपनाने का प्रयत्न किया है। इस प्रकार इस सम्पूर्ण युग में हिन्दी कवियों ने उर्दू के कलापक्ष से ही थोड़ी बहुत प्रेरणा ली है, उसके वस्तुपक्ष से नहीं। हिन्दी उर्दू के इस पारस्परिक आदान-प्रदान से एक तीसरी भाषा का भी विन्यास होने लगा था। उसे हम बोलचाल की खड़ी बोली कह सकते हैं। इस बोलचाल की खड़ी बोली में एक ओर संस्कृत की पदावली का बहिष्कार और दूसरी ओर फारसी के शब्द-भंडार का परित्याग था। दोनों दिशाओं से मुंह मोड़कर यह बोलचाल की खड़ी बोली विशिष्ट प्रकार के काव्य निर्माण के लिये अक्षम सिद्ध हुई और हिन्दी और उर्दू की काव्य-शैलियाँ पृथक् ही बनी रहीं। यहाँ तक कि प्रेमचंदजी को भी इतना साहस नहीं हुआ कि वे हिन्दी और उर्दू के बीच की भाषा का प्रयोग करते हुए अपने उपन्यास और कहानियाँ लिखते और देवनागरी और फारसी लिपियों में एक ही वस्तु को मुद्रित करा देते। उन्हें भी उर्दू में अलग और हिन्दी में अलग कृतियाँ प्रस्तुत करनी पड़ीं और अपने प्रौढ़काल में तो उन्होंने हिन्दी के माध्यम से ही साहित्यिक कार्य किया था। इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि हिन्दी के लेखक और कवि उर्दू को अपने कार्य और उद्देश्य के लिए अक्षम और असमर्थ पा रहे थे।

ऐसी परिस्थिति में निरालाजी को उर्दू काव्यरचना करने की प्रेरणा किस ओर से मिली है और उन्होंने उर्दू शैली की काव्य-सृष्टि किस उद्देश्य से की, यह प्रश्न विचारणीय है। हम यह देखते हैं कि निराला की उर्दू-शैली की कविताओं में व्यंग और विनोद की प्रधानता है। कदाचित् उन्होंने हास्य और व्यंग विनोद के लिए उर्दू की चटपटी शैली को उपयोगी समझा। इस प्रकार की व्यंगात्मक और विनोदात्मक कृतियों में निरालाजी ने मुक्तछंद का प्रयोग भी किया है जिसमें प्रवाह और भाव-भंगिमा की कमी न रहे। चुहल और नुकताचीनी के लिये यह भाषा उन्हें उपयुक्त जान पड़ी। उनका 'कुकुरमुत्ता' काव्य इसका अच्छा प्रमाण कहा जा सकता है। 'कुकुरमुत्ता' को एक बार लिख लेने के पश्चात् निरालाजी ने उसे उर्दू के कतिपय साहित्यिकों और कवियों को दिखाया था और उनसे इस्लाह लेकर उन्होंने अनेक संशोधन किये थे। 'कुकुरमुत्ता' के दूसरे संस्करण में उर्दू के प्रयोग-सम्मत स्वरूप को प्रयत्नपूर्वक अपनाया गया है। देखिये—

प्रथम संस्करण—	एक सपना जग रहा था सांस ले तहजीब की, गोद में तरतीब की—
संशोधित संस्करण—	एक सपना जग रहा था सांस पर तहजीब की गोद पर तरतीब की। × × ×
प्रथम संस्करण—	गले लग लग हवा चलती मंद मंद
संशोधित संस्करण—	गले लग कर हवा चलती मंद मंद × × ×
प्रथम संस्करण—	बीच में आरामगाह दे रहा था बड़प्पन की थाह
संशोधित संस्करण—	बीच में आरामगाह दे रही थी बड़प्पन की थाह × × ×
प्रथम संस्करण—	हाथ जिसके तू लगा, पैर सर पर रख के पीछे को भगा जानिब औरत की, मैदानेजंग छोड़, तबेले को टट्टू जैसे तंग तोड़;

संशोधित संस्करण—

हाथ जिसके तू लगा,
पैर सर रखकर व' पीछे को भगा
औरत की जानिब मैदान यह छोड़कर
तबेले को टटू जैसे तंग तोड़कर

× × ×

इनकी इस संशोधन प्रक्रिया से यह सूचित होता है कि वे कुरुरमुत्ता तथा अन्य ऐसी कविताओं को उर्दू पाठकों के लिए भी ग्राह्य और पाठ्य बनाना चाहते थे। यहाँ उनका लक्ष्य हिन्दी कविता के उर्दू पाठक उत्पन्न करना कहा जा सकता है। 'कुरुरमुत्ता' और कुछ अन्य रचनाओं में तो निरालाजी ने सरल हिन्दी और सरल उर्दू को मिलाने का प्रयोग किया है। परन्तु बीच बीच में संस्कृत के कुछ क्लिष्ट शब्द भी आ ही गये हैं जो इन रचनाओं को एक अंश तक दुर्बल बना देते हैं।

मन्द होकर कभी निकला,
कभी बनकर ध्वनि क्षीणा ।^१

या

मेरी सूरत के नमूने पिरामिड,
मेरा चेला था युवलीड ।
रामेश्वर, मीनाक्षी, भुवनेश्वर,
जगन्नाथ, कितने मन्दिर सुन्दर,
मैं ही सबका जनक,
जेवर का ज्यों कनक ।^२

फिर भी सामान्य रूप से कुरुरमुत्ता व्यंग और विनोद की सफल सृष्टि कहा जा सकता है और इसमें किये गये उर्दू के प्रयोग उद्देश्य की पूर्ति करते हैं।

कुछ छंदोबद्ध रचनाओं में निरालाजी ने उर्दू की गजल शैली का अनुकरण किया है। ये प्रयोग दो प्रकार के हैं। प्रथम वे प्रयत्न जिनमें उर्दू शब्दावली की प्रधानता है; परन्तु ऐसे पद्य कम ही हैं। अधिकतर पद्यों में छंद उर्दू का और भाषा हिन्दी-संस्कृत की रखी गई है। हम यहाँ दोनों के एक एक उदाहरण दे रहे हैं।

उर्दू पदावली—

बदली जो उनकी आँखें, इरादा बदल गया ।
गुल जैसे चमचमाया कि बुलबुल मचल गया ।^३

१ निराला : कुरुरमुत्ता (प्रथम संस्करण) पृ० ८ ।

२ वही पृ० १२ ।

३ निराला : बेला—पृ० ८३ ।

संस्कृत गर्भित पदावली— स्नेह की रागिनी बजी
देह की मुर-बहार पर,
बर विलासिनी सजी
प्रिय के अनुहार पर ।'

इन उदाहरणों को देखकर यह कहा जा सकता है कि एक ओर जहाँ वे उर्दू प्रधान गजलों के द्वारा इस भाषा सम्बन्धी अपनी जानकारी और क्षमता को प्रकट करते हैं वहाँ दूसरी ओर वे हिन्दी पाठकों को एक नई छंदशैली भी भेंट करते हैं, जिसमें संस्कृत की पदावली उर्दू पदों के साथ जुड़ी हुई है। दोनों ही भूमिकाओं पर निरालाजी का यह उपक्रम उनकी प्रयोग-बहुल काव्यसाधना का परिणाम कहा जा सकता है।

हमें यह भी स्मरण रखना चाहिये कि निरालाजी ने उर्दू शैली की काव्य रचना उन कतिपय वर्षों से आरम्भ की थी, जब हिन्दी में प्रगतिवादी आंदोलन आरम्भ हो चुका था और हिन्दी के प्रगतिवादी समीक्षक भाषा को सरल बनाने का जोरदार आग्रह कर रहे थे। यह बात भी लक्ष्य करने योग्य है कि उर्दू शैली की इन रचनाओं में निरालाजी की विचार-दृष्टि प्रगतिशीलता के बहुत समीप थी। इस आधार पर यह कहना अनुचित न होगा कि निराला के उर्दू-शैली-काव्य की प्रमुख प्रेरणा प्रगतिवादी विचारधारा से प्राप्त हुई।

इन्हीं वर्षों में श्री रघुपतिसहाय 'फिराक' और डा० रामविलास शर्मा के हिन्दी-उर्दू काव्य-भाषा के प्रश्न को लेकर बड़ी लम्बी लिखा-पढ़ी हुई थी, जिसमें रघुपतिसहाय ने हिन्दी के उच्चारणों को बोझिल और क्लिष्ट तथा हिन्दी के भाषागत प्रयोगों को वे-मुहावरा और बेढंगा तक कहा। इसके उत्तर में डा० रामविलास शर्मा के वक्तव्यों में यह स्पष्ट किया गया था कि हिन्दी-काव्य-भाषा अपनी परम्परा के अनुरूप आगे बढ़ रही थी और हिन्दी पाठकों को उसमें अनगढ़पन या दुरुहता नजर नहीं आती थी। उर्दू की मुहावरेबाजी को उन्होंने दरबारी भूमिका पर तैयार किया गया बताया था और काव्य में मुहावरों के अधिक प्रयोग को कृत्रिम कहा।

कदाचित् निरालाजी ने इन दोनों ही लेखकों के वक्तव्यों में आंशिक रूप से सत्य का आभास पाया था और उन्होंने मानो यह सिद्ध करने के लिए कि हिन्दी के कवि चाहें तो दूसरे प्रकार की भाषाओं का प्रयोग भी कर सकते हैं, यदि वे भाषा रूप-विषय के अनुकूल हों। एक कवि की ओर से किया गया वादविवाद का यह समाधान कम उल्लेखनीय नहीं है। इसके द्वारा निरालाजी ने हिन्दी-उर्दू संबंधी द्वंद का किसी अंश तक समाधान भी कर दिया है।

१ भाषागत अध्ययन:—उर्दू शैली की निरालाजी की सर्वाधिक सफल कविता 'कुकुरमुत्ता' ही कही जायेगी। जैसा कि हम निवेदन कर चुके हैं, 'कुकुरमुत्ता' मुक्तछन्द में लिखा गया है। 'कुकुरमुत्ता' के अतिरिक्त मुक्तछन्द में लिखी गई निरालाजी की उर्दू शैली की अन्य कवितायें भी मिलती हैं। 'कुकुरमुत्ता' के प्रथम संस्करण में ६ अन्य कवितायें भी हैं, जिनमें 'मास्को डायलाग्स', 'रानी और कानी', और 'स्फटिक शिला' मुक्तछन्द में लिखी गई हैं। शेष तीन कवितायें 'गर्म पकौड़ी', 'प्रेम संगीत' और 'खजोहरा' छन्दोबद्ध हैं। 'नये पत्ते' संग्रह में 'कुकुरमुत्ता' की कुछ कवितायें उद्धरित हैं। शेष नयी कवितायें हैं। इनमें से कुछ कवितायें मुक्तछन्द में लिखी गई हैं। उर्दू शैली के तृतीय 'बेला' नामक संग्रह में सभी कवितायें छन्दोबद्ध हैं और गजल शैली प्रस्तुत की गई है। हम उर्दू शैली के इन तीनों संग्रहों की काव्यभाषा का विवरण अलग-अलग देना चाहेंगे।

(१) कुकुरमुत्ता:—हास्य और व्यंग्य-प्रधान यह कविता छन्दोबद्ध न होने के कारण उर्दू की गद्य शैली के अधिक समीप है। छन्दों और तुकों के बन्धन में पड़ जाने पर किसी भी भाषा में कविता लिखना कठिन होता है। निरालाजी का उर्दू सम्बन्धी भाषा ज्ञान इतना विशिष्ट नहीं है कि वे उर्दू के छन्दबद्ध प्रयोग सरलतापूर्वक कर सकें। जहां कहीं उन्होंने इस प्रकार का प्रयोग किया है, वहां वे अपेक्षाकृत कम सफल हुए हैं। कदाचित् इसीलिए उनकी छन्दबद्ध उर्दू रचनाओं में बेमेल भाषा के अधिक उदाहरण मिलते हैं। यह बात भी ध्यान देने की है कि उर्दू की छन्दबद्ध कृतियों में हास्य और व्यंग्य की हलकी कवितायें प्रायः नहीं लिखी जातीं। उनमें गम्भीर तत्वों का समावेश करना पड़ता है और गम्भीर तथ्यों के लिए भाषा पर और भी सुदृढ़ अधिकार चाहिये। इसीलिए निराला की उर्दू शैली की छन्दोबद्ध रचनायें और भी शिथिल दिखाई पड़ती हैं। 'कुकुरमुत्ता' कविता में बहुत दूर तक पृष्ठभूमि का वर्णन चलता है। इस वर्णनात्मक प्रसंग में उर्दू की गद्यात्मक शैली का प्रयोग करने में निरालाजी को अधिक कठिनाई नहीं हुई है। उदाहरण—

साफ राहें, सरो दोनों ओर,
दूर तक फैले हुए सब छोर,
बीच में आराम गाह
दे रहा था बड़प्पन की थाह
कहीं झरने, कहीं छोटी-सी पहाड़ी,
कहीं सुधरा चमन, नकली कहीं झाड़ी।'

ये पंक्तियां गद्यात्मक वर्णन के इतने समीप हैं कि इनका निर्माण करना किसी विशेषज्ञ की अपेक्षा नहीं रखता। इसके पश्चात् निराला ने कुकुरमुत्ता के मुंह से

जो लम्बा नाटकीय संवाद कराया है, उसमें भी उर्दू सलीमदानी की आवश्यकता नहीं पड़ी और कहीं-कहीं उर्दू के बीच हिन्दी का पुट मिल जाने पर भी रचना शिथिल नहीं हो पाई है ।

और अपने से उगा मैं,
बिना दाने का चुगा मैं
कलम मेरा नहीं लगता,
मेरा जीवन आप जगता;
तू है नकली, मैं हूँ मौलिक,
तू है बकरा, मैं हूँ कौलिक;^१

स्पष्ट है 'मेरा जीवन आप जगता', 'मैं हूँ मौलिक', 'मैं हूँ कौलिक', आदि हिन्दी के ठेठ प्रयोग हैं, फिर भी यह पूरी कविता में अच्छी तरह खप गए हैं । इसी प्रकार—

विष्णु का मैं ही सुदर्शन-चक्र हूँ
काम दुनिया में पड़ा ज्यों वक्र हूँ—
उलट दे, मैं ही जसोदा की मथानी,
और भी लम्बी कहानी,^२

पंक्तियाँ पूरी की पूरी हिन्दी की हैं । परन्तु उर्दू छन्द भंगिमा में ढलकर भी वे बेमेल नहीं लगती ।

हम यह भी देखते हैं कि उर्दू भाषा पर निरालाजी के पूर्ण अधिकार की कमी अंग्रेजी वाक्यांशों के मेल से भी जहां तहां पूरी की गई है । देखिए—

जैसे सिकुड़न और साड़ी,
ज्यों सफाई और मांड़ी;
कास्मोपालिटिन व मेट्रोपालिटिन
जैसे हों फ्रायड, लिटन;

× × ×
सरसता में फ्राड
कैपिटल में जैसे लेनिनग्राड^३ ।

इस कविता में उर्दू बोलचाल की भाषा के रूप में स्वीकार की गई है । उर्दूए मुअल्ला के रूप में नहीं । कहीं-कहीं तो बाजारू शब्द भी झांकने लगते हैं—

१ निराला : कुरुरमुत्ता पृ० ५

२ वही पृ० ६

३ निराला : कुरुरमुत्ता

मैं ही लायर, लिरिक मुझसे ही बने,
संस्कृत, फारसी, अरबी ग्रीक लैटिन के जने,
मंत्र गजलें, गीत मुझसे ही हुए शैदा,
जी रहे मर रहे, फिर हो रहे पैदा ।^१

‘कुकुरमुत्ता’ में नवाबी खानदान के सम्पूर्ण वातावरण को उतारने की कोशिश की गई है। इस कार्य में उर्दू के जमे हुए प्रयोग निरालाजी ने बड़ी सफाई के साथ किये हैं—

रहते थे नवाब के खादिम
अफ्रीका के आदमी आदिम—
खानसामां, बावर्ची, और चोबदार,
सिपाही, साईस, भिस्ती, घुड़सवार
तामजाम वाले कुछ देशी कहार,
नाई, धोबी, तेली, तमोली, कुम्हार,^२

इन पंक्तियों में नवाबी जिन्दगी और रहन-सहन का अच्छा नक्शा उतर आया है।

नये पत्ते:—‘नयेपत्ते’ में उर्दू शैली की कवितायें अधिक संख्या में हैं, बल्कि कहना चाहिए कि इस संग्रह की २८ कविताओं में से ५-६ को छोड़ कर शेष सब उर्दू में हैं। परन्तु यहां उर्दू शब्द का प्रयोग हम बोलचाल की उर्दू के अर्थ में ही कर रहे हैं। कई रचनायें तो ऐसी भी हैं, जिनमें उर्दू केवल नाम मात्र को है, परन्तु बोलचाल के आ जाने से इनकी शैली में उर्दू का आभास मिल जाता है—

फिर भी माँ का दिल बैठा रहा,
एक चोर घर में पैठा रहा,
सोचती रहती है दिन रात
कानी की शादी की बात
मन मसोस कर वह रहती है।^३

इसे हम उर्दू की अपेक्षा हिन्दी के ही अधिक निकट पाते हैं। इसी प्रकार ‘खजोहरा’ कविता हिन्दी उर्दू की मिलीजुली रचना जान पड़ती है —

१ निराला : कुकुरमुत्ता पृ० १

२ वही पृ० १५

३ निराला : नए पत्ते : ‘रानी और कानी’ पृ० १०

बारिश से बढ़ी ज्वार, बाजरा, उर्दू
गाँव हरे-भरे कुल, कलाँ और खुर्द
लोग रोज रात को आल्हा गाते
ढोलक पर अपना जी बहलाते' ।

‘मास्को डायलाग्स’ ‘थोड़ों के पेट में बहुतों को आना पड़ा’ ‘राजे ने अपनी रखवाली की’, ‘खुश खबरी’, ‘दगा की’, ‘चर्खा चला’, ‘गर्म पकौड़ी’, ‘प्रेम संगीत’, ये सभी रचनायें उर्दू की चाशनी से बनी हैं । इन्हें हिन्दी की अपनी वस्तु कहने में भी कोई अड़चन नहीं है ।

‘स्फटिकशिला’ जैसी लम्बी रचनायें कुरुरमुत्ता की अपेक्षा हिन्दी के कहीं अधिक समीप हैं । इसका कारण यह हो सकता है कि प्राचीन हिन्दू तीर्थ स्थान से संबन्धित वस्तु का वर्णन खालिस उर्दू में उपयुक्त भी नहीं है । ‘कुरुरमुत्ता’ में नवाबी खानदान के परिप्रेक्ष्य में उर्दू का कुछ गाढ़ापन स्वभावतः आ गया है, यद्यपि उसमें भी प्रयोग के तौर पर अंग्रेजी के अनेकानेक शब्द आ गये हैं । जान पड़ता है, निरालाजी ने परवर्ती काल की इन रचनाओं में मूलतः बोलचाल की भाषा अपनाई है और विषय के अनुरूप उसमें हिन्दी उर्दू या अंग्रेजी का पुट देते चले गए हैं । कदाचित् इसीलिए उनकी इन रचनाओं में उर्दू का अनुपात घटता बढ़ता रहा है, परन्तु जो वस्तु इन सारी रचनाओं को शैली में ढालती है, वह है इसमें आये हुए उर्दू के मुहावरे और भाषा की वह रवानगी जो उर्दू का स्मरण कराती रहती है । जहाँ एक ओर ‘स्फटिक शिला’ के वर्णनों में निम्नलिखित हिन्दी की विशुद्ध पंक्तियाँ मिलती हैं—

स्वच्छ मंदाकिनी नदी झरनों से यहीं निकली,
पहाड़ों के बीच पड़ी
बादलों में जैसे बिजली
फूट रहे हैं सस्वर
नये स्रोत, झरने नए, गिरियों को फोड़ कर^२
आदमी भी साथ है । ‘खैर’,
मैंने कहा, चलने की कही,
और देखे हैं पैर
अपना भी होगा गैर ?

जैसी उर्दू मिश्रित शब्दावली और मुहावरे भी मिल जाते हैं ।

१ निराला : नये पत्ते—‘खजोहरा’ पृ० १२

२ निराला : ‘नये पत्ते’-‘स्फटिकशिला’ पृ० ४६

३ वही पृ० ४२

(३) बेला:—ऊपर 'कुकुरमुत्ता' 'और नये पत्ते' की मुक्तछन्द में लिखी गई हलकी फुलकी उर्दू, या मिलीजुली हिन्दी उर्दू का संक्षेप में परिचय दिया गया, और इस प्रकार की भाषा का प्रयोग निरालाजी ने हास्य और विनोद के हल्के आशयों के लिये किया है, यह भी उल्लेख किया गया। इन प्रयोगों में निरालाजी अधिक सफल हुए हैं, यह हम आरम्भ में ही कह आये हैं। अब हम यहाँ 'बेला' की उर्दू कविताओं की चर्चा करेंगे, जिसमें न केवल उर्दू के छन्द अपनाए गये हैं, बल्कि गजल शैली का प्रयोग भी किया गया है। साथ ही इसमें कुछ गम्भीर भावों के निरूपण का प्रयत्न है। निरालाजी की उर्दू भाषा की वास्तविक परीक्षा 'बेला' में ही हो सकती है, क्योंकि यहाँ आकर उन्हें उर्दू के साहित्यिक स्तर के प्रयोग करने पड़े हैं। यहाँ की उर्दू अपनी उच्चतर भूमिका चाहती है। मिश्रित प्रयोग यहाँ सहायता नहीं दे सकेंगे। हम देखते हैं, कि 'बेला' में विशुद्ध उर्दू की थोड़ी सी रचनायें हैं और इनमें भी उर्दू की जबांदानी बहुत थोड़ी कृतियों में निखर पायी है। अधिकतर केवल उर्दू छंद का निर्वाह किया जा सका है। कई उर्दू छंदों में संस्कृत-गर्भित भाषा लिखी गई है। कुछ कविताओं में संस्कृत, हिन्दी और उर्दू का मिश्रण तैयार किया गया है। परन्तु जहाँ कहीं निरालाजी ने इन अतिवादों को छोड़कर सरल हिन्दी उर्दू की कवितायें लिखीं, वहाँ वे स्वाभाविक सौंदर्य से चमक भी उठीं। यहाँ हम विशुद्ध संस्कृत, हिन्दी-उर्दू-संस्कृत और सरल हिन्दी-उर्दू छंदों के एक-एक उदाहरण देना चाहेंगे।

विशिष्ट उर्दू:— निगह तुम्हारी थी, दिल जिससे बेकरार हुआ;
मगर मैं गैर से मिलकर निगह के पार हुआ।^१

✕

✕

✕

उर्दू छंद, विशुद्ध संस्कृत पदावली:—

अशब्द हो गयी वीणा,

विभास बजता था।

अमिय-क्षरण नवजीवन समास बजता था।

कलुष मिला, मनसिज की विदग्धता फैली

चल उँगलियाँ रुकीं डरकर विलास बजता था ^२

✕

✕

✕

हिन्दी-उर्दू-संस्कृत मिश्रित—

वहीं नवीना सजी और वहीं बजी वीणा,

शराबो प्याले का अब तक न बहिष्कार हुआ।

१ निराला : 'बेला'—पृ० २६।

२ वही—पृ० २६।

निगह लड़ी उठी शमशीर, बाँके-तिरछे कटे,
गले-लगे छुटे, संसार कारागार हुआ ।^१

× × ×

सरल हिन्दी-उर्दू—

हँसी के झूले के झूले हैं वे बहार के दिन ।
सलास वृत्तों के फूले हैं वे बहार के दिन ।
जगे हैं सपनों में किरणों की आँखें मल-मलकर
मधुर हवाओं के झूले हैं वे बहार के दिन ।^२

उर्दू छंदों की जमीन पर लिखे गये इन चारों उद्धरणों को देखने पर यह स्पष्ट होता है कि गंभीर भावाभिव्यंजना में निरालाजी उपर्युक्त प्रथम तीन शैलियों में अधिक सफलता प्राप्त कर सके हैं। अधिकार-पूर्वक उर्दू-भाषा का प्रयोग करने में वे थोड़ी ही दूर तक चल पाये हैं। उर्दू छंदों में संस्कृत की पदावली को ढालने में भी उनकी सफलता निर्विवाद नहीं कही जा सकती। एक ही कविता में हिन्दी-उर्दू और संस्कृत की मिश्रित पदावली किसी भी संश्लिष्ट प्रभाव का निर्माण नहीं करती। इन अतिवादों से हटकर जब निरालाजी भाषा की सहज भूमिका पर आते हैं, तब निःसंदेह वे उत्कृष्ट काव्य के नमूने पेश कर सके हैं। यहाँ उनकी सफल हिन्दी-उर्दू मिश्रण की एक और कविता दी जाती है—

बातें चलीं सारी रात तुम्हारी,
आँखें नहीं खुलीं प्रात तुम्हारी
पुरवाई के झोंके लगे हैं
जादू के जीवन में आ जगे हैं,
पारस पास कि राग रंगे हैं
काँपी सुकोमल गात तुम्हारी ।^३

इस सरल भावाभिव्यंजना में निरालाजी को कोई कठिनाई नहीं हुई; क्योंकि सरल हिन्दी और आसान उर्दू के दोनों ही क्षेत्र उनके लिये खुले हुये हैं, और उनका संचयन करने में उन्हें कहीं से दूर की कौड़ी नहीं लानी पड़ी।

● वस्तुगत अध्ययन

निरालाजी के द्वारा प्रयोग की गई उर्दू भाषा के स्वरूप पर प्रकाश डालने के पश्चात् अब हम उनकी इस शैली की कविताओं के वस्तुपक्ष पर भी दृष्टिपात

१ निराला : 'बेला'—पृ० २६ ।

२ वही—पृ० २४ ।

३ निराला : बेला—पृ० १७ ।

करेंगे। आरम्भ में यह ध्यान रखना चाहिये कि निरालाजी ने उर्दू शैली का प्रयोग कविता को सामान्य बोलचाल के समीप लाने और सामयिक सामाजिक विषयों की स्थापना करने के लिये ही किया था। उनकी इस प्रकार की कवितायें समसामयिक प्रश्नों और समस्याओं से सम्बन्धित हैं। जहाँ कहीं कवि ने सामयिकता का आधार छोड़कर उर्दू काव्य के परम्परागत विषयों को अपनाया, वहाँ उसकी काव्य-रचना शिथिल और अशक्त भी हो गई है। हम यह भी कह चुके हैं, कि उर्दू का व्यवहार अधिकतर ध्वंग और विनोद के स्तर पर ही किया गया है। जहाँ वे इस प्रकार की पदावली से गंभीर भाव-व्यञ्जना करना चाहते हैं, वहाँ वे उतने सफल नहीं हुये। श्री निरंजन ने लिखा है—“गजलों की परिपाटी से उन्होंने वाक्चातुरी लेने की कोशिश की है, लेकिन इधर-उधर पंक्तियाँ लिखने पर भी वे बहुधा इस चातुरी का निर्वाह नहीं कर पाते। इसका एक कारण यह है कि उर्दू कवि सूक्तियों का ध्यान रखते हैं और निरालाजी भावना के संगठन का।’ उनकी गजलों में सम्बद्धता है, जो पुरानी गजलों में नहीं मिलती। अनेक गजलों में देश और समाज के बारे में भी बातें कही गयी हैं। कई पुरानी शैली की कल्पनाएँ भी हैं। कहीं कहीं भौतिक सौंदर्य के वर्णन हैं। गीतिका के अनेक छंदों जैसी मांसलता भी है। ‘... उर्दू की बोलचाल का रंग अपनाया है। इन गजलों को पढ़ने से ऐसा लगता है जैसे कवि की नयी चेतना प्रकाश में आने के लिये रूढ़ियों से टकरा रही है। ये बंधन तोड़कर वह चेतना जन-गीतों के रूप में फूट निकली है।”^१

इसी भूमिका पर हम निरालाजी की उर्दू शैली की रचनाओं का वस्तु-विवेचन कर सकते हैं।

(१) ‘कुकुरमुत्ता’—में एक ओर सामंतवादी सभ्यता के कृत्रिम वैभव के चित्र दिये गये हैं, तो दूसरी ओर नये सर्वहारा वर्ग की अविकसित सांस्कृतिक स्थिति का आलेख किया गया है, और एक प्रकार से इन दोनों वर्गों के उपहास के द्वारा नयी संस्कृति के नवनिर्माण का संकेत किया गया है; जो पुरानी सामंतवादी संस्कृति का स्थानापन्न बनेगी। इसी प्रकार ‘कुकुरमुत्ता’ कविता में निरालाजी की मूल वर्ण्यवस्तु सांस्कृतिक द्वंद्व की है और उनका निष्कर्ष एक नवीन समृद्ध संस्कृति के निर्माण की दिशा में है।

(२) ‘नये पत्ते’—की स्फुट रचनाओं में भी निराला की वर्ण्यवस्तु व्यंगात्मक है। ‘खजोहरा’ में उन्होंने कुरूप वास्तविकता को चित्रित करने का प्रयत्न किया है। ‘रानी और कानी’ में माता के मिथ्या मोह की यथार्थ के प्रकाश में व्यर्थता दिखाई है। ‘मास्को डायलाग्स में’ प्रगतिवादी कहे जाने वाले लोगों के एक खोखलेपन को

१ निरंजन : (निराला की ५१ वीं वर्ष गाँठ पर) ‘नया साहित्य’ पत्रिका में प्रकाशित लेख, पृ० ६५।

प्रदर्शित किया गया है। 'गर्म पकौड़ी' एक हास्यरस की कविता है। यहाँ निरालाजी आजकल के नवयुवकों के प्रेम की बात कह रहे हैं। ऐसा प्रतीत होता है मानो कोई शब्द-शिल्पी अप्रस्तुत-योजना के सहारे प्रेम का पिटारा खुले शब्दों में खोल रहा हो—

पहले तूने मुझको खींचा,
दिल देकर फिर कपड़े-सा फींचा,
अरी, तेरे लिये छोड़ी
बम्हन की पकाई
मैंने घी की कचौड़ी।

इस प्रकार 'गर्म पकौड़ी' और 'प्रेमसंगीत' में प्रेम के छिछले रूपों पर व्यंगात्मक प्रकाश डाला गया है। 'स्फटिक शिला' में प्राचीन तीर्थस्थलों की आधुनिक गिरी हुई दशा का व्यंगात्मक निरूपण किया गया है। 'झींगुर डटकर बोला' में जमींदार के हथकड़ों का चित्र है।

निरालाजी के उर्दू-शैली के गीत मुख्यतः 'बेला' संग्रह में मिलते हैं। 'निरालाजी की युद्धकालीन कविताएँ' शीर्षक लेख में डा० रामविलास शर्मा ने लिखा है—'नये प्रयोगों में निरालाजी की गजलों भी शामिल हैं। इनका संग्रह 'बेला' नाम से प्रकाशित हुआ है। गजलों की परंपरा उर्दू में ही खत्म हो रही है। नये कवि नये ढंग से मुक्तक और गीत लिख रहे हैं।' 'बेला' में निरालाजी ने अपनी विषय-वस्तु को विविधता दी है और व्यंगात्मक भूमिका को छोड़कर अधिक गंभीर विषय-वस्तु की अभिव्यक्ति करने लगे हैं। 'बेला' की विषय-वस्तु का वर्गीकरण निम्न प्रकार से किया जा सकता है—

- (१) सामाजिक भूमिका।
- (२) राष्ट्रीय चेतना और देश प्रेम।
- (३) वैयक्तिक प्रेम और शृंगार।
- (४) रहस्यात्मक एवं धर्मपरक।
- (५) पुरानी शैली के कुछ प्रयोग।

इनमें से हम प्रत्येक पर संक्षेप में विचार करेंगे—

(१) सामाजिक भूमिका—

नये विचारों के संसार में आया है समी

सही चढ़ाव को उतार से लाया है समी (बेला, पृ० ३६)

ईश्वर भी नये विचारों के संसार में उतर आया है, तब नये समाज के रूप का वर्णन करता है। इसी प्रकार—

बन्दीगृह वरण किया; जनता के हृदय में जिया।
 वहिर्जगत के निर्मम हरने के लिये नियम
 साधन कितना उत्तम किया, जला दिया दिया—(बेला पृ० ४०)

यहां तत्कालीन राजनीतिक गतिविधि पर राष्ट्रप्रेमी के कर्तव्य का चित्रण है। अगली कविता में वे कहते हैं—

भीख मांगता है अब राह पर
 मुट्ठी भर हड्डी का यह नर।
 एक आंख आज के बानिज की
 पराधीन होकर उस पर पड़ी; आदि (पृ० ५३)

सामाजिक जीवन वर्गों में बँटा है। वर्गीय सभ्यता में शोषित वर्ग के ऊपर संवेदनशील होना स्वाभाविक है। ऊपर निरालाजी ने दरिद्र जीवन का चित्र खींचा है।

नयी चेतना के समय सामाजिक मर्यादाओं को नया मोड़ मिलता है। युगीन विषमताओं से घबराया हुआ मन जब कर्मप्रेरित होता है, तब परिवर्तन के लक्षण दिखाई देने लगते हैं। जागरण हो गया है; अतः जो परिवर्तन होगा, उसका दृश्य खींचा है। देखिए—

चढ़ी हैं आँखें जहां की, उतार लायेंगी।
 बढ़े हुआँ को गिराकर संवार लायेंगी। (पृ० ५८)

× × ×
 मुसीबत में कटे हैं दिन,
 मुसीबत में कटीं रातें। (पृ० ६१)

सामाजिक जीवन की असहाय अवस्थाओं पर, अंधविश्वासों के कुरूप परिणामों पर ऊँचनीच-भेदक दृष्टियों के ऊपर प्रहार किया गया है।

(२) राष्ट्रीय चेतना और देश प्रेम—राष्ट्रीय आन्दोलन का मंत्र था कर्मशक्ति का विश्वास तथा देश प्रेम। नया उत्साह भी उत्तरदायित्वपूर्ण प्रेरणा मांगता है। जोशे-जवानी का मतलब भोगविलास नहीं, सामाजिक कर्म को गति देना है। निरालाजी का यही मन्तव्य यहां है—देखिए—

अगर तू डर से पीछे हट गया तो काम रहने दे।
 अगर बढ़ना है अरि की ओर तो आराम रहने दे।
 बिगड़ कर बनते और बनकर बिगड़ते एक युग बीता,
 परी और शाम रहने दे, शराब और जाम रहने दे। (पृ० ६५)

अंग्रेजी साम्राज्यवाद का आदर्श भारतीयों को सम्य करने का रहा है, पर वास्तविकता यह है—

खुला भेद, विजयी कहाये हुए जो,
लहू दूसरे का पिए जा रहे हैं । (पृ० ६०)

समाजवादी दृष्टि—

देश को मिल जाय जो
पूँजी तुम्हारी मिल में है ।
हार होंगे हृदय के
खुलकर सभी गाने नये । (पृ० ६७)

राष्ट्रीयकरण की भावना न केवल सम्पत्ति से है; वरन् प्रत्येक मानव ही राष्ट्र की सम्पत्ति है ।

सारी सम्पत्ति देश की हो
सारी आपत्ति देश की बने,
जनता जातीय वेश की हो
वाद से विवाद यह ठने,
काँटा काँटे से कढ़ाओ । (पृ० ७०)

अदम्य प्रगतिशीलता—

आंख से आंख मिलाओ
उनका डर छोड़ो ।
पार करके नयी दुनिया
अपना घर छोड़ो । (पृ० ८२)

राष्ट्रीय आन्दोलन की गतिविधि में राजनीतिक नेताओं का योगदान कैसा रहा है, इसका एक व्यंग्यात्मक चित्र खींचा गया है । देखिये—

काले-काले बादल छाये, न आये वीर जवाहरलाल ।
कैसे-कैसे नाग मंडलाये न आये वीर जवाहरलाल । (पृ० ४६)

भुखमरी, मंहगाई का चित्र—

मंहगाई की बाढ़ बढ़ आई, गांव की छूटी गाड़ी कमाई,
भूखे नंगे खड़े शरमाये, न आये वीर जवाहरलाल । (पृ० ४६)

(३) वैयक्तिक प्रेम और श्रृंगार—उर्दू शायरी का मूल्यांकन प्रेम और सौन्दर्य की शारीरिक चेतना से किया जा सकता है । यद्यपि दार्शनिक प्रवृत्तियों : इश्क-हकीकी का हाल भी सुनने को मिल जाता है । परन्तु हुस्न के नज़ारे प आशिक की तर्जें अदायें मुस्तलिफ़ रंगों में रंगीन हो जाती हैं । कम से कम मुशायर

का दर्द और बाह-बाह इसी प्रेरणा की द्योतक रही है। निरालाजी ने भी इस प्रकार की कतिपय नज्में-गजलें लिखी हैं।

बसन्त की मधुरिमा में प्रेम की उमंगों से प्रेमी के चित्र की चंचलता को नया उभार मिलता है। अनेक हाव-भाव चेष्टाओं की नूतनश्री से युक्त 'बहार' के दिनों का वर्णन किया जा रहा है। देखिए—

हंसी के तार के होते हैं ये बहार के दिन ।
हृदय के हार के होते हैं ये बहार के दिन ।
निगह रुकी कि केशरों की वेशिनी ने कहा
सुगंभ-भार के होते हैं ये बहार के दिन । (पृ० २३)

* * *

कदम के उठते कहा प्रियतमा ने फूलों से
उरों में तीरों के हूले हैं वे बहार के दिन । (पृ० २४)

प्रेमी और प्रेमिका के विलक्षण क्षणों में अन्तः बाह्य सौंदर्य का रूप—

उनके बाग में बहार, देखता चला गया
कैसा फूलों का उभार, देखता चला गया ।
प्रेम का विकास वह, आँखें चार हो गई,
पड़ा रश्मियों का हार देखता चला गया
मैंने उन्हें दिल दिया, उनका दिल मिला मुझे,
दोनों दिलों का सिगार, देखता चला गया । (पृ० २७)

(४) रहस्यात्मक एवं धर्मपरक—उर्दू-काव्य का दार्शनिक पक्ष सूफिय प्रेम को महत्व देता है, जिसमें सादगी के साथ भाव-व्यंजना की प्रधानता है, आधुनिक हालीन उर्दू-कविताओं में यह प्रवृत्ति देखने को मिलती है। 'इकबाल' की दार्शनिक कविताएँ विश्वकाव्य की अनूठी रचनायें हैं। निरालाजी ने भी उर्दू शैली में कुछ प्रयोग किये हैं।

नये विचारों के संसार में आया है समी ।
सही चढ़ाव को उतार से लाया है समी ।
पड़े थे पैरों तले जो उन्हें किया है खड़ा,
शरीर कैसा कि रग-रग में समाया है समी ।

ईश्वरी शक्ति के दर्शन से जो नया हुआ, उसकी खामी का स्वरूप कैसा होता है, यह बताया गया है—

शराब लोहे की ऐसी पिलाई है उसने,
कि चांदी-सोने की भी आंखों को भोया है समी

तरंगों और बड़ीं और उमंगों और आई,
जवानों, आज बुढ़े-बुढ़े पर छाया है सभी । (पृ० ३६)

सारा जहाँ खुदाए-हुस्न की मस्ती का नजारा है । परन्तु इस नजारे का रहस्य क्या हो सकता है ?

गिराया है जमीं होकर, छुटाया आसमां होकर ।
निकाला, दुश्मने जां; और बुलाया, मेहरबां होकर ।

× × ×
बड़ों को गिरने से रोका, ऐसी आँखें लड़ाई है,
सभी उपमाएँ ले ली हैं, न होकर, निरूपमा होकर । (पृ० ६२)

निरालाजी की उर्दू शैली में विविधता है । कहीं-कहीं अस्पष्टता भी नजर आती है । पुरानी मुशायरा-शैली के भी कतिपय प्रयोग किये गये हैं ।

(५) पुरानी शैली के कुछ प्रयोग—घर से निकलकर जब चार यार-दोस्त जरा शाने मुहब्बत के लहजे में बोलते हैं, तो उर्दू शैली का समा बंध जाता है । निराला ने भी कुछ इस प्रकार की रचनायें की हैं ।

बदली जो उनकी आँखें, इरादा बदल गया ।
गुल जैसे चमचमाया कि बुलबुल मसल गया ।
यह टहनी से हवा की छेड़-छाड़ थी, मगर
खिलकर सुगन्ध से किसी का दिल बहल गया । (पृ० ८८)

× × ×
संकोच को विस्तार दिये जा रहा हूँ मैं;
छन्दों को विनिस्तार दिये जा रहा हूँ मैं—(पृ० ८५)

अतः; 'बेला' संग्रह में उर्दू शैली की कवितायें वैविध्यपूर्ण हैं । इसीलिए 'बेला' की भूमिका में निरालाजी लिखते हैं—“प्रायः सभी तरह के गेय गीत इसमें हैं । भाषा सरल तथा मुहावरेदार है । . . . नई बात यह है कि अलग-अलग बहरों की गजलें भी हैं, जिनमें फारसी के छंद शास्त्र का निर्वाह किया गया है ।”

● निष्कर्ष

इस प्रकार हम देखते हैं कि उर्दू शैली में लिखी गई, निराला की ये समस्त कवितायें उनकी प्रयोगशील अभिरुचि का परिणाम हैं । जिस प्रकार निराला ने अपने काव्य-जीवन के आरम्भ में मुक्त छंद की सृष्टि और उसका प्रयोग किया, तत्पश्चात् संगीतात्मक पदावली में गीत रचना की और इन दोनों प्रकार की काव्य-सृष्टियों में अपूर्व सफलता प्राप्त की है; उसी प्रकार का एक अन्य प्रयोग इन उर्दू शैली

की कविताओं में देखा जा सकता है। परन्तु, यहाँ यह निवेदन करना आवश्यक है कि (उर्दू शैली की निराला की कवितायें वहाँ अधिक सफल हुई हैं, जहाँ उन्होंने हास्य और व्यंग का पल्ला पकड़ा है। 'कुकुरमुत्ता' इसका एक अच्छा उदाहरण है। परन्तु जहाँ निरालाजी उर्दू शैली में किसी गंभीर भाव या वस्तु की योजना करना चाहते हैं, वहाँ उनकी सफलता सांदिग्ध हो जाती है। इसका एक प्रमुख कारण यह है कि निराला का उर्दू गजलों, बहरों और विशेषतः उर्दू भाषा पर वह अधिकार नहीं था, जो हिन्दी और संस्कृत पर था। हास्य और विनोद की रचनाओं में तो सामान्य भाषा भी खप जाती है; क्योंकि वहाँ भाषा के अनधिकृत प्रयोग भी हास्य की सृष्टि में बाधा नहीं डालते। परन्तु जहाँ किसी गंभीर भाव की सृष्टि करनी होती है, वहाँ भाषा पर, उसकी परम्परा का यथेष्ट अधिकार आवश्यक होता है।) यहाँ एक बात और ध्यान देने योग्य है। उर्दू की गजल शैली में प्रगीत काव्य की एकाग्रता आवश्यक नहीं। दो-दो पंक्तियों में भाव और विषय बदले जा सकते हैं। निराला ने भी इस छूट का लाभ देकर उर्दू की गजल-शैली का प्रयोग किया है। अतएव उन्हें भावात्मक समरसता का निर्वाह करने से आप ही आप छूट मिल गई है। परन्तु, उर्दू की गजलों में एक अन्य तत्व भी होता है। वह तत्व है चमत्कार का। शक्ति-वैचित्र्य, अलंकार-योजना और मुहावरों के प्रयोग से इस प्रकार का चमत्कार उर्दू के कवि बराबर लाते रहे हैं। निराला ने भी यह चमत्कार लाने का प्रयत्न किया है। परन्तु यहाँ उन्हें उर्दू के टकसाली कवियों की सी सफलता नहीं मिली। एक तो उर्दू भाषा पर, उसके मुहावरे और चमत्कार शैलियों पर निराला का वैसा अधिकार नहीं था। दूसरे निरालाजी खालिस उर्दू की गजलें न लिखकर हिन्दी, उर्दू, संस्कृत के मिश्रण का रास्ता पकड़कर चले हैं। इससे उर्दू कविता का निखार वे नहीं ला सके हैं। यदि हम यह कहें कि वे उर्दू शैली की काव्य रचना में हिन्दी की कविता कर रहे हैं, तो यह कहना भी अर्धसत्य ही होगा। निराला वास्तव में उर्दू के प्रयोग कर रहे थे। हिन्दी और उर्दू का मिश्रण उन्हें अभिप्रेत न था। परन्तु उर्दू की उनकी जानकारी काफी सीमित थी। इसीलिये उन्हें यह मिश्रण करना पड़ता है। यही कारण है कि ये रचनायें न तो सलीस उर्दू की हैं, और न शुद्ध हिन्दी की। ये हिन्दी में उर्दू और उर्दू में हिन्दी मिलाने का प्रयोग बनकर ही रह गई हैं। जैसा कि ऊपर कहा गया है, हास्य और व्यंग की कृतियों में यह प्रयोग अपेक्षाकृत अधिक सफल हुआ है; परन्तु शेष रचनाओं में यह प्रयोग मात्र रह गया है। एक प्रतिभाशाली कवि की कलम स्थान-स्थान पर अपना शैशिष्ट्य दिखाती है; पर अपरिचित क्षेत्र में प्रतिभा का प्रयोग भी अनुबंर हो सकता है। निराला की उर्दू शैली की काव्य-रचानाएँ भी इस अनुबंरता से रहित नहीं हैं।)

निराला की प्रगतिशील कविताओं का अध्ययन

● निराला के प्रगतिशील काव्य की पृष्ठभूमि

┌ निराला प्रारम्भ से ही विद्रोही कवि रहे हैं। उनकी दृष्टि प्रत्येक दिशा में नवीन आधारों की सृष्टि करती आई है। स्वभावतः उनके काव्य में सामाजिक जीवन के वैषम्यों का भी आकलन है। उनकी जिन रचनाओं में प्रत्यक्ष रीति से सामाजिक वैषम्यों की प्रतिक्रिया व्यक्त हुई है, उन्हें ही उनका प्रगतिशील काव्य कहा जा सकता है। निरालाजी एक सामान्य परिवार में उत्पन्न हुये थे और यद्यपि उनका सम्पर्क और उनका साहित्यिक अध्ययन भारतीय जीवन के महान उन्मायकों और उनकी कृतियों का था, फिर भी वे मूलतः अपनी सामान्य सामाजिक स्थिति से छूट नहीं सके थे। उनके काव्य में इसी कारण जनजीवन का स्वर मुखर हुआ है।) जातीय दृष्टि से निरालाजी ब्राह्मण-समाज की उस श्रेणी से सम्बन्धित थे, जो हीन समझी जाती थी। कान्यकुब्ज (कनौजिया) ब्राह्मणों में बीघे-बिस्वे की परम्परा चली आ रही थी। निरालाजी उस परम्परा की निचली कड़ी से सम्बन्धित थे। मूलतः उनके मानस में इस जातीय भूमिका पर विद्रोह की एक ज्वलंत प्रेरणा मौजूद थी। वे कहा करते थे कि कनौजिया-समाज में वे ही परिवार ऊँचे माने गये हैं, जो अकबर के दरबार में जाकर अपने अनुगत होने का विज्ञापन कर आये थे। जो परिवार दरबार तक नहीं पहुँचे, वे मर्यादा की दृष्टि से हीन माने गए। इसलिये उनका मत यह था कि वास्तव में नीचे समझे जाने वाले ही ऊँचे हैं, क्योंकि उनमें आत्म-सम्मान था और वे राजदरबार में जाकर अपनी तौहीन नहीं करा आए थे। कान्यकुब्ज ब्राह्मण-समाज के लिए उन्होंने 'सरोज-स्मृति' कविता में जो व्यंग्यात्मक उल्लेख किये हैं, उनसे भी इसी तथ्य की पुष्टि होती है। निराला का सामाजिक विद्रोह सम्भवतः इसी वैयक्तिक भूमि पर उनकी जातीय स्थिति का परिणाम है, यद्यपि निराला के विद्रोह में क्रमशः अन्य व्यापक आधारों का भी योग हुआ। निराला अपने व्यक्तिगत उदार संस्कारों और युग की आदर्शोन्मुख विचार-धाराओं के कारण अधिक विस्तृत क्षेत्र में जाकर सामाजिक समानता का पोषण करने लगे थे।

निरालाजी की निजी आर्थिक स्थिति भी सन्तोषजनक नहीं रही है। विशेषकर १९२८ से लेकर ३५-३६ तक वे किसी प्रकार अपना आर्थिक धापन करते रहे हैं। उन पर एक बड़े परिवार का बोझ भी रहा है, जिसकी चर्चा हम अन्यत्र कर चुके हैं।

सन् ३६ के पश्चात् द्वितीय महायुद्ध के दौर में निराला का अर्थ-संकट चरम सीमा पर पहुँच गया था और वे अपनी गार्हस्थिक इकाई को चला सकने में असमर्थ होकर अपने मित्रों और साथियों के साथ रहने लगे थे। अर्थ के बिषम विभाजन के प्रति निराला की प्रतिक्रिया इसी वैयक्तिक भूमिका पर आरम्भ हुई थी। यद्यपि यह वहीं तक सीमित नहीं है। 'जागो फिर एक बार' नाम की कविता में उन्होंने सारे देश की सम्पन्नता का आवाहन किया था। परन्तु देश की आर्थिक स्थिति के वैषम्य दूर नहीं हुये। इसके पश्चात् निराला की व्यंग और विद्रूप-भावना व्यक्त हुई और उन्होंने प्रचलित आर्थिक व्यवस्था के विरोध में अपना स्वर ऊँचा किया।

इसी प्रकार निराला में नारी जाति के स्वातंत्र्य के लिए भी एक बद्धमूल आकांक्षा रही है, जिसका प्रकाशन वे आरम्भ से ही करते आये हैं। नारी की सामाजिक क्रांति को लेकर उन्होंने 'प्रेयसी' और 'वनवेला' कविताओं की रचना की है। 'वनवेला' कविता में उन्होंने राजनीतिक नेताओं के ऊपर भी छींटाकशी की है।

धार्मिक रूढ़ियों को लेकर भी निराला का असंतोष उनकी प्रारम्भिक कृतियों से ही व्यक्त होने लगा था। 'दान' शीर्षक कविता में उन्होंने उन धार्मिकों की भर्त्सना की है, जो बंदरों को पकवान खिलाते और मनुष्यों को फटकार बतलाते हैं।

विदेशी शासन की साम्राज्यवादी नीतियों से समस्त भारतीय जनमानस को क्षोभ हो रहा था। गांधीजी का आन्दोलन आरम्भ होने के पहले ही बंगाल में उग्र राष्ट्रीय चेतना उत्पन्न हो चुकी थी। निरालाजी इसके साहचर्य में आ चुके थे। विदेशी शासन के प्रति निराला की प्रतिक्रिया अन्य राष्ट्रीय कवियों से भिन्न नहीं है। भिन्नता इतनी ही है कि निराला ने राष्ट्रवन्दना के जैसे सुन्दर गीत लिखे हैं, वैसे बहुत कम कवि लिख सके हैं। उनकी राष्ट्रीयता में जातीय-गौरव के साथ भारत के सांस्कृतिक उत्कर्ष की भी झाँकियाँ हैं। विदेशियों की विभेद उत्पन्न कर शासन करने की नीति का आभास 'छत्रपति शिवाजी का पत्र' शीर्षक कविता में मिल जाता है। इसी कारण निरालाजी राष्ट्र को विघटित करने वाले तत्वों के प्रति आरम्भ से ही सावधान दिखाई देते हैं। निराला की प्रगतिशील रचनाओं की यही पृष्ठभूमि है।

● प्रगतिवाद की रूपरेखा

साहित्य जीवन के आत्म-सत्य का उद्घाटन करता है। अतः इसमें मानवीय संस्कारों से लेकर सामाजिक वातावरण की अन्तःप्रक्रिया का रूप निहित रहता है।

जिस प्रकार से समाज विकासवादी सिद्धान्त का प्रतिफल है, उसी प्रकार साहित्य की चेतना भी गतिशील रहती है। साहित्य जीवन के गतिशील तत्वों का गत्यात्मक चित्र होता है, तभी तो प्रगतिशीलता साहित्य का प्राथमिक जीवन्त-तत्व है। शक्तिवान साहित्य किसी भी जाति या राष्ट्र की आत्मचेतना के बल का परिचायक और उसकी ज्ञान परंपरा के निश्चयत्व-बोध का प्रारूप होता है। प्रगतिशीलता, सामाजिक विकासवाद की स्वाभाविक प्रक्रिया और व्यक्तित्व निर्माण की आवश्यक दशा है। अतः साहित्य दोनों ही प्रकार के तत्व का अभिव्यक्ति-स्थल है, जिसमें सामाजिक जीवन को इकाई का रूप मिल जाता है। रेनेवेलेक ने साहित्य और समाज के संबंध पर विचार करते हुये कहा है कि साहित्य, सामाजिक संस्था है। यह भाषा के माध्यम से सामाजिक सृजन है।^१

लेनिन ने सत्य को सामाजिक परिवेश में देखकर कहा कि—'Truth is formed out of totality of all aspects of a phenomenon of reality, and their (mutual) relationships.'^२

अतः, साहित्य अनुकृति है 'जीवन' की और बड़े पैमाने में 'जीवन' एक सामाजिक वास्तविकता है।^३ इस प्रकार सामाजिक प्रतिबिंब के रूप में साहित्य के लक्ष्य का मूल्यांकन उसकी प्रगतिशीलता का परिचय देता रहा है। एक अन्तर्विरोध सामने आता है। जब हम प्राचीन और मध्यकालीन साहित्य की तुलना में आधुनिक साहित्य का अध्ययन करते हैं। आधुनिक साहित्य प्राचीन की अपेक्षा बुद्धि-सत्य के आश्रित होने में ही गर्व समझता है। वह जीवन को भावना से अतिरंजित करने में, आदर्श का पर्दा ढकने में, नीति और धर्म के बंधन से बंधने में कम आरवस्त है। उसका कारण जड़ विज्ञान का विकास और उसकी परंपरा में विश्वास कर लेना ही है। नया समाज प्राचीन की तुलना में एक यथार्थवादी परंपरा की स्थापना कर रहा है। जिसका आधार पदार्थ-विज्ञान है। दो ब्रोल्युबोव ने कहा है—'पदार्थ-विज्ञान के विकास ने हमारे युग में बोध-प्राप्ति की एक नई पद्धति को तैयार और पक्का किया है। एक ऐसी पद्धति को जो अनुभव पर आधारित है, जो अपने तमाम सैद्धान्तिक निष्कर्षों को तथ्यात्मक ज्ञान पर आधारित करती है, किन्हीं स्वप्निल मान्यताओं और धुंधले अनुमानों पर नहीं।'^४

नयी जीवन-दृष्टि सामाजिक अहं को प्रधानता देती है; जिसके द्वारा ही कवि का 'अनुभव' तथ्य को ग्रहण करता है और फिर उसकी पदार्थपरक अभिव्यक्ति

1 Rene wellek and Austin Warren : Theory of Literature, p. 89

2 Quoted by Relp Fox : The Novel and the People, p. 71.

3 Renewelck : Theory of literature, p. 89

४ दर्शन साहित्य और आलोचना पृ०-२१८।

करता है। इसका मूल कारण वैज्ञानिक विकास रहा है। साहित्य में विज्ञान सत्य का प्रादुर्भाव, प्राचीन को चुनौती और नवीन को आशाप्रद साबित हुआ है। १९वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से ही विज्ञान और समाज साहित्यिक दृष्टि बन गये। १७८६ की फ्रांस की क्रान्ति ने स्वतन्त्रता, समानता और भ्रातृत्व-भाव की भावनाओं को बढ़ाया। परिणामतः जनजीवन और साहित्य का निकटतम संबंध स्थापित हुआ। दैनिक जीवनचर्या के वैज्ञानिक-सिद्धान्तों से बँध जाने के बाद चारित्रिक मान्यताओं में यथार्थ का मूल्य बढ़ गया। प्रथम विश्वयुद्ध और द्वितीय महायुद्ध ने परम्परा को ही बदल दिया। फलतः रूस का साहित्य जीवन और समाज को मार्क्सवादी ढाँचे में बांधकर देखता है। इतिहास को द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद की वर्गीय दृष्टि से खंडों में विभाजित करके कार्ल मार्क्स ने सामाजिक विकासवाद को अर्थ की दृष्टि से देखा है। जीवन की उपलब्धि, सामाजिक स्तर पर अर्थ की महत्ता में निहित है। मोक्ष का आदर्श त्याग में नहीं, अर्जन में निहित है जो एकदम भौतिकवादी पदार्थ है। अतः व्यक्ति की चेतना से समाज नहीं, वरन् सामाजिक चेतना से व्यक्तित्व का निर्माण होता है। व्यक्तित्व की अखंडता का अर्थ ही सामाजिक चेतना के अनुभव से है। मार्क्सवादी काव्य दृष्टि समाजशास्त्रीय तत्वों को स्वीकार करती है। पदार्थ-सौन्दर्य पर उसकी मूल्य-निधि टिकी है।

(काडवेल ने कहा है—'Poetry springs from the contradiction between the instincts and experience of the poet.' ^१

प्रवृत्तियाँ पदार्थ तत्व की स्वीकृति में और अनुभव उसके वातावरण की स्वीकृति में ही सृजन करता है। अतः मानव की समस्त चेतनायें समाज से संबद्ध हैं और उसी से पैदा होती हैं। ^२ तभी, उसने कविता की परिभाषा को सामाजिक श्रम के रूप में स्वीकार किया है। वह प्रकृति के साथ होने वाले मनुष्य के संघर्ष का भावात्मक श्रम-सीकर है। ^३)

इस प्रकार समाजवादी साहित्यिक दृष्टि अर्थ को मूल प्रेरक-तत्व स्वीकार करके पूंजीवाद और समाजवाद, शोषक-शोषित, जातीय भेद-भावों में अविश्वास, राष्ट्रीय भावना और क्रान्तिशील तत्वों से युक्त है।

(प्रगतिशील इस अर्थ में है क्योंकि इन विचारकों का कहना है कि पूंजीवादी समाज, रुढ़िग्रस्त परम्परा को विज्ञान-युग का सत्य नहीं बना सकता जिसमें धर्मरूपी अफीम का नशा, पूंजी के अतिरिक्त भोगविलासों को स्वीकार किया जावे। यह क्रान्तिशील तत्वों को अपनाता है। समाज को जनतन्त्र की विधि सिखाता है।

1 Christopher Caudwell : Illusion and Reality, p. 160

2 Ibid. p. 248

3 Christopher Caudwell : Illusion and Reality, p. 110

मानवतावाद के क्रियात्मक रूप को साकार करता है, तथा मानवमात्र के सौख्य की सामग्री जुटाता है। अतः 'प्रगति' के समस्त गुण इसमें हैं। इसी प्रकार समाजवादी साहित्यिक दृष्टि भी सिद्धान्तों से बँध गई है।

1 अतः प्रगतिशील या प्रगतिवादी साहित्यिक शैली, जो यथार्थवादी पद्धति पर सामाजिक तथ्यों के उद्घाटन को बल देती है, जिसमें सामयिक और प्रचारात्मक उद्देश्य निहित हैं, जिसकी प्रक्रिया में ध्वन्सात्मकता या सामाजिक परिवर्तन की प्रेरणायें हैं, जिसके साधन-स्वरूप, व्यंग्य और नारे, वीभत्स चित्र तथा कारुणिक दृश्योद्घाटन, गरीबी, भूख, असमानता आदि तत्व हैं, तथा जिसका लक्ष्य अर्थ-समानता के आधार पर मानवीय सौख्य के सौन्दर्य की अभिव्यक्ति करना है। इसमें सामाजिक वास्तविकता के प्रति सहानुभूति का आदर्श है। अंग्रेजों की साम्राज्यवादी नीति से भारत की आर्थिक दशा बहुत ही खराब थी। सामाजिक उद्धार के प्रयत्न हो रहे थे। राष्ट्रीय स्वतन्त्रता की प्राप्ति के हेतु वैज्ञानिक साधनों से परिचित होना भी आवश्यक था। नयी चेतना का जनमानसी स्वरूप-स्थापन भी जरूरी था। अतः भारतीय संस्कृति में महत्वपूर्ण परिवर्तन के चिन्ह दिखाई देने लगे। आस्था टूटने लगी। भारतीय जीवन निराधार भूमि पर रास्ता खोजने लगा। लक्ष्यों में भिन्नता आ गई। निर्वाह-पटी का रंग बदल गया। आर्थिक संकट और साम्राज्यवादी-नीति ने भारतीय समाज में भुखमरी, काहिली, विषाद-विपन्नता, अंधविश्वास, भाग्यवादिता, नशाखोरी आदि सामाजिक दोष उत्पन्न कर दिये थे। इनसे छुटकारा पाना आवश्यक था। इस छुटकारे का साधन न तो धर्म था न संतोष। अतः क्रान्ति के तत्व दिखाई देने लगे। राष्ट्रीय आन्दोलन की राजनीति में आर्थिक दृष्टि को प्रधानता दी गई। सामाजिकों को उनकी दयनीय अवस्था का भान कराया गया। रूस की क्रान्ति का आदर्श उपस्थित किया गया। इन सबका परिणाम यह हुआ कि भारत का संवेदनशील कलाकार इससे अनभिज्ञ न रह सका। साहित्यिक सर्जना में क्रान्ति-दर्शी आदर्शों का पालन किया जाने लगा और ऐतिहासिक एवं भौतिकवादी दृष्टिकोण से वैज्ञानिक सौन्दर्य-शास्त्र की विवेचना प्रस्तुत की गई। इन सब कारणों का भावात्मक परिणाम यह हुआ कि मध्यवर्गीय संवेदना में उत्तेजना आ गई। डा० डी० पी० मुकर्जी ने इसको आधुनिक भारतीय संस्कृति की मुख्य विशेषता कहा है।¹ हिन्दी साहित्य में इस विचारधारा का क्रमागत रूप १९३६ से दिखाई देता है। यद्यपि आर्थिक दृष्टि से सामाजिक अवस्था का मूल्यांकन भारतेन्दु-युग से आरम्भ हो

1. Sentimentalizing of all manner is one of the chief characteristics of modern Indian Culture. In religion it is an anodyne, in politics, it is nationalism, in Economics, it is utopia-mongering, in poetry it is lyricism with a dash of the moral and the spiritual.'

Dr. D. P. Mukerji : Modern Indian Culture, p. 117

गया था। यथार्थवादी-शिल्प में हास्य-व्यंग्य विनोद के साथ-साथ गंभीर समस्याओं पर भी दृष्टिपात भारतेन्दु तथा उनके सहयोगी कवियों ने किया था। हिन्दी के प्रगतिवादी युग की मूल भूमिका इस युग में मिल जाती है। फिर भी सिद्धान्ततः कोई सैद्धान्तिक क्रम नहीं खोजा जा सकता। प्रगतिवादी दृष्टिकोण का सिद्धान्तपक्ष भले ही १९३६ के बाद निखरा हो, परन्तु भारतीय समाज का खुला चित्र भारतेन्दु के विशाल साहित्य में देखने को मिलता है। वहां साम्राज्यवादी प्रतिहिंसा का क्षोभ है, यहां समाजवादी आदर्श को पनपाने की लालसा।

अतः शोषण और बंधन से मुक्ति की लालसा के निमित्त 'बामपंथ के साहित्यकारों ने संगठित होकर १९३६ में एक प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना की।' प्रेमचन्दजी इसके सभापति हुये। इसका लक्ष्य ही समाजवादी आदर्शों के द्वारा वर्ग-वाद को मिटाकर आर्थिक समानता के गीत गाना था। इससे प्रभावित होकर प्रोढ़ विद्वान राहुल सांकृत्यायन, प्रकाशचन्द्र गुप्त, शिवदान सिंह चौहान, रामविलास शर्मा, भगवतशरण उपाध्याय, यशपाल, रांगेय राघव, अमृतराय, शिवमंगलसिंह 'सुमन', नागार्जुन आदि ने साहित्य की प्रत्येक विधा पर प्रगतिवादी प्रयोग किए। सुमित्रानन्दन पंत और निरालाजी के परवर्ती काव्य में इसका प्रभाव स्पष्ट रूप से लक्षित होता है।

● निराला काव्य की प्रगतिशीलता का स्वरूप

[निराला का काव्य उनके विकासशील व्यक्तित्व की प्रतिकृति है, जिसमें उनकी वैयक्तिकता और सामाजिकता का विद्रोह-पक्ष प्रबल रहा है। वैयक्तिकता की सृजन-स्थली उनकी सांस्कृतिक देन है तथा सामाजिकता की उत्सभूमि उनकी प्रभाव-ग्रहण-शीलता में खोजी जा सकती है। उनके विद्रोही व्यक्तित्व में अनुभव की तीव्रता रही है, तभी तो वे एक साथ दार्शनिक, चिन्तक और सामाजिक तथ्यों के उद्घाटक के रूप में रह सके हैं। उनके पूरे काव्य-विकास में उनका 'अध्यात्मबल' खो नहीं गया है, फिर भी प्रगतिशील कवि के रूप में उन्होंने उल्लेखनीय कार्य किया है। उनके प्रगतिशील काव्य का आरम्भ 'रूपाभ' के प्रकाशन से होता है। "निराला सन् १९३८ ई० से ही इस दिशा में आये। 'रूपाभ' का संपादन सुमित्रानन्दन पंत करते थे, जिनको निरालाजी जैसे श्रेष्ठ प्रगतिशील साहित्यिक का सहयोग प्राप्त हुआ।"]

'बेला' काव्य-संग्रह का प्रकाशन सन् १९४३ में हुआ, परन्तु उसकी कविताएँ, गजलें, १९३३ के आसपास तक की हैं। यह उनकी प्रगतिशील काव्य-दृष्टि का प्रथम उन्मेष है। इसके बाद 'नये पत्ते', 'कुकुरमुत्ता' आदि में उनकी प्रगतिशील विचार-

१ डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी : हिन्दी साहित्य-पृ० ४९६।

२ गिरीशचन्द्र तिवारी : कवि निराला और उनका काव्य साहित्य, पृ० ५३।

धारा का विकसित रूप मिलता है । इसके साथ ही निरालाजी की कथा-सृष्टि का मूलरूप ही यथार्थ-शैली की प्रघात्रता में व्यक्त हुआ है, यद्यपि उनमें रोमान्स के छुट-पुट दृश्यों की भी भरमार है । उन्होंने 'बिल्लेसुर बकरिहा', 'चमेली', 'काले कारनामे' आदि में व्यंग्यात्मक रूप से सामाजिक विषमता और परिणामों को देखा है ।

निरालाजी इस क्षेत्र में सबसे बड़े क्रांतिदर्शी के रूप में सामने आते हैं । परंतु उनकी यह क्रांति सिद्धांतों से बद्ध नहीं थी । उसमें सामाजिक प्रवृत्तियों को उस अर्थ में उकसाने का उपदेश नहीं था जैसा अन्य प्रगतिवादी कवियों में है । स्वच्छंद-सामाजिक-चित्र की कल्पना यहाँ भी उनकी विशेषता कही जा सकती है । प्रश्न पूछा जा सकता है कि निरालाजीकी प्रगतिशील दृष्टि में मार्क्सवादी सिद्धांतों का कितना प्रभाव पड़ा है ? यह नहीं भूलना चाहिये कि वे व्यक्तिवादी दर्शन की भूमिका से सामाजिक भूमि स्पर्श करते हैं । उनमें विद्रोही प्रवृत्ति थी, जिसने बंधन-मुक्ति के आदर्श को स्वीकार किया था । अतः निराला मार्क्स या किसी भी समाजवादी सिद्धांत के प्रयोगकर्त्ता नहीं हैं । सामाजिक वैषम्य से मुक्ति को तत्कालीन भारतीय समाज की आवश्यकता मानकर ही उसको अभिव्यक्ति दी है । प्रेमचन्द की भाँति सामाजिक विषमता के कटु परिणामों पर सहृदयात्मक दृष्टि डालना ही निरालाजी का कार्य था, जिसमें व्यंग्य और उपहास की शैली अपनाई गई । निराला का समाजवाद अधिक विस्तृत है, जिसमें समानता का आदर्श स्वतंत्रता के वगैर हो ही नहीं सकता ।

‘निराला’ की प्रगतिशील कविताओं में ‘समाज’ की अवस्थाओं को चित्रित किया गया है, जिसके आवरण में भारतीय जीवन को गति मिल रही थी । निराला ने जातीय मतभेदों, छोटे बड़े की भावनाओं, अंधविश्वासों, छल-कपट, स्वार्थ, आर्थिक कष्टों, दरिद्रता, भुखमरी, चारित्रिक दोष, आदि को वर्णित किया है । हास्य व्यंग्यों के सहारे तीखे प्रहार भी किये हैं । इस प्रकार सामाजिक-यथार्थ की अभिव्यक्ति में निराला का काव्य समस्याओं का इतिहास बनकर भी समस्या-समाधान के साधनों और परिणाम पर दृष्टि डालता है । साधन रूप में उनके काव्य का प्रमुख स्वर स्वतंत्रता, समानता और भ्रातृत्व में गुंजित होता है जो क्रांति के तत्व रहे हैं तथा परिणाम के क्षेत्र में वे मानवतावादी सहानुभूति के पक्षपाती दिखाई देते हैं । उनकी सहानुभूति केवल बौद्धिक या आदर्शवादी नहीं है । उसका एक क्रियात्मक पक्ष भी है जो उनके चरित्र से संबंधित रहा है ।

प्रगतिशील कविताओं के अध्ययन के पूर्व हमें यह भी देख लेना चाहिये कि उनके रचना-साहित्य में युगीन सत्य के उद्घाटन और भारतीय परिस्थितियों को प्रधानता मिली है या किसी वैचारिक आदर्श को ? केवल खंडन ही है या निर्माण का स्वरूप भी ? खंडन की प्रवृत्ति को क्या साम्यवादी क्रियात्मकता का आदर्श दिया गया है ? और मंडन में क्या किसी नीति को स्वीकार करते हैं ? उनके काव्य की शिला

पर खुदे शब्दों में 'सामाजिक अनुभव' की विशाल योजना मिलती है, जिसमें युग सत्य को भावात्मक अतिरेक से बचाने का प्रयत्न किया गया है। बौद्धिक आदर्श का पालन किया गया है।

✓ **प्रगतिशील कविताओं का वर्गीकरण :** निराला की प्रगतिशील कविताओं को देखने पर यह स्पष्ट होता है कि उनकी ऐसी रचनाएँ अधिकतर सामाजिक विषयों को लेकर हैं। इनमें से कुछ में उद्बोधन का भाव है। अधिकांश व्यंग्य-प्रधान हैं। कुछ में यथार्थवादी शैली की नियोजना है। कुछ गीत हैं। अनेक रचनाओं में सामाजिक स्थिति के साथ आर्थिक और राजनीतिक स्थितियाँ भी जुड़ी हैं। विशुद्ध साम्यवादी भावना की भी कुछ रचनाएँ हैं। इसी सामाजिक प्रगतिशीलता के एक अंग के रूप में निरालाजी की नारी-उत्थान संबंधी रचनाएँ भी आती हैं। धार्मिक रूढ़ियों के प्रति व्यंग भी यद्यपि सामाजिक क्षेत्र के अंतर्गत ही हैं, परन्तु उसे हम स्वतंत्र स्थान भी दे सकते हैं।

निराला की प्रगतिशील कविताओं का दूसरा वर्ग राजनीतिक क्षेत्र से संबंधित है। इसके अंतर्गत अनेक रचनाओं में राजनीतिक गतिविधि पर व्यंग्यात्मक उल्लेख है। कुछ में राष्ट्रीयता का पोषण है और कुछ राष्ट्रगीत हैं।

निराला के प्रगतिशील काव्य का तीसरा वर्ग आर्थिक वैषम्य को लक्षित करने वाला है। इसीके अंतर्गत पूंजीवादी सभ्यता पर व्यंग भी किये गये हैं। कहीं-कहीं आर्थिक स्थितियों का यथार्थवादी चित्र भी आया है। दैन्य और विपन्नता के दृश्य भी दिखाए गये हैं।

निराला के प्रगतिवाद का एक अन्य स्वरूप वह भी है, जिसमें मानवतावादी भूमिका अपनाई गई है। न केवल भारत में बल्कि समस्त विश्व में मानव समाज जिन व्याधियों का शिकार है, उनका चित्रण करते हुए निराला ने उनसे मुक्ति का उपाय भी बताया है। मानव समाज की दयनीय दशा पर करुणा भरे उद्गार भी हैं और कहीं-कहीं ईश्वर से प्रार्थना है कि इस मानव - समाज का उद्धार किया जाय। किन्तु यहाँ भी अधिकांश रचनाएँ व्यंग्यात्मक हैं। इस प्रकार जो रचनाएँ निराला की इस काल की सामान्य मनोभावना की परिचायक हैं, उनका सामान्य मनोभाव आक्रोश का ही रहा है इसीलिये व्यंग्य की प्रधानता है।

इस प्रकार हम 'निराला की प्रगतिशील कविताओं का वर्गीकरण' निम्नलिखित छः भागों में कर सकते हैं।

१. प्रगतिशील सामाजिक कविताएँ।
२. नारी उत्थान संबंधी प्रगतिशील रचनाएँ।
३. धार्मिक व्यंग, रूढ़ियों का दिग्दर्शन।

४. राजनीतिक उद्बोधन, राष्ट्रगीत और राजनीतिक व्यंग्यात्मक कविताएँ ।
५. आर्थिक विषमता को लक्षित करने वाली प्रगतिशील रचनाएँ ।
६. प्रगतिशील रचनाओं का मानवतावादी पक्ष ।

उपर्युक्त वर्गीकरण में से प्रत्येक वर्ग पर अलग-अलग विचार करने के पूर्व हम यह उल्लेख कर देना चाहते हैं कि यद्यपि यह निराला के परवर्ती काव्य से ही संबन्धित वर्गीकरण है, परन्तु जैसा कि हम इस अध्याय की पृष्ठभूमि में लिख आये हैं, निराला आरंभ से ही प्रगतिशील विषयों की रचनायें करते हैं । यह उल्लेख किया जा सकता है कि इस विषय की उनकी आरंभिक कवितायें अधिक आवेगपूर्ण हैं । उनमें क्रांति का स्वर भी मुखर है । जब कि इन परवर्ती रचनाओं में व्यंग्य-शैली की ही प्रधानता है । इससे यह सूचित होता है कि अपने अनुभवों की वृद्धि के साथ निराला में सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक वैषम्यों की अधिक गम्भीर प्रतिक्रिया है और वे अपने आरंभिक आशावाद और क्रांति-भावना को छोड़ कर बहुत कुछ यथार्थोन्मुख हो गये हैं । इस सामान्य अन्तर के निर्देश के पश्चात् अब हम उनकी परवर्ती काल की प्रगतिशील रचनाओं को ऊपर निर्देश किये गए ६ वर्गों में रखकर देखना चाहेंगे । अपने इस निबन्ध की सीमा में हम उनकी सभी रचनाओं को नहीं ले सकते । इसलिए कुछ चुनी हुई कविताओं को लेकर ही विचार करेंगे ।

(१) प्रगतिशील सामाजिक कवितायें—इसके अन्तर्गत सर्व प्रथम 'अनामिका' में प्रकाशित हुई 'तोड़ती पत्थर' कविता पर, जो सामाजिक वैषम्य से संबन्धित है, विचार करेंगे । 'अनामिका' की 'तोड़ती पत्थर' ४-४-३७ की रचना है । हिन्दी संसार ने १९३६ में प्रगतिवादी सिद्धान्तों पर लखनऊ अधिवेशन में विचार-विमर्श किया था । अनेक कवियों ने छुटपुट प्रयोग भी किये । निराला के साहित्य में आर्थिक दृष्टि के यह प्रगतिवादी प्रयोग बहुत पहले से ही मिलते हैं । परन्तु उनकी 'तोड़ती पत्थर' रचना में समाजवादी विचारधारा का स्पष्ट रूप देखने को मिलता है ।

वह तोड़ती पत्थर

देखा मैंने उसे इलाहाबाद के पथ पर

वह तोड़ती पत्थर ।

प्रस्तुत कविता में दुबारा 'वह तोड़ती पत्थर' कहा गया है जिससे लक्षित होता है कि कविता का लक्ष्य ही यह है जो सहानुभूति के रूप में व्यक्त होता है । विषय की लक्ष्य-योजना को पहले से ही ध्वनित करके कवि ने अपने मन की कठुणा भरी दृष्टि का परिचय दिया है ।

विषय के वातावरण को प्रस्तुत करने के लिए कवि कहता है—

- (१) नहीं छायादार,
पेड़ वह जिसके तले बैठी हुई स्वीकार;
(२) श्याम तन, भर बधा यौवन
नत नयन, प्रिय कर्म-रत मन,
(३) गुरु हथौड़ा हाथ,
करती बार बार प्रहार,
(४) चढ़ रही थी घूप
गर्मियों के दिन
(५) उठी झुलसाती हुई लू,
रुई ज्यों जलती हुई भू,
..... वह तोड़ती पत्थर ।

इलाहाबाद जैसे शहर की भूमिका में पत्थर तोड़ती हुई गरीब स्त्री की हालत पर जिस वातावरण का निर्माण हुआ है, वह समाज के आर्थिक अभाव का ढाँचा प्रस्तुत करता है। श्रम के महत्व में विश्वास की तीव्र आकांक्षा भी प्रस्तुत की गई है। श्रम और समस्या के मिलन-बिंदु पर निर्मित वातावरण कविता में नई आशा का संचार करता है जिसमें अभावों से मुक्ति पाने की इच्छा तथा ऐश्वर्य के प्रति ईर्ष्यालु तितिक्षा भी मौजूद है।

देखते देखा, मुझे तो एक बार
उस भवन की ओर देखा, छिन्न-तार;
× × ×

देखा मुझे उस दृष्टि से
जो मार खा रोई नहीं

× × ×
एक क्षण के बाद वह काँपी सुघर,
ढुलक माथे से गिरे सीकर,
लीन होते कर्म में फिर ज्यों कहा—

“मैं तोड़ती पत्थर ।”

कविता की ध्वनि में कर्म की महत्ता के आदर्श को प्रस्तुत किया गया है, जो अभावसूचक स्थितियों में मात्र संबल है। मूल तो अर्थ ही है पर समाधान क्रांतिकारी नहीं। क्रांति है काहिली और आलस्य से छुटकारा पाने की।

‘तोड़ती पत्थर’ कविता निराला की विचारधारा को सामाजिक-कर्म के रूप में प्रस्तुत करती है।

‘बेला’ की कतिपय गजलों में निरालाजी ने सामाजिक प्रगति-शीलता के भाव संजोये हैं। उदाहरण के लिए—

भेद कुल खुल जाय वह
सूरत हमारे दिल में है
देश को मिल जाय वो
पूँजी तुम्हारी मिल में है ।’

इस कविता में निरालाजी ने नई समाज-रचना का संकेत दिया है। वे कहते हैं कि मेरे मन में वह नक्शा है जिससे सामाजिक विषमता दूर हो सकती है और देश उन्नति के मार्ग पर चल सकता है। यदि मिलों में लगी हुई पूँजीपतियों की पूँजी देश को मिल जाय, पूँजी का राष्ट्रीयकरण हो जाय तो देश का नक्शा बदल सकता है। उस बदली हुई स्थिति में जो नये साम्यवादी गाने गाये जायेंगे, वे सबके हृदयों के हार होंगे। नई महफिल का राज (नये समाज का आमोद-प्रमोद) सबको प्राप्त होगा। अभी हमारी आंखें, विलासमय शृंगार में डूबी हुई हैं; पर नई जीवन-व्यवस्था आने पर आज का नारी-सौंदर्य और भी निखर पड़ेगा। क्रांति की आंधी आने पर बहुत से पेड़ टूटेंगे, पूँजीपतियों का खात्मा होगा। इस क्रांति के साथ खिलवाड़ नहीं किया जा सकता। यह वह बिच्छू का बिल, है जिसमें हाथ डालना ठीक न होगा।

इसी प्रकार ‘बेला’ की एक और गजल—

बिना अमर हुए यहाँ काम न होगा।

बिना पसीना आये नाम न होगा । (पृ० ८८)

में श्रम की महत्ता का प्रतिपादन किया गया है। ‘बेला’ की एक और कविता है—

“यह जीने का संग्राम जो करते हुए चले,

पहले के रहे दाम जो भरते हुए चले ।” (पृ० ९४)

इसमें निरालाजी ने वर्तमान समाज के साधनहीन वर्गों की कठिनाइयों का उल्लेख किया है। आज का जीवन-संग्राम न्याय की भूमिका पर नहीं चल रहा है। लोगों को पुराना ऋण चुकाना पड़ रहा है (अर्थात् अपने पूर्वजों की काहिली का भार ढोना पड़ रहा है)। यहाँ सामान्य लोगों को अनेक प्रकार के प्रहार सहने पड़ते हैं। पर सम्पन्न वर्गों के लोभ के कारण साधारण लोगों को जीत कर भी हारना पड़ता है।

‘बेला’ में आई—“जल्द-जल्द पैर बढ़ाओ आओ आओ” (पृ० ७०) निराला के साम्यवादी दृष्टिकोण को व्यक्त करती है। सामाजिक-व्यवस्था और आर्थिक समस्या को साम्यवादी क्रांति के आदर्श में प्रस्तुत किया गया है जिसमें दीन-

हीनों, किसानों के महत्व की स्थापना, जाति-पाँति, छुआछूत का समाप्त होना और सम्पत्ति का राष्ट्रीयकरण आदि प्रश्नों को उठाया गया है। सामाजिक प्रगति से नई गति का मंत्र दिया गया है, जिस पर बढ़कर समानता का आदर्श स्थापित हो सके। कविता का लक्ष्य पूँजीवादी, सामंतवादी व्यवस्था को तोड़ने का है। इसमें क्रांति का आदर्श है, जिसकी पूर्ति अभावग्रस्त समाज करेगा।

जल्द-जल्द पैर बढ़ाओ, आओ आओ।

आज अमीरों की हवेली,
किसानों की होगी पाठशाला,
घोबी, पासी, चमार, तेली
खोलेंगे अँधेरे का ताला,
एक पाठ पढ़ेंगे, टाट बिछाओ।^१

यह तो कविता का सामाजिक और आर्थिक पक्ष है। इसके आगे राष्ट्रीय और देश की व्यवस्था और सामाजिक दायित्व पर विचार किया गया है। आर्थिक समानता की पूर्ति के बाद जो सम्पत्ति होगी, वह व्यक्तियों की निजी न होकर देश की होगी। प्रजातंत्र का लक्ष्य जन-सुलभ सरकार में ही संभव होगा। स्थापना के प्रयत्नों में जो आपत्तियाँ आयेंगी, वह भी देश की होंगी, अर्थात् व्यक्ति का मूल्य देश के निमित्त होगा। तभी तो जनता जातीय आदर्श की पूर्ति कर सकेगी।

“सारी सम्पत्ति देश की हो
सारी आपत्ति देश की बने
जनता जातीय देश की हो
कांटा कांटे से कढ़ाओ।”

इस प्रकार हिन्दी के प्रगतिवादी दृष्टिकोण को यह नव-परिवर्तन का आदर्श प्रस्तुत करती है।

● नये पत्ते

‘नये पत्ते’ संग्रह में निरालाजी अपनी प्रगतिशील भावनाओं में और भी मुखर हुए हैं। इस संग्रह के हास्य और व्यंग अधिक खुले हुए हैं और रंग बिरंगे भी हैं। श्री डा० कमलाकान्त पाठक ने ठीक ही कहा है कि “नये पत्ते” में सामान्य जनता का जागरण दिखाना और जीवन का यथातथ्य व्यंग्यात्मक निरूपण करना साधारणतः निरालाजी का इष्ट रहा है। उन्होंने प्रगति को छायावाद की प्रतिक्रिया के रूप में गृहीत किया और समाज, धर्म, राजनीति, राष्ट्रीयता, ऐतिहासिकता, वर्ग-चेतना

आदि को इसी दृष्टि से उपस्थित किया । निरालाजी ने बोलचाल की सरल और प्रवाहमयी उर्दू मिश्रित भाषा अपनाई तथा हास्य-व्यंग्य प्रधान नई अभिव्यंजना शैली का आविष्कार किया । अवश्य ही प्रगतिवादियों की भाषा शैली से यह बहुत पृथक् नहीं है ।^१ यहाँ हम 'नये पत्ते' की कतिपय प्रगतिशील कविताओं पर विचार करेंगे । 'मास्को डायलाग्स' में स्वयं साम्यवादियों का मजाक किया गया है । ऐसे साम्यवादी जो नई से नई रूसी पुस्तक लिये घूमते हैं पर जो अपनी देशभाषा का एक वाक्य भी शुद्ध नहीं लिख सकते । 'रानी और कानी' कविता में कवि ने माता की कल्पना-प्रधान भावनाओं पर व्यंग्य किया है, जो यथार्थ को नहीं देखती । यह प्रतीकात्मक कविता भी कही जा सकती है, जिसमें कानी देश की एकांगी दशा की परिचायक है और कानी की मां देश की नेता-मंडली की । जो अपनी पुत्री का कानापन नहीं देखना चाहती; भविष्य में देश का क्या होगा, इसकी ओर जिसका ध्यान नहीं है । 'खजोहरा' कविता रवीन्द्रनाथ की कल्पना और सौंदर्य-प्रधान 'विजयिनी' शीर्षक कविता का व्यंग्य है । रवीन्द्रनाथ ने जहाँ अनिष्ट सौंदर्य-सम्पन्न नारी का चित्रण किया है, वहाँ निरालाजी खजोहरा लगी हुई बुआ का चित्र उपस्थित करते हैं । इस कविता के कुरूप और भोड़े चित्र स्वयं निराला की स्वच्छंदतावादी प्रवृत्तियों के विरोध में खड़े हैं । 'महँगू महँगू रहा' कविता में निरालाजी ने राजनीतिक नेताओं पर व्यंग्य किया है । वे नेता जो उच्च मध्यम वर्ग के हैं, जनता से दूर हैं फिर भी जनता का नेतृत्व करना चाहते हैं । दूसरी ओर महँगू है और लुकुवा है जो सर्वहारा-वर्ग के प्रतिनिधि हैं । महँगू कहता है कि स्वराज्य मिल जाने पर भी क्या होगा ? यदि सामाजिक ढाँचा नहीं बदला, यदि संपत्ति कुछ ही लोगों के हाथ में रही, तो महँगू महँगू ही बना रहेगा ।

'गर्म पकौड़ी' कविता में निरालाजी ने आधुनिक नैतिक उच्छृंखलता पर व्यंग्य किया है । गर्म पकौड़ी के पीछे आज के युवक दीवाने हो रहे हैं । उनके नैतिक मानदंड गिर गये हैं ।

(२) नारी उत्थान से सम्बन्धित प्रगतिशील कविताएँ:—यों तो निरालाजी का समस्त काव्य नारी की स्वतन्त्रता का पोषक है और जहाँ कहीं उन्होंने नारी की चर्चा की है,—'खजोहरा' आदि २-३ रचनाओं को छोड़कर-उसकी प्रसन्न और शोभाशालिनी मुद्राओं का ही अंकन किया है । परन्तु प्रगतिशील दृष्टि से भी उन्होंने कुछ कविताएँ लिखी हैं । उनमें से एक 'बह तोड़ती पत्थर' नारी से ही सम्बन्धित है, उसका उल्लेख हम ऊपर कर चुके हैं । उनकी 'बनबेला' कविता का भी स्वच्छन्दतावादी स्वरूप हम देख चुके हैं । इस कविता में निराला ने विवाह-सम्बन्धी सामाजिक रूढ़ियों का भी अतिक्रमण किया है । स्वयं अपनी कन्या सरोज

के विवाह का जो स्मृति-चित्र उन्होंने 'सरोज-स्मृति' कविता में अंकित किया है, वह विद्रोही भावनाओं से संयुक्त है। द्वितीय 'अनामिका' में सन् १-३-३८ की लिखी 'वे किसान की नई बहू की आँखें' कविता में निरालाजी ने सीधी-सादी ग्रामीण नारी की सौंदर्य-छवि का जो वर्णन किया है, उसमें भी नारी के प्रति उनकी उज्ज्वल भावना का परिचय मिलता है। 'सम्राट् एडवर्ड अष्टम के प्रति' रचना में जो सन् ३६ के अन्त में लिखी गई थी, कवि ने नारी-प्रेम के उस आदर्श की प्रतिष्ठा की है, जो साम्राज्यों को भी तिलांजलि दे सकती है। सम्राट् एडवर्ड का 'स्तवन' नारी के प्रति उनकी ऐकांगिक निष्ठा के कारण ही किया गया है।

(३) धार्मिक व्यंग्य : रूढ़ियों का दिग्दर्शन :— सामाजिक जीवन में ही धर्म की रूढ़ियाँ व्याप्त रहती हैं। निराला ने इन रूढ़ियों के विरुद्ध स्थान-स्थान पर आवाज उठाई है। उनकी एक कविता 'आ रे, गंगा के किनारे' 'बेला' संग्रह में प्रकाशित हुई है। इसकी कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

पंडों के सुघर सुघर घर हैं
तिनके की टट्टी के गठ हैं
यात्री जाते हैं, श्राद्ध करते हैं
कहते हैं, कितने तारे।

यहां धार्मिक अंधविश्वास पर प्रच्छन्न व्यंग्य है। 'दान' शीर्षक कविता में और भी तीखा व्यंग्य है। उसका उल्लेख हम ऊपर कर आये हैं।

(४) राजनीतिक कविताएं—निराला ने राजनीतिक गतिविधियों पर भी काफी कर्कश व्यंग्य किये हैं। लोकगीत की धुन में लिखी गई उनकी एक कविता इस प्रकार है—

काले काले बादल छाये, न आये वीर जवाहरलाल
कैसे कैसे नाग मंडलाये, न आये वीर जवाहरलाल।
बिजली फन के मन की काँधी, कर दी सीधी खोपड़ी औंधी,
सर पर सरसर करते धाये, न आये वीर जवाहरलाल।

यहां भारतीय परिस्थितियों के मेघाच्छन्न हो जाने पर भी जवाहरलाल मदद को नहीं आते, यह व्यंग्य है। इसी कविता में आगे लिखा है—

महंगाई की बाढ़ बढ़ आई, गांठ की छूटी गाढ़ी कमाई,
भूखे-नंगे खड़े शरमाये, न आये वीर जवाहरलाल।
कैसे हम बच पाये निहत्थे, बहते गये हमारे जत्थे,
राह देखते हैं भरमाये, न आये वीर जवाहरलाल।

देश की आर्थिक दशा खराब होती जा रही है। लोग अन्न-वस्त्रहीन हो रहे हैं। फिर भी नेतागण किसी प्रकार की सहानुभूति नहीं दिखाते। स्पष्ट ही यह राजनीतिक परिस्थिति पर व्यंग्य है।

व्यंग्यात्मक कविताओं के अतिरिक्त निरालाजी ने देश के प्राकृतिक सौन्दर्य और उसके सांस्कृतिक महत्व पर अनेकानेक गीत लिखे हैं। 'भारत जय विजय करे' शीर्षक उनका राष्ट्रगीत अत्यधिक प्रसिद्ध है।

सन् ४२ की एक अन्य रचना इस प्रकार है—

‘भारत ही जीवन धन, ज्योतिर्मय परम-रमण,
सर-सरिता वन-उपवन।

तपः पुंज गिरि-कन्दर, निर्झर के स्वर पुष्कर,
दिक् प्रान्तर मर्म-मुखर, मानव मानव-जीवन।
घोत-धवल ऋतु के पल, संचारण चरण चपल,
कारण-सवारण, बल्कल-धारण, सुकृतोच्चारण।
नहीं कहीं जाड़-जघन्य, नहीं कहीं अहमन्य,
नहीं कहीं स्तन्य-वन्य, चिन्मय केवल चिन्तन।’

इस गीत में भी स्वदेश की महिमा का अंकन ओजस्वी स्वरों में किया गया है। ८

(५) आर्थिक विषमता को लक्षित करने वाली रचनाएँ:—निरालाजी ने अपने परवर्ती काव्य-युग में आर्थिक विषमता पर मार्मिक व्यंग्यात्मक कविताएँ लिखी हैं। यह क्षेत्र निराला के निजी अनुभवों का भी रहा है। उनका संवेदनशील मानस गरीबों की विपन्नता पर द्रवित हो गया है। ‘बेला’ संग्रह की ‘भीख मांगता है अब राह पर’ (पृ० ५३) कविता में कथानक का स्वरूप सामाजिक दृष्टि के विविध पहलुओं और भिखारी के संकेत पर खड़ा किया गया है। इस कविता में मुख्य समस्या एक है जो अर्थाभाव की प्रतीक कही जा सकती है; परंतु जिस पर समाज की प्रतिष्ठित और मान्य स्वीकृतियाँ उससे तुलना करके संतोष पाती हैं। निर्बल के अभावों से सबल को संतोष होता है। अर्थ-दारिद्र्य से विलासों की तुलना होती है, मूल्यांकन होता है; इस प्रश्न को इस कविता में रखा गया है।

कविता के कथानक का प्रेरक तत्व है—

भीख मांगता है अब राह पर
मुट्ठी भर हड्डी का यह नर।

इसी से पूरी सामाजिक दृष्टि का लगाव है।

(१) एक आँख आज के बानिज की
पराधीन होकर उस पर पड़ी;

- (२) कहा कला ने कल का यह वर
 (३) एक आँख कारीगर की गड़ी,
 कहा आदमी की यह है छड़ी ।
 (४) एक आँख पड़ी महाराज की ,
 कहा देख ली है स्तुति-ब्याज की,
 (५) एक आँख तरुणी की जो अड़ी,
 कहा यहाँ नहीं कामना सड़ी,
 इससे मैं हूँ कितनी सुन्दर ।'

इसी प्रकार की एक कविता 'अणिमा' में आई है जो भावात्मक न होकर व्यंग्यात्मक अधिक है। इसका शीर्षक है 'चूँकि यहाँ दाना है ।'

'चूँकि यहाँ दाना है' इसमें पूँजीवादी सभ्यता पर व्यंग्य करते हुए वे कहते हैं कि पैसे पर ही धर्म पनपता है, प्रेम पल्लवित होता है, कविता पुष्पित होती है। (उनका आशय सच्चे कवियों से नहीं, चारणों से है)। माँ बाप का प्रेम भी अर्थाश्रित होता जा रहा है। पैसे वाले के घर उसके साले और ससुर भी रहने लगते हैं। इस प्रकार पैसा कितनी सामाजिक विकृतियों का कारण बनता है, इसका निदर्शन किया गया है। कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

चूँकि यहाँ दाना है
 इसीलिए दीन है, दीवाना है ।
 लोग हैं, महफिल है,
 नग्में हैं, साज है, दिलदार है और दिल है,
 शम्मा है, परवाना है ।

× × ✕
 अम्मा है, बप्पा है,
 झापड़ है और गोलगप्पा है,
 नौजवान मामा है और बुड्ढा नाना है,
 चूँकि यहाँ दाना है ।^१

पूँजीवादी सभ्यता पर एक और अन्य व्यंग्य 'गीतगुंज' पुस्तक में 'मानव जहाँ बैल घोड़ा है' शीर्षक रचना में देखा जाता है। यह सन् ५२ के अन्त की रचना है। वर्तमान आर्थिक वैषम्य के कारण मनुष्य के तन-मन में, उसकी कथनी और करनी में महान अन्तर आ गया है। जीवन में कृत्रिमता आ गई है। मनुष्य बर्बर हो चला है। यह अर्थवादी सभ्यता सावन के फोड़े की तरह मवाद से भर गई है।

१ निराला : बेला—पृ० ५३ ।

२ निराला : अणिमा : पृ० १०३ (रचना ४३)

कदाचित् इसी आर्थिक सम्यता से त्रस्त होकर निरालाजी इस संसार को अंधकार कहते हैं—

“गहन है यह अंधकार;
स्वार्थ के अवगुंठनों से
हुआ है लुण्ठन हमारा ।”

जड़ता की दीवार सबको घेर रही है । लोगों में एक दूसरे के प्रति सौहार्द नहीं रह गया । संसार की शोभा नष्ट हो गयी है । सूर्य, चंद्रमा, तारे अस्तगत हो गये हैं । एक रुद्र-गर्जन हो रहा है । इससे त्राण पाने के लिए निराला देह की वह नयी चेतना चाहते हैं, जो उन्हें मानवजीवन के सच्चे आदर्शों से संलग्न रख सके ।

इसी भाव की एक और कविता सन् ५० में लिखी गई थी । जो ‘अर्चना’ में प्रकाशित हुई है—

आशा आशा मरे,
लोग देश के हरे ।

कवि कहता है कि सच्चाई का नाम नहीं रह गया । झूठ का सर्वत्र बोलबाला है । भूख-प्यास से लोगों के होंठ सूख गये हैं । आशा दृष्टिगत नहीं होती ।

आर्थिक विषमता से सम्बन्धित निराला की प्रसिद्ध ‘कुकुरमुत्ता’ कविता के सम्बन्ध में हम अन्यत्र लिख चुके हैं । अतएव यहाँ उसकी पुनरावृत्ति अनावश्यक है । आर्थिक वैषम्य को इंगित करने वाली कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

अबे, सुन बे, गुलाब,
भूल मत जो पाई खुशबू, रंगोआब,
खून चूसा खाद का तूने अशिष्ट,
डाल पर इतराता है, कैपीटलिस्ट ।^२

(६) मानवतावादी पक्ष :—अन्त में हम प्रगतिशील रचनाओं के अन्तर्गत निराला के मानवतावादी पक्ष की कुछ चर्चा करेंगे । वास्तव में प्रगतिशील भावना सामाजिक और राष्ट्रीय होते हुए भी अन्ततः मानवतावाद में परिणत होती है । एक सुखी विश्व का स्वरूप, जिसमें समस्त मनुष्य स्नेह और समानता के रेशमी पाश में बँधे हों, जहाँ ईर्ष्या, द्वेष, ऊँच नीच आदि के भेदभाव समाप्त हो गये हों, वहीं मानव की प्रगतिशील भावना विराम लेती है । इस स्थिति के अभाव की सूचना निराला अनेकशः देते हैं ।

१ निराला : अणिमा, पृ० ६५ (रचना ४३)

२ निराला : कुकुरमुत्ता—पृ० ३ ।

कहीं वे व्यंग्यपूर्वक कहते हैं—

जुँट बेल का साथ हुआ है ।

कुत्ता पकड़े हुये जुआ है ।^१

(इस कविता का स्वर मानवतावादी है। यद्यपि मनुष्य के पास सांसारिक साधन बढ़ गये हैं, सम्पन्नता आ गई है, फिर भी उसकी भावनायें उतनी ही गंदली हैं, जितनी असभ्य समाज में हो सकती हैं। मानव समाज द्वेष-जर्जर हो गया है। उसमें संघर्ष का ताप चढ़ा हुआ है। उसके शरीर को शीतल करने वाले चेतना-जल का कहीं पता नहीं है। यह चेतना-जल ही मानव-समाज के सभी (चेतनारूपी जल के) विकारों को धो सकता है।

निरालाजी मानव-समाज के उन्नयन के लिए ईश्वर से प्रार्थना भी करते हैं। संसार की दीन दशा पर प्रभु की कृपा उतरे, संसार तनमन से हरा भरा हो। तुम्हारा दिव्य आलोक उसमें व्याप्त हो जाय। मनुष्य का सिर वैभव को देखकर आतंकित न हो। वह स्थिर होकर सदैव असंगतियों का विरोध करता रहे। यह शक्ति तुम्हारी अनपायनी कृपा से ही प्राप्त हो सकती है। इसी भाव को लेकर अणिमा में वे कहते हैं—

दलित जन पर करो कृपा ।

दीनता पर उतर आये

प्रभु तुम्हारी शक्ति, अरुणा ।

× × ×

देख वैभव न हो नत सिर,

समुद्धत मन सदा हो स्थिर,

पार कर जीवन निरन्तर

रहे बहती भक्ति-वहणा ।^२

● निराला के प्रगतिशील काव्य में व्यंग्य-हास्य का आधार

सन् १९३५-३६ के पश्चात् निराला की काव्य-रचना में एक ओर हास्य-व्यंग्य की प्रधानता हो गई है और दूसरी ओर अत्यन्त भावात्मक आत्मनिवेदनपरक गीतों का निर्माण होने लगा है। ध्यान देने की बात यह है कि निराला की आरंभिक कविताओं में प्रगतिशीलता और क्रांति के तत्त्व व्यंग्यात्मक शैली में व्यक्त नहीं हुए हैं। इस अध्याय के आरंभ में हमने उनके प्रगतिशील काव्य की जो पृष्ठभूमि दी है, उस दौर की अधिकांश कवितायें, प्रवाह और उद्वेग के माध्यम से प्रगतिशील तत्वों

१ निराला : आराधना, गीत—७२ (रचना—१५-१२-५२)

२ निराला : अणिमा, पृ० १४ (रचना—३६)

को भी व्यक्त करती है। हम उनके 'बादलराग' की रचनाओं को लें, अथवा नारी स्वातंत्र्य सम्बन्धी 'वनवेला' जैसी कृतियों को लें, तो देखेंगे कि उनमें सामाजिक प्रगतिशीलता की भावना कम नहीं है, पर उनकी शैली व्यंग्यात्मक नहीं है। इसी प्रकार उनके आरम्भिक गीतों में और उनके परवर्ती गीतों में भी विषय की समानता रहते हुए भी भाव और शैली का अन्तर दिखाई देता है। उनके आरम्भिक गीत अधिक उल्लासपूर्ण हैं, जब कि उनके परवर्ती गीत करुणा की छाया से समन्वित हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि निराला-काव्य का प्रथम युग अपनी मूल चेतना में एक प्रकार का और उनका परवर्ती-काव्य दूसरे प्रकार का है। प्रगतिशील रचनाओं में व्यंग्य और हास्य के प्रयोग निराला की मनःस्थिति के द्योतक हैं। आत्मविश्वास और क्रांत्युन्मुखता के ओजस्वी स्वर व्यंग्य और विनोद की अपेक्षा क्षीण ध्वनियों में परिणत हो गये हैं। इस बदले हुए रूप को कुछ लोग निराला की यथार्थवादी प्रवृत्ति का आधार मानते हैं। वैसी स्थिति में यह भी मानना पड़ेगा कि निराला की इस यथार्थोन्मुख प्रवृत्ति में शक्तिमत्ता की कमी होगई है। कहा जा सकता है कि निराला के आरम्भिक काव्य में आये हुए प्रगतिशील तत्व उनकी भावुकता के परिचायक हैं जब कि उनकी परवर्ती कविता में व्यंग्य और हास्य के माध्यम से आई हुई सामाजिक और आर्थिक विषमताओं के चित्र अधिक अनुभवप्रवण हैं। यह तो सच है कि कवि क्रमशः आशा और आस्था की भूमि से हट कर अपने अनुभवों के आधार पर अधिक व्यावहारिक हो गया है और इसी व्यावहारिकता और मानसिक कटुता की परिचायक उनकी हास्य-व्यंग्य की शैली है जो उसकी प्रगतिशील रचनाओं में प्रयुक्त हुई है। यह भी संभव है कि निराला इन कविताओं द्वारा पाठकों में अधिक क्षोभ की भावना उत्पन्न करना चाहते हैं। इसीलिए व्यंग्यों के विषाक्त अस्त्र का प्रयोग करते हैं। जो कुछ हो, इतना तो निश्चित है निराला के प्रगतिशील काव्य के इस उत्तरार्द्ध में सामाजिक अनुभवों की अधिक गहरी अनुभूति है। यद्यपि इनमें मुक्ति का वह स्वर नहीं, जो उनकी आरम्भिक कविताओं में है।

● प्रगतिशील काव्य की भाषा

राष्ट्र-गीतों और कतिपय अन्य सांस्कृतिक रचनाओं को छोड़कर निराला की अधिकांश प्रगतिशील कविता चलती हुई भाषा में लिखी गई है। भावानुरूप भाषा के सिद्धांत-मर्म को जानने वाले कवि निराला के लिए यह स्वाभाविक था कि वे हास्य-व्यंग्य विनोद की शैली को अपनाने के पश्चात् तदनु रूप भाषा का भी अनुसंधान करते और यही उन्होंने किया भी। यह तो स्पष्ट है कि राष्ट्रीय उत्कर्ष के व्यंजक गीतों में बोलचाल की भाषा काम नहीं दे सकती। परन्तु अन्य अवसरों पर जहां निराला किसी गंभीर आधार को लेकर नहीं चल रहे, भाषा का यह सरल और सामान्य स्वरूप अधिकाधिक लोगों के पास पहुँचने में सहायक भी हुआ है। निरालाजी की

‘कुकुरमुत्ता’ कविता अपनी भाषा की सफाई और खानगी के कारण ही इतनी लोक-प्रिय हुई है। संस्कृतनिष्ठ भाषा के साथ मुहावरों और लोकोक्तियों का प्रयोग संभव नहीं होता। क्योंकि मुहावरे और लोकोक्तियाँ साधारण जन-समाज की वस्तुयें हैं, जो संस्कृत की गरिमा में अनुस्यूत नहीं हो सकतीं। काव्य में मुहावरों और लोकोक्तियों का चमत्कार स्वतः एक उपलब्धि है और निराला अपनी परवर्ती भाषा में इन्हें यथेष्ट मात्रा में ला सके हैं। कदाचित् निराला का आदर्श हिन्दी के ऐसे स्वरूप का निर्माण करना था जो उर्दू के मुहावरेदार प्रयोगों से होड़ ले सके और इस कार्य में उन्हें आंशिक सफलता भी मिली है। अपनी परवर्ती काव्य-रचना में इस प्रकार के भाषा-प्रयोग के द्वारा भी निरालाजी काव्य को यथार्थोन्मुख साँचे में ढाल सके हैं।

● नवजागरण की भूमिका और निराला का प्रगतिशील काव्य :

एक मूल्यांकन

निराला भारतीय नवजागरण के जागरूक कवि है। इनमें राष्ट्रीय आन्दोलन और पतनोन्मुख रूढ़िवादी परम्पराओं का विकासात्मक गतिचित्र दिखाई देता है जिसमें प्रथम की स्वीकृति और द्वितीय की अस्वीकृति दिखाई देती है। निराला के नवजागरणशील साहित्य में आस्था है, परन्तु वह आस्था संघर्षरत विकासवाद के सहारे अपनाई गई है।

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से निराला का प्रगतिवाद भारतीय समाज की असहाय आस्था के बल पर खड़ा हुआ है। निराला ने प्रगतिवाद को नवजागरण की समस्या के रूप में स्वीकार किया है। उसको बन्धन से बांधकर समाजवादी या मार्क्सवादी प्रचार नहीं किया है।

शिवमंगलसिंह ‘सुमन’ के ‘हिल्लोल’, ‘जीवन के गान’, ‘प्रलय-सृजन’, काव्य-संग्रहों में पूँजीवादी अर्थनीति की विषम वेदना है। परन्तु इनमें निराला की भांति विषय-विस्तार और सामाजिक व्यंग्यात्मकता नहीं। निराला समाज के व्याख्याता के रूप में सामने आते हैं। केदारनाथ अग्रवाल की रोमानी प्रगतिशीलता में कोई महान योजना नहीं दिखाई देती। उनकी कुछ कवितायें, मजदूरों की अवस्थाओं का यथार्थ चित्र उपस्थित करती हैं। नागार्जुन तो एकदम कम्प्यूनिस्ट धरातल से काव्य-प्रयोग करते हैं, जिनमें लक्ष्य की एकांगिता है। लक्ष्य तक पहुँचने की विविध-विस्तार योजना नहीं, जो निराला के प्रगतिवादी काव्य में दिखाई देती है। नरेन्द्र शर्मा, अचल, राम-विलास शर्मा आदि प्रगतिवादी कवि समाजवादी प्रचार की ध्यान में रखकर कवितायें संजोये रहे हैं। इनमें निराला की काव्यदृष्टि का विस्तार नहीं है। निराला का प्रगतिवाद, सामाजिक विविधता का सजीव व्यंग्यरूप है। हिन्दी के प्रगतिवादी कवियों में निराला का स्थान इसी कारण शीर्षस्थ है। क्योंकि उनमें राष्ट्रोत्थान, नारी-जागरण, जातीय गौरव तथा क्रांति के साथ-साथ यथातथ्य स्थितियों का रूप-निर्देशन

किया गया है। समस्यानुकूल भाषा-प्रयोग तथा विषयानुकूल पदावली का व्यवहार निराला के इस प्रकार के काव्य में मिलता है। ध्वंस का अर्थ यदि बन्धन-मुक्ति से लिया जाय, नये निर्माण के लक्ष्य से लिया जाय, तो निराला का प्रगतिशील दृष्टि-कोण अधिक व्यापक है। प्रगतिवादी काव्य के बारे में जार्ज थाम्पसन ने ठीक ही कहा है—

“मुक्त मानव-समाज के ये नये गीत अपने स्वरूप में राष्ट्रीय भावना-संपन्न होंगे। उनका वस्तुपक्ष समाजवादी होगा। वे अनेक राष्ट्रों के समवेत स्वर में मनुष्य-मात्र के उस आल्हाद का गान करेंगे जो रचनात्मक श्रम से उपलब्ध होता है। यह नई परिवर्तित वस्तु अपने में इतनी गंभीर होगी कि उसके आधार पर बनी हुई कविता नये प्रकार की कविता कही जा सकेगी। ठीक उस तरह जैसे सम्य समाज का कवि किसी मसीहा या जादूगर से भिन्न होता है, क्योंकि वह सत्य और कल्पना के सम्बन्धों को समझता है। उसी प्रकार नवीन समाजवादी कवि वर्गीय समाज के कवि से इस अर्थ में भिन्न होगा कि वह अपनी प्रेरणा के उन स्रोतों को समझ सकेगा जो सामाजिक जीवन से निःसृत हैं। अपने अन्य मानव-साथियों के साथ वह संसार को बदलने का लक्ष्य पूरा करेगा और जैसे-जैसे यह कार्य आगे बढ़ेगा, वैसे-वैसे कवि में और सामाजिकों में अन्तर मिटता जायगा और अंत में सारे मनुष्य कवि बन जायेंगे।”

जब सब लोग सम्पन्नता के गीत गायेंगे, तब प्रगतिशील काव्य की सौंदर्य-दृष्टि का सामान्य रूप या सर्वजन-सुलभ रूप दिखाई देगा। इस प्रकार की काव्य-प्रक्रिया में वर्ग-रहित समाज की प्रतिबिम्ब-योजना रहेगी, जिसकी प्रभावोत्पादकता में

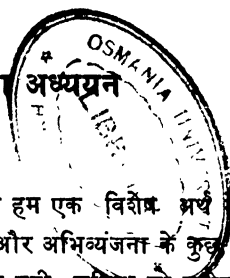
-
- 1 “These new songs of the liverated peoples of the earth will be national in form, socialist in content. They will express in a chorus of many nations men’s common joy in creative labour. This change of content is so profound that the poetry it produces will be a new kind of poetry. Just as the civilised poet differs from the prophet or magician in being conscious of his illusion as an illusion, so the socialist poet differs from the poet of class-society in his understanding of the social process from which his inspiration springs. Together with his fellow men he works to transform the world, and, as that work progresses, the distinction between him and them will disappear and all men will be poets again.”

—George Thompson : Marxism and Poetry, P; 68

एक तटस्थता भी आ जायगी। अभी वह समय नहीं आया है; इसलिये निराला के प्रगीतशील स्वरों में व्यंग्य और वेदना का प्राधान्य है।

निष्कर्षतः निराला के प्रगतिशील साहित्य में सामाजिक विषमता को विस्तार से, जनवादी प्रभाव-क्षमता के विद्रोहशील कार्यरूप में, देखा गया है। यह हिन्दी-प्रदेश की जनता-जनार्दन का यथार्थरूप लक्षित करता है; साथ ही टीका-टिप्पणी से भरी दृष्टि में लक्ष्य की अप्रत्यक्ष इच्छा को भी व्यक्त करता है जो अर्थ की दृष्टि से समानता और मानवता की दृष्टि से भ्रातृत्व-भाव की पूरक है।

निराला की प्रयोगशील कविताओं का अध्ययन



● प्रयोगशीलता का अर्थ

इस अध्याय में प्रयोगशील शब्द का प्रयोग हम एक विशेष अर्थ में कर रहे हैं। हिन्दी की नवीनतम कविता में शैली, शिल्प और अभिव्यञ्जन के कुछ बहुत ही नए और अनोखे प्रकार अपनाए जा रहे हैं। इस नयी कविता को प्रयोगशील या प्रयोगवादी कविता कहते हैं। काव्य में प्रयोगशीलता से इन दिनों अभिव्यक्ति के अनोखेपन का आशय लिया जाता है। जिस काव्यकृति को पढ़कर हमारा ध्यान उसके भावोत्कर्ष की ओर न जाकर शैलीगत चमत्कारों की ओर चला जाय, उसे ही प्रयोगशील कृति कहा जा सकता है। प्रयोगशीलता वस्तु की नहीं होती, उसके अभिव्यञ्जन की होती है। इसका यह आशय भी लिया जा सकता है कि प्रयोगशील रचना में कथ्य की अपेक्षा कथनशैली प्रमुख हुआ करती है।

साहित्यिक इतिहास में ऐसी घड़ियां आती हैं, जब लेखक और कविगण चमत्कारपूर्ण प्रकाशन को ही काव्य का प्रधान आकर्षण मानने लगते हैं। उनके लिये इस बात का महत्व नहीं होता कि वे क्या कहना चाहते हैं? शायद कहने के लिये उनके पास अधिक कुछ रहता भी नहीं। उनका ध्यान इस बात पर रहता है कि वे किस प्रकार अपनी बात कहते हैं। इसी कारण उनकी काव्य-रचना कथन-प्रकारों का वैचित्र्य लेकर आती है। सामान्य रूप से कहा जा सकता है कि प्रयोगशील काव्य वह है जिसमें रस की अपेक्षा अलंकार को, भाव की अपेक्षा प्रकाशन को, रमणीयता की अपेक्षा चमत्कार को प्रधानता दी गई है।

हिन्दी में सबसे प्रथम प्रयोगशील कवि केशवदास कहे जा सकते हैं। इन्हें इस बात की चिंता नहीं थी कि वे रामकथा के मार्मिक अंशों को लेकर 'रामचन्द्रिका' का निर्माण करें। उनके लिए कथा के सभी अंश एक-से हैं, यदि वे उसमें विलक्षण उक्ति की योजना कर सकें। उनके लिये वास्तविक चरित्र-सृष्टि की भी विशेष उपयोगिता नहीं है। उनके महाकाव्य 'रामचन्द्रिका' में किसी चरित्र विशेष का निर्माण नहीं हुआ, बल्कि अनेक स्थलों पर अस्वाभाविक रूप से चरित्र-रेखाएँ अंकित की गयीं। वन जाते हुए राम के द्वारा अपनी माताओं को दी गई नैतिक शिक्षा और

उपदेश अस्वाभाविक वस्तु-चित्रण का एक अच्छा उदाहरण है, परन्तु ऐसे चित्रणों से उनका काव्य भरा पड़ा है। केशवदास की प्रयोगशीलता इस बात में है कि वे अपने पांडित्य के प्रदर्शनार्थ कृत्रिम श्लोकों और चमत्कार-प्रधान अलंकारों को बिना औचित्य का विचार किए ला-ला कर रखते जाते हैं। ऐसे कवि की रचना को पाठक किस दृष्टि से देखते हैं ? यह तो निश्चय है कि उन्हें काव्य-रसास्वाद की स्थितियाँ और अवसर मिलते ही नहीं। हाँ काव्य-विनोद, बुद्धि-कौशल और पांडित्य-परिचय के अवसर बार-बार मिलते हैं। पुरानी शब्दावली में कहें; तो कह सकते हैं कि ऐसे कवियों का कलापक्ष उनके वस्तु या भाव-पक्ष पर हावी हो जाता है।

केशव के पश्चात् हिन्दी के रीतिकाल के अनेकानेक कवि छोटे-छोटे मुक्तकों में, अभिव्यंजना का चमत्कार भरने में व्यस्त रहे हैं। कुछ समीक्षक इन कवियों की रचनाओं को रसात्मक भी कहा करते हैं; पर यहाँ रस शब्द का प्रयोग एक हल्के अर्थ में किया गया मानना पड़ता है। दो या चार पंक्तियों की स्फुट रचना में रसात्मकता लाना संभव ही नहीं है। विशेषकर जब ऐसी रचनाओं का लक्ष्य दरबार के रसिकों से वाहवाही प्राप्त करना हो। बिहारी के अधिकांश दोहे छोटी सीमा में संपूर्ण चित्र देने का कौशल तो प्रकट करते हैं, परन्तु इस कारण उन्हें रसात्मक कहना काव्यसंवेदन के प्रति हल्की दृष्टि रखना ही कहा जायगा। रीतिकालीन अधिकांश कवियों की काव्य-कृतियाँ शैलीप्रधान होने के कारण प्रयोगशील ही कही जायेंगी।

संस्कृत के काव्यशास्त्र की दृष्टि से देखा जाय, तो वहाँ काव्य के तीन प्रमुख भेद माने गये हैं—(१) ध्वनि-काव्य, (२) गुणीभूत व्यंग और चित्रकाव्य। इनमें से चित्रकाव्य तो पूर्णतः चमत्कार और बुद्धि-कौशल पर आधारित है। संस्कृत का प्रहेलिका साहित्य, हिन्दी के कूटपद और उलटवांसियाँ एक प्रकार के चित्रकाव्य ही हैं। गुणीभूत रचनाओं में भी भावात्मक प्रेरणा की अपेक्षा बौद्धिक तत्त्वों की विशिष्टता रहा करती है। इसी कारण किसी भाव-विशेष की व्यंजना गौण रूप से हो पाती है और कविता अपनी रसात्मक भूमि से वंचित रह जाती है। यदि इस शास्त्रीय दृष्टि से देखा जाय तो ध्वन्यात्मक काव्य को छोड़कर शेष दोनों प्रकार के काव्य चमत्कारप्रधान, बौद्धिक या प्रयोगशील ही कहे जायेंगे। इस प्रकार प्रयोगशीलता का अर्थ शास्त्रीय भूमिका पर यह होगा कि जो कृतियाँ प्रमुखतः भावात्मक नहीं हैं, तथा जिनमें उक्ति-कौशल, बौद्धिकचमत्कार और क्लिष्ट कल्पनाओं की प्रचुरता है, वे किसी न किसी रूप में प्रयोगशील रचनायें हैं।

वर्तमान युग में प्रयोगशीलता का एक वाद ही चल निकला, जिसे प्रयोगवाद कहा जाता है। इसके अविभावक भी यह स्वीकार करते हैं कि आज का कवि अपनी उलझी हुई संवेदनाओं को, जिनके मूल में अनेक प्रकार की यौन-वर्णनायें रहा करती हैं, प्रकाशित करने के लिए अधूरे वाक्यांशों, सीधी टेढ़ी लकीरों, उल्टे-सीधे मुद्रणों के

माध्यम से अपने वाक्यों में प्रेषणीयता लाने का जो उपक्रम करते हैं, वही उनके प्रयोग हैं और वही उनकी प्रयोगशील कविता है ।^१

इससे यह सूचित होता है कि प्रयोगशीलता, वास्तव में शिल्प और अभिव्यंजना की वस्तु है । उलझी हुई संवेदनाओं को प्रकाशित करने के लिए ये शिल्पगत प्रयोग किये जाते हैं । उलझी हुई संवेदनार्य भी शास्त्रीय विवेचन की दृष्टि से अधूरी, अपूर्ण या अविकसित संवेदनार्य हैं और वह वास्तव में वाक्य संवेदना नहीं कही जा सकती । उलझी संवेदनाओं का सारा काव्य गुणीभूत व्यंग्य का काव्य ही कहा जायेगा ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि साहित्यिक प्रयोगशीलता या प्रयोगवादिता के विषय में प्राचीन और नवीन मतों में कोई विशेष अन्तर नहीं है । कला में जो कुछ प्रयत्न साध्य है, अस्पष्ट है । चाहे वह वस्तु पक्ष की अस्पष्टता हो या शैली की अस्पष्टता हो, प्रयोगशील ही कहा जायेगा । प्रयोगों के द्वारा उलझी संवेदनाओं को प्रेषणीय बनाने का प्रयत्न भी प्रयोगमात्र ही है, क्योंकि उलझी संवेदनार्य कवि की स्वाभाविक कल्पना और उसकी मौलिक भाव-चेतना में बाधास्वरूप ही रहेंगी और ऐसी मनः स्थिति में वह वास्तविक काव्य-रचना कर ही नहीं सकेगा । ऐसे अवसर पर उसे जिन कृत्रिम साधनों का प्रयोग करना पड़ता है, वे निश्चय ही बौद्धिक प्रयोग हैं और इसलिए अकाव्यात्मक हैं ।

आधुनिक प्रयोगशील कवियों का एक और भी दल है जो अपने को वास्तविक प्रयोगवादी मानता है । ये काव्य में प्रयोगों को साधन नहीं, साध्य मानते हैं । और इस प्रकार शिल्प को ही काव्य का सर्वस्व घोषित करते हैं । अज्ञेय जैसे प्रयोगशील विचारक प्रयोगों को केवल साधन मानते हैं । किन्तु नकेनवादी लेखकों ने इस दृष्टि का विरोध किया है और यह संस्थापित करना चाहा है कि काव्य-व्यापार वास्तव में प्रयोगों का ही व्यापार है । आधुनिक प्रयोगशीलता के इन दोनों सम्प्रदायों में ऊपरी

- १ प्रयोगवाद के एक पुरस्कर्ता अज्ञेयजी का वक्तव्य है—“प्रयोग सभी कालों के कवियों ने किये हैं, यद्यपि किसी एक काल में किसी विशेष दिशा में प्रयोग करने की प्रवृत्ति होना स्वाभाविक ही है । किन्तु कवि क्रमशः अनुभव करता गया है कि जिन क्षेत्रों में प्रयोग हुए हैं, उनसे आगे बढ़कर अब उन क्षेत्रों का अन्वेषण करना चाहिए जिन्हें अभी नहीं छुआ गया है या जिनको अभेद्य मान लिया गया है । भाषा को अपर्याप्त पाकर विराम संकेतों से, अंकों और सीधी तिरछी लकीरों से, छोटे-बड़े टाइप से, सीधे या उलटे अक्षरों से, लोगों और स्थानों के नामों से, अधूरे वाक्यों से, सभी प्रकार के इतर साधनों से कवि उद्योग करने लगा, कि अपनी उलझी हुई संवेदना की दृष्टि को पाठकों तक अक्षुण्ण पहुंचा सके ।”

अन्तर चाहे जो कुछ हो, पर मूलतः ये दोनों सम्प्रदाय काव्य के शिल्पपक्ष और उसकी अभिव्यंजना सम्बन्धी योजनाओं को ही काव्य का प्रमुख आधार मानते हैं।

● निराला-काव्य की प्रयोगशीलता

जब हम निराला-काव्य की प्रयोगशीलता का विचार करते हैं, तब हमारे समक्ष काव्य-निर्माण की वे रूपरेखायें प्रस्तुत होती हैं, जो प्रयोगशीलता के संकीर्ण अर्थ में समाहित नहीं हो सकतीं। ऊपर हमने प्रयोगशील काव्य में शिल्पगत विशेषता को केन्द्रीय स्थान दिया है। पर निराला का प्रयोगशील काव्य केवल शिल्प की भूमिका पर नहीं परखा जा सकता। न हम उसे अभिव्यंजना या शैली प्रधान-काव्य के रूप में देख सकते हैं।

✓ निराला काव्य की क्रांतिकारी भूमिका, में प्रखर भावोद्वेगों का बाहुल्य है। ऐसी स्थिति में निराला-काव्य के प्रयोग उनके उद्दाम व्यक्तित्व और भावचेतना से संबद्ध हो जाते हैं। निराला का सबसे पहला प्रयोग तो मुक्तछन्द ही है। मुक्तछन्द वास्तव में अभिव्यंजना की शैली मात्र नहीं है। वह निराला के काव्य-व्यक्तित्व और भावा-वेग का वाहक साधन है। अतएव यदि हम मुक्तछन्द को निरालाकाव्य का प्रयोगशील पक्ष मानते हैं, और उस प्रयोगशीलता के अन्तर्गत मुक्तछन्द के रूपात्मक वैशिष्ट्यों की जांच करते हैं, तो हमें वह जांच मूलतः निराला के भावपक्ष को केन्द्र में रख कर ही करनी पड़ेगी। इस प्रकार निराला की प्रयोगशीलता काव्य के शैली पक्ष का अतिक्रमण करती है और उसके वस्तुपक्ष में केन्द्रित हो जाती है। यह निराला का प्रथम काव्यप्रयोग है।

✓ निरालाकाव्य के द्वितीय प्रयोग उनके संगीतात्मक गेय पद हैं, जिनमें उन्होंने संगीत और काव्यकला का अप्रतिम संयोग कराया है यदि हम एक दृष्टि से देखें, तो काव्य रचना में संगीत भी एक प्रयोग ही है। और उस संगीत की सिद्धि के लिये जिन गेय छन्दों का आविष्कार किया गया, वे भी निराला के नये प्रयोग हैं।) परन्तु प्रश्न यह है कि इन गेय गीतों में प्रयोगात्मक कला के निर्देशन प्रधान हैं, अथवा वे गीतों के भावात्मक सौंदर्य को प्रकट करने के साधनमात्र हैं। इन गीतों में जो बिंब योजनायें हैं, वे प्रमुख हैं या इन बिम्बों को संयोजित करने वाला शिल्प प्रधान है ? निराला-काव्य के अनुशीलन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं, कि निराला की शिल्पा-त्मक प्रयोगशीलता उनके काव्य के वस्तु पक्ष का अथवा भावपक्ष का अनिवार्य प्रति-फलन है। उनके शिल्प को स्वतंत्र रूप से परखना संभव नहीं। जिस प्रकार कतिपय भावों की प्रखरता और प्रवेग को व्यक्त करने के लिए निराला ने मुक्तछन्दों का प्रयोग किया है, उसी प्रकार कतिपय भावों के माधुर्य को प्रत्यक्ष करने के लिए उन्होंने संगीत कला का सहारा लिया।

— भाषा की भूमिका पर भी निराला प्रयोगशील रहे हैं। उन्होंने अपने काव्य के अनुरूप कथन-प्रणालियों को नये-नये रूप दिये हैं। शृंगारी गीतों में उनकी भाषा

सामासिक और अर्थगांभीर्य से भरी हुई है। परन्तु आगे चलकर उनकी गीत भाषा में अधिक सरलता और प्रासादिकता आ गई है। इसी प्रकार उनकी मुक्तछन्द की भाषा जहाँ 'बादलराग' जैसी रचनाओं में संस्कृत शब्दावली से युक्त होकर मंद्र गम्भीर घोष की सृष्टि करती है वहीं 'शिवाजी का पत्र' जैसी रचनाओं में वार्तालाप की भाषा के अधिक निकट पहुँच जाती है।

इस प्रकार निराला-काव्य के अन्य प्रयोगों पर दृष्टि डालने से हमें यही प्रतीत होता है कि उनकी विविध प्रकार की शैलीगत प्रयोगशीलता मार्मिक होती हुई भी स्वतंत्र शिल्प का उदाहरण नहीं है। वह एक प्रकार से निराला-काव्य-प्रयोग का अभिन्न अंग बन कर आई है। रीतिकालीन कवियों अथवा आधुनिक प्रयोगशील कवियों की अभिव्यंजनायें जिन चमत्कारों पर आश्रित हैं, उनसे निराला की काव्याभिव्यंजना बहुत कुछ भिन्न है।

परन्तु निराला के इन मौलिक प्रयोगों से आगे बढ़ कर जब हम उनके परवर्ती काव्य की भूमिका पर पहुँचते हैं, तब हमें यह प्रतीत होता है, कि निराला की काव्य-रचना में कमशः अभिव्यंजना के नये चमत्कार आने लगे हैं और उनकी परवर्ती रचना में प्रयोगशीलता की मात्रा बढ़ने लगी है। हम तो यहाँ तक कह सकते हैं कि निराला के पूर्ववर्ती काव्य और उनके परवर्ती काव्य का एक मुख्य भेदक उपकरण उनकी यह नई प्रयोगशीलता ही है। सन १९३७-३८ के पश्चात् निराला-काव्य में हास्य और व्यंग की प्रवृत्तियाँ बढ़ने लगीं और ऐसी प्रवृत्तियों को आकार देने के लिए निरालाजी ने भाषा और शैलीगत नये-नये प्रयोगों को अपनाया। निराला की परवर्ती रचनायें, इसीलिये शैलीगत चमत्कारों से अधिक सम्पन्न हैं।

'राम की शक्ति पूजा' जैसी काव्यकृति में जो कृत्रिम पदावली आई है, अथवा उनके 'तुलसीदास' में जो आयास साध्य छन्द आये हैं, वहीं से निराला की काव्यकला एक नया मोड़ लेती प्रतीत होती है और उसके पश्चात् उनकी समस्त काव्यरचनाओं में विभिन्न प्रकार के प्रयोगों की स्थिति दिखलाई देने लगती है। निराला-काव्य की प्रयोगशीलता से हमारा आशय उनकी परवर्ती रचनाओं के उस चमत्कार-प्रधान पक्ष से है, जिनमें वे भाषा, छन्द, और काव्य-शिल्प के अनेक सचेत प्रयोग कर रहे थे।

निराला की प्रयोगशील कविता से आशय उनकी शैली की विशेषता, मनो-विज्ञान के तत्व, शब्द-प्रयोग, भाषारूपों और अभिव्यंजना के नये चमत्कारों से है। उनमें कुछ गद्यात्मक कविता, यथार्थ की शैली, बिम्बात्मक चित्रण भी हैं। कुछ लोग निराला की रचनाओं में उनकी मानसिक विकृति के कारण जो अस्पष्टता आ गई है, उसे ही प्रयोग मानने लगे हैं। बिभ्रोपावस्था में अतिकाल्पनिक सृष्टियाँ (फैंटेसी) जैसे मानसरोवर, कैलास यात्रा; इसे अति यथार्थवाद कहते हैं। इसे यदि हम प्रयोगवादी

रचना मानें तो एक विशेष अर्थ में ही वह प्रयोगवादी हो सकती है। 'कैलास में शरद' जैसी रचनाओं में एक अतिकल्पना या फैंटेसी ही है। हम कह सकते हैं कि वे यहाँ एक असंबद्ध भूमिका पर चले गये हैं। 'बेला', 'नये पत्ते' की अधिकांश रचनायें शैली की दृष्टि से प्रयोग हैं। विषय की दृष्टि से, चित्रण की दृष्टि से, शैली की दृष्टि से, तथा भाषा की दृष्टि से हमें इन प्रयोगों को देखना होगा। स्वयं कुकुरमुत्ता एक प्रयोग है। विषय की दृष्टि से इसमें जो अतिरंजित कल्पनायें हैं, वे अद्भुत प्रयोग हैं। विषय की अति काल्पनिकता, यथार्थ की प्रवृत्ति, गजल छन्दों का विधान, हास्य-विनोद के प्रयोग, व्यंगात्मक प्रयोग आदि सब निराला-प्रयोगों के भिन्न रूप हैं।)

'बेला' की गजलें एक दूसरा प्रयोग है। यहाँ यथार्थ चित्रण, की प्रवृत्ति भी दिखाई देती है। 'नये पत्ते' में 'कुत्ता भौंकने लगा', यह भी एक प्रयोग है तो 'अणिमा' में 'सड़क के किनारे दुकान है' भी एक प्रयोग है।

यहाँ हम निराला के प्रयोगात्मक काव्य को ले रहे हैं, जो हिन्दी की भावना-धारा और स्वयं निराला की सामान्य रचनापद्धति से भिन्न प्रकार की चीज है। फिर भी कुछ तथ्य ऐसे हैं, जिसे हम विषय, भाषा आदि की भूमि पर प्रयोगात्मक पाते हैं। निराला की प्रयोगवादी काव्यदृष्टि उनकी पूर्ववर्ती-स्वच्छन्द योजना को विस्तार देती है, यथार्थ के धरातल का निर्माण करती है और उस निर्माण के स्वरूप की बहु-मुखी अभिव्यंजना करती है।

● यथार्थवादी दृष्टि की स्वीकृति

यथार्थवादी काव्य-दृष्टि में निराला ने व्यक्तिवाद और समाजवाद दोनों को स्वीकार किया है। व्यक्तिवादी यथार्थ पक्ष की व्यंजना, उनके विद्रोही व्यक्तित्व के अहं रूप-चित्रों तथा समाजवादी यथार्थ की व्यंजना में उनके विशाल-अनुभव का योगदान रहा है। दोनों ही प्रकार के विषयों में कुरूपता पर व्यंग्य, भद्देपन पर हास्य तथा दयनीयता, दरिद्रता के कारणों पर प्रहार किया गया है। नित्यप्रति के बोलचाल के शब्दों का प्रयोग, उर्दू, फारसी तथा अन्य लोकभाषी मुहावरों का प्रयोग, विषयों में बौद्धिक समाधान खोजने के कारण छंदगत गद्यात्मकता सी आ गई है। काव्यगत लयविधान, संगीत आदि उनके इस नये काव्य में नहीं खोजे जा सकते। विषय के तारतम्य को भी खोजना सरल नहीं है। यह सब उपकरण नयी चेतना के सूचक हैं, जिनका प्रथम प्रयोग निराला ने किया। (कृष्णदेवप्रसाद ने लिखा है—“हिन्दी वाले, जिन्हें नई रचना, नये ढंग की आवश्यकता प्रतीत हो रही थी, इन लोगों की ओर आकृष्ट हुये नवयुग की दागबेल निराला के पहले पड़ चुकी थी। तीव्र डालनी थी, दीवार उठानी थी, यद्यपि ऊपर के ढाँचे की स्पष्ट रूपरेखा किसी के मन में न थी।” निराला ने इसको पूरा किया।

एक अंग्रेजी विद्वान जी० एस० फ्रेजर ने अपनी पुस्तक 'Vision and Rhetoric' में प्रयोग के बारे में कहा है—'भावों पर यह सीधा आक्रमण, लयों का यह साहसिक और व्यंजनात्मक प्रयोग, बहुत संदर्भों का यह सतरंगी निर्माण, बिंब प्रतीक की यह केन्द्रीय स्थिति कदाचित् इस शताब्दी की अंग्रेजी कविता की प्रयोगवादी धारा के मुख्य अंग हैं। प्रयोगवादी कविता यदि सफल है, तो हम उसे तत्काल स्वीकार कर लेंगे। परन्तु बौद्धिक माध्यम से उसको पूरी तरह समझ लेना कदापि संभव न होगा।'^१

फ्रेजर का प्रयोगशील काव्य के सम्बन्ध में यह वक्तव्य निराला के परवर्ती काव्य के सम्बन्ध में पूरी तरह चरितार्थ होता है। इस वक्तव्य के द्वारा फ्रेजर ने अंग्रेजी काव्य की प्रयोगशीलता का उल्लेख किया है। उसमें केवल शैलीगत बारीकियों का स्थान नहीं है, बल्कि काव्य के संपूर्ण विधान में आने वाली नवीनता का है। फ्रेजर के अर्थ में निराला हिन्दी के प्रमुख प्रयोगशील कवि ठहरते हैं।

निराला-प्रयोगों का विकासात्मक अध्ययन—अब हम निराला-काव्य के प्रयोगशील पक्ष का विकासात्मक अध्ययन करेंगे।

परिमल—उनके 'परिमल' काव्य-संग्रह में छंदगत नवीनता मिलती है। स्वच्छंदतावादी विषय-योजना में छंदगत नवीनता हमें परिमल की अनेक कविताओं में प्राप्त होती है, यथा 'पहचाना', 'धारा', 'वनकुसुमों की शय्या', 'रास्ते के फूल से', 'आग्रह', 'बादल राग', 'जागो फिर एक बार', 'छत्रपति शिवाजी का पत्र', 'पंचवटी प्रसंग' इत्यादि—परन्तु इस शिल्पगत नवीनता में लय की अन्विति और शब्दों की संगीतात्मकता है। निराला के पूर्ववर्ती काव्य की यह शिल्पगत नवीनता हिन्दी साहित्य की अनुपम देन कही जा सकती है।

अनामिका—इसके बाद 'अनामिका' काव्यसंग्रह में 'परिमल' की चेतना का विकास तथा परवर्ती बीज-सृष्टि का रूप दिखाई देने लगता है। यहां हम 'अनामिका' की नयी कविताओं को ही लेंगे जो निराला के परवर्ती काव्य की पृष्ठभूमि को सुदृढ़ करती हैं।

1 This direct attach on the emotions, two daringly-expressive use of rhythm, this elliptical effect of mutiple reference, this central reliance on the image-symbol arc, it might seem, essential parts of what we mean by experimentalism in the English poetry of this century. Experimental poetry is poetry which, if it is successful, we apprehend immediate but which we may never perhaps, fully intellectually comprehend.'

‘तोड़ती पत्थर’ यथार्थ दृष्टि और नई काव्य-शैली पर रचित लोकप्रिय रचना है। इसमें निम्न वर्ग की समस्या के वातावरण को खुले रूप में चित्रित किया गया है। छंद-योजना, शब्द-योजना तथा लय, संगीत का माधुर्य और सौन्दर्य यहां विषय की मर्मभेदी योजना में समाहित हो गया है। यहां आकर निरालाजी ने अपनी स्वच्छंदतावादी काव्य-प्रवृत्ति को सामाजिक यथार्थ से पहली बार जोड़ा है। यह हिन्दी की प्रगतिवादी काव्यशैली का निराला का दिया स्वच्छंदतावादी रूप है।

‘वनबेला’ कविता में नयी सामाजिक चेतना का स्वरूप मिलता है। ‘वनबेला’ वास्तव में अव्यवस्थित समाजरूपी वन की निर्द्वन्द्व बेला का स्वरूप है, जिसमें अनेक-मुखी विषय-योजना को स्वतन्त्र शिल्प से सजाया गया है। इसमें स्वछंदतावादी, प्रतीकवादी, यथार्थवादी, प्रयोगवादी शैली का समागम है। सभी प्रकार की भाषाओं का प्रयोग हुआ है। यह निराला की नयी चेतना का प्रशस्त आरम्भ-बिन्दु है। नवीन द्वार है—

वर्ष का प्रथम,
पृथ्वी के उठे उरोज मंजु पर्वत निरूपम
किसलयों बंधे,
पिक-भ्रमर-गुंज भर मुखर प्राण रच रहे सधे
प्रणय के गान "...." से आरम्भ होकर
फिर लगा सोचने यथा सूत्र—मैं भी होता
यदि राजपुत्र—मैं क्यों न सदा कलंक ढोता,
ये होते जिनने विद्याधर मेरे अनुचर,
मैं देता कुछ, रख अधिक, किन्तु जितने पेपर,
सम्मिलित कण्ठ से गाते मेरी कीर्ति अमर
देश की नीति के मेरे पिता परम पंडित
एकाधिकार रखते भी धन पर, अविचल-चित्त
होते उग्रतर साम्यवादी, करते प्रचार

$\times$ $\times$ $\times$

हिन्दी-सम्मेलन भी न कभी पीछे को पग
रखता कि अटल साहित्य कहीं यह हो डगमग ।
लार्ड के लाड़लों को देता दावत, बिहार
इस तरह खर्च केवल सहस्त्र-षट् मास-मास

$\times$ $\times$ $\times$

बिकती जो कौड़ी-मोल
यहाँ होगी कोई इस निर्जन में,
खोजे, यदि समतोल

देखता बड़े, छोटे; असमान, समान वहां:—

सब सुहृद वर्ग ' आदि आदि,

‘वनवेला’ नयी सामाजिक चेतना का प्रयोग है। उसमें परंपरागत और नवीन राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक और कला-सम्बन्धी योजनाओं को समेटकर एक अभिनव काव्य-रचना प्रस्तुत की गयी है। इसमें निराला का सामाजिक वैषम्य मूलक व्यंग्यात्मक स्वर पहली बार झंकृत हुआ है। ‘वनवेला’ एक प्रयोग है, जिसकी विषययोजना व्यंग्य मिश्रित है।

‘वनवेला’ एक शिल्प की रूपरेखा भी है जो बंधन रहित है। ‘खुला आसमान’ गीत भी नयी शैली का प्रयोग है:—

बहुत दिनों बाद खुला आसमान

निकली है धूप हुआ खुश जहान की भूमिका में

चरने को चले ढोर... ..

लोग गाँव-गाँव को चले २०००

बाजार का चित्र, पनघट का चित्र आदि दिए गए हैं। विषय के तथ्य को नहीं; उसके रूप को ही लक्ष्य किया गया है। एक और कविता—‘सेवा प्रारम्भ’ है जो शिल्पगत प्रयोगशीलता को लक्ष्य किए हुए है। ‘अनामिका’ संग्रह के प्रयोगवादी चित्र स्वच्छंदतावादी विषय-गरिमा पर रचित हैं। शिल्प की प्रयोगात्मकता तो है, पर विषय की उतनी नहीं। यद्यपि एक दो कविताएँ यथार्थवादी पद्धति पर लिखी मिल जाती हैं। डा० रामरतन भटनागर ने ‘परिमल’ और ‘अनामिका’ की तुलना करते हुए लिखा है ‘परिमल’ और ‘अनामिका’ की प्रौढ़ रचनाओं की तुलना करने में पहली बात जो बड़ी सरलता से समझ में आ जाती है, वह यह है कि इस नए काव्य-संग्रह में निराला का स्वर बदल गया है। नये प्रयोग यहाँ भी हैं, विशेषकर छंदों के क्षेत्र में, परंतु शैली और विचारधारा की दृष्टि से महान अन्तर हो गया है। कवि निःसंदेह एक नए प्रकार की काव्य-सृष्टि कर रहा है।^१

अग्रिमा—‘अणिमा’ निराला के गीतों का संग्रह है। ‘अणिमा’ के गीतों में विषाद, दुख और कष्ट की झलक मिलती है। इस संग्रह के काव्य का सौन्दर्य ‘बेला’, नये पत्ते’, ‘कुकुरमुत्ता’ की तुलना में नहीं आंका जा सकता। ‘अणिमा’ के गीतों में रहस्यवादी और कष्टामूलक स्वर, राष्ट्रीय और मानवतावादी स्वर सुनाई पड़ता है। प्रशस्तिमूलक कवितायें भी इसमें हैं जो कवि की आस्था को प्रकट करती हैं (परन्तु

१ निराला : अनामिका की ‘वनवेला’ कविता से—पृ० ८३, (रचना ११-७-३७)

२ निराला-अनामिका की ‘खुला आसमान’ कविता से—पृ० १३८, (रचना ६-१-३८)

३ डा० रामरतन भटनागर—कवि निराला : एक अध्ययन, पृ० १६०।

इसका अर्थ यह नहीं कि 'अणिमा' का आदर्श एकदम पुराना है। नए पुराने का सम्बन्ध बतलाते हुए डा० भटनागर ने लिखा है 'अणिमा' में अधिकांश पुराना है, परन्तु नया भी कम नहीं है। वास्तव में 'अणिमा' संधि-काव्य है। छायावाद और प्रगतिवाद के दुराहे पर खड़ा कवि, अपने सारे साहित्यिक जीवन का लेखा-जोखा ले रहा है और नए मैदान में उतर रहा है। अनेक कविताओं की भाषा-शैली, छंद में पुरानापन है। परन्तु कुछ कविताओं में कवि नये क्षेत्र में आ गया है। जहाँ प्रकृति के चित्र हैं, वह गद्य-मात्र हैं। किसी भी प्रकार के अलंकार के प्रति कवि को मोह नहीं रह गया है।^१

अणिमा की लम्बी कविताओं में 'सहस्राब्दी' कविता निराला की सांस्कृतिक-ऐतिहासिक दृष्टि का परिचय देती है। इसमें सांस्कृतिक इतिहास का सजीव चित्र है और राष्ट्रीय संदेश भी। इसको परिमल की 'यमुना' और अनामिका की 'दिल्ली कविताओं के साथ रखा जा सकता है। 'मेरे घर के पश्चिम की ओर रहती है' तथा 'सड़क के किनारे दुकान है' प्रयोगशैली के उदाहरण हैं। देखिये—

सड़क के किनारे दुकान है
पान की, दूर एक्कावान है
घोड़े की पीठ ठोंकता हुआ,
पीरबख्श एक बच्चे को दुआ
दे रहा है, पीपल की डाल पर
कूक रही है कोयल, भाल पर
बैलगाड़ी चली ही जा रही है।
बाईं तरफ चिड़ियाँ कुछ बैठी हैं,
खुली जड़ें सिरसे की ऐठी हैं।

प्रस्तुत कविता में कथानक टुकड़ों का जोड़ है, जिसका प्रत्येक टुकड़ा स्वतंत्र अस्तित्व रखता है। कवि जो देखता है, उसी का अभिधेय रूप सामने रख देता है। वह प्रगतिशील चित्र भी उपस्थित करता है।

एक और प्रयोगपद्धति पर लिखा व्यंग्य है—

चूँकि यहाँ दाना है
इसीलिए दीन है दीवाना है।
लोग हैं, महफिल है,
नगमें हैं, साज है, दिलदार है, और दिल है,

शम्मा है, परवाना है,
चूँकि यहाँ दाना है ।
× × ×
अम्मा है, बप्पा है,
झापड़ है और गोल गप्पा है,
नौजवान मामा है और बुड्ढा नाना है,
चूँकि यहाँ दाना है ।

यहाँ दाने को लक्ष्य करके व्यंग किया गया है । इसकी विषय-वस्तु प्रगतिशील भावना की द्योतक है परन्तु इसकी निर्मिति नयी प्रयोगशीलता का पल्ला पकड़े हुए है। इसके प्रगतिशील पक्ष पर हमने अन्य अध्याय में प्रकाश डाला है, जहाँ हमने इसे पूँजीवादी सम्प्रदाय का व्यंग्यात्मक चित्र कहा है ।^१ इसकी प्रयोगशीलता का स्वरूप इसके चमत्कार में है । निरालाजी दीन या धर्म के साथ दीवाना या आबारा प्रेमी को भी जोड़ देते हैं । जहाँ पैसा है वहाँ महफिलें (नृत्यकला) हैं नर्तक (काव्यकला) हैं, साज (संगीतकला) है इन को 'अर्थाश्रित' बताया है । दिलदारी भी इसी से पैदा होती है । शम्मा और परवाना से निरालाजी का आशय प्रेमी और प्रेमिका से है । इन दोनों का समागम भी वहीं होता है, जहाँ दाना है । यहीं नहीं; निरालाजी पारिवारिक संबंधों में भी अर्थ की प्रमुखता देखते हैं । अम्मा और बप्पा (माताजी और पिताजी) भी तभी तक स्नेह, ममता और सम्मान के अधिकारी हैं जब तक वे भरे-पूरे घर की गृहस्थी चला सकते हैं । जब अम्मा और बप्पा की स्थिति ठीक है, तो नौजवान मामा और बुड्ढा नाना भी वहीं आकर रहते हैं । निरालाजी ने सामाजिक जीवन और व्यवहारों के यथार्थ-पक्ष पर बड़ा तीव्र प्रकाश डाला है और सारे संबंधों को अर्थाश्रित बताया है । इस कविता का अन्तिम प्रयोग 'झापड़ है,' 'गोलगप्पा है' और भी विचित्र है । इसका आशय यह जान पड़ता है कि पैसा होने पर ही झापड़ लगाने का भी अधिकार प्राप्त होता है और पैसे वाला व्यक्ति ही गोलगप्पा खिलाकर लोगों को संतुष्ट कर सकता है, यद्यपि इस प्रयोगशील रचना में व्यंजना की शक्ति को आवश्यकता से अधिक खींचा गया है, परन्तु कदाचित् इस प्रकार की खींच-तान के बिना वह कविता बनती ही नहीं, जिसे हम प्रयोगशील नाम से जानते हैं ।

❶ अणिमा के प्रयोग की विशेषतायें

'अणिमा' संग्रह में कवि के अन्तःस्पर्श की व्यंजना हुई है । साथ ही उसका आदर से पूर्ण श्रद्धापरक भाव भी प्रशस्तिमूलक कविताओं में व्यक्त हुआ है । फिर भी कवि ने कतिपय प्रयोगात्मक कविताओं को इसमें संकलित किया है जो यथातथ्य वर्णन को प्रमुखता देती हैं ।

● कुरुरमुत्ता

निराला की सर्वाधिक लोकप्रिय नयीदृष्टि 'कुरुरमुत्ता' है। विद्वानों ने इसे एक साथ प्रगतिवादी और प्रयोगवादी साबित किया है। कुरुरमुत्ता सर्वहारा के वातावरण का प्रतीक है, जिसकी अपनी कोई संस्कृति नहीं है। निराला ने उसके चरित्र-चित्रण में निम्नवर्गीय स्वाभाविकता को बनाये रखने का पूरा प्रयत्न किया है। 'कुरुरमुत्ता' प्रगतिवादी विषयवस्तु में नयी काव्य-चेतना का परिचायक है। वह हिन्दी की संस्कृति का बीज है जो साम्राज्यवादी व्यवस्था का प्रतिरोध करता है। 'कुरुरमुत्ता' निराला के सामाजिक आदर्श का वह केन्द्र बिन्दु है जिसमें तत्कालीन वर्गीय दृष्टियाँ अपने सही रूप का इजहार करती हैं। 'कुरुरमुत्ता' निराला की परवर्ती काव्य-प्रतिभा की सशक्त-सर्जना, उनकी उर्वर बुद्धि की प्रशस्त समस्या तथा उनके विकासशील व्यक्तित्व की अनुपम प्रदर्शिका है। नयी कविता के विषय और शिल्प को लेकर 'कुरुरमुत्ता' का हिन्दी साहित्य में अभिनव स्वागत हुआ है। आरम्भ से अन्त तक इसकी गद्यात्मक काव्य पक्तियों में विषय के बिखराव को एक लक्ष्य से जोड़ दिया गया है।

विषय का बिखराव और नयी शिल्प का प्रयोग:—(१) अभिधेय चित्रों के द्वारा, जिनमें नामावली गिनाई गई है, फूलों की किस्में, फलों के नाम आदि। (२) 'कुरुरमुत्ता' का गुलाब पर व्यंग्य और उसकी अशिष्ट फटकार; गुलाब को संबोधित करते हुये 'कुरुरमुत्ता' कहता है—

हाथ जिसकै तू लगा
पैर सर पर रखकर, वह पीछे को भगा
जानिब औरत की लड़ाई छोड़ कर
टट्टू जैसे तबेले को तोड़कर
शाहों, राजों, अमीरों का प्यारा, —(पृ० ३)
× × ×

'कुरुरमुत्ता' की अपनी जो तहजीब है— वह है। वह स्वयं अपनी प्रशस्ति में गुलाब से कहता है—

तू है नकली मैं हूँ मौलिक
तू है बकरा मैं हूँ कौलिक —(पृ० ४)
+ × ×
चीन मैं मेरी नकल, छाता बना
छत्र भारत का वही, कैसा तना, —(पृ० ५)
× × ×
विष्णु का मैं ही सुदर्शन चक्र हूँ
काम दुनियाँ में पड़ा जो वक्र हूँ

उलट दे, मैं ही जसोदा की मथानी
 और भी लम्बी कहानी
 मैं कुरुरमुत्ता हूँ
 पर बेनजोइन वैसे
 बने दर्शन-शास्त्र जैसे
 ओमफलस और ब्रह्मावर्त,
 वैसे ही दुनियाँ के गोले और पतं
 जैसे सिकुड़न और साड़ी —(पृ० ६-७)

(कुरुरमुत्ता अपनी बड़ाई में बहुरूपियापन झलकाता है। मानों युग-युग से तृपित-आत्मा को कुछ कहने का अवसर मिला हो और बिना-सोचे समझे संसार भर के देखे-दिखाये ज्ञान को अपना ही समझ कर कह रहा हो। कुरुरमुत्ता सामाजिक चेतना का उन्माद है, जो मानव जाति की युग-युगीन तहजीबो-तमुद्दन पर व्यंग्य करता है।

तासाधिन्ना चल रही जितनी तरह
 देख, सबमें लगी मेरी ही गिरह
 × × ×

कथक हो या कथकली या बालडान्स
 किलियोपेट्रा, कमल भौरा, कोई रोमांस,
 बहलिया हो, मोर हो, मनिपुरी, गरबा
 पैर, माझा, हाथ, गरदन, भौंहे मटका,
 नाच अफ्रीकन हो या योरोपियन
 सब में मेरी ही गढ़न । —(पृ० ८-९)

आगे कहता है, 'दुनियाँ' में सबने मुझी से रस चुराया। संसार-चेतना के आनंद का मूलरूप कुरुरमुत्ता है।

मुझी में गोते लगाये आदि कवि, व्यास ने
 मुझ से पोथे निकाले भास-कलिदास ने
 × × ×

कहीं का रोड़ा कहीं का लिया पत्थर
 टी० एस० इलियट ने जैसे दे मारा,
 पढ़ने वालों ने जिगर पर हाथ रख कर
 कहा, "कैसा लिख दिया संसार सारा" . . —(पृ० १०)

(कथानक के विकास में गोली (मालिन की लड़की) और बहार (नवाब की लड़की) का सहयोग होता है। दोनों ही बाग में आकर उसकी शोभा देखती हैं और 'कुरुरमुत्ते' को कबाब बनाने के निमित्त गोली तोड़ लाती है। कबाब बनता है।

बहार खाकर बहुत लजीज बतखस्ती है। अपने अब्बा मियाँ नवाब से उसकी तहरीर करती है। अब्बा मियाँ मालियों को हुक्म देते हैं कि 'कुकुरमुत्ता' लाओ। माली जवाब में कहता है....हुजूर।

(कुकुरमुत्ता अब नहीं रहा मंजूर
अर्ज हो, रहे हैं अब सिर्फ गुलाब।) —(पृ० २४)

माली का यह उत्तर सुनकर नवाब गुस्से से लाल-पीले होकर क्या कहते हैं, देखिये— कहा,

चल गुलाब जहाँ थे, उगा,
सबके साथ हम भी चाहते हैं अब कुकुरमुत्ता।
माली ने कहा, “मुआफ करें खता,
कुकुरमुत्ता उगाया नहीं उगता।” —(पृ० २४)

डा० भटनागर ने 'कुकुरमुत्ता' का स्थान बताते हुए कहा है “निराला के छाया-वाद-काव्य में जो स्थान 'जूही की कली' का है। वही स्थान उनकी नई कविताओं में 'कुकुरमुत्ता' को मिलना चाहिए।” आगे कहते हैं, “यह नई कविता का आदि काव्य है।... यह गद्यमय सजीव व्यंग्य है। यह युग की नवीन भाषा में युग के अनुकूल विचार है। निराला का यह नया काव्य अपने ही काव्य पर एक तीखे व्यंग्य के रूप में हमारे सामने आता है।”

प्रयोगवादी रचनाओं का यह विशद रूप हिन्दीसाहित्य को नया-नया सा था। क्योंकि छायावाद और प्रगतिवाद की दो योजनाओं के बीच इसका स्वरूप निमित्त हुआ था। निराला की इस प्रयोगदृष्टि का मूल्यांकन इस प्रकार के काव्य-हेतुओं और काव्य-रूपों को लक्ष्य करके किया जा सकता है। प्रयोगवादी कवि निराला अपनी प्रतिभा को क्रांतिकारी वातावरण से जोड़कर जिस जनवादी साहित्य की सृष्टि करते हैं, वह रूप वैभव में भी लोक भाषा से सज्जित है।

बेला—'बेला' काव्यसंग्रह निराला की उर्दू-गजल की शैली में नये विषम प्रयोगों को सामने लाता है। बेला का आगमन निराला के साहित्यविकास में एक अपूर्व घटना रही है। निराला का विचार था कि वे उर्दू के द्वारा हिन्दी पाठकों को नयी चेतना का आभास करायें क्योंकि जनसामान्य में उर्दू की मुशायरा-पद्धति का अधिक प्रचलन था। 'बेला' के आवेदन में स्वयं निरालाजी ने लिखा है “नई बात यह है कि अलग-अलग बहारों की गजलें भी हैं। जिनमें फारसी के छन्दशास्त्र का निर्वाह किया गया है। आज भी ब्रजभाषा के प्रभाव के कारण अधिकांश जन तुतलाते हैं, खड़ी बोली के गीत खुलकर नहीं गा पाते। प्रायः सभी दृष्टियों से उनको फायदा

पहुँचाने का विचार रखा गया है।” हिन्दी को संस्कृति का दायित्व सौंपकर निराला सभ्यता की ऊपरी सतह को उर्दू के द्वारा ध्वंजित करना चाहते हैं। तभी तो लहज तर्जोअदा और वाह-वाह का रूप इस संग्रह में प्रचुरता से देखा जा सकता है। इस संग्रह के गीतों की प्रयोगात्मक उपयोगिता है, जिसमें लोक-भाषा और उर्दू-फारसी के प्रयोग किये गये हैं। श्री गिरीशचन्द्र तिवारी ने लिखा है “बेला’ में भी कवि की दृष्टि प्रयोग के विचार से नये पत्ते की ही तरह से है। बेला में गीतों की नयी मान्य ताएँ प्रदान की गई हैं। कवि ने छन्दशास्त्र की व्यवस्था का फारसी एवं उर्दू की गजलों और बहारों का प्रयोग किया है। यद्यपि बहारों का प्रयोग नया नहीं है; फिर भी निराला ने आधुनिक युग में व्यवहृत कर उसको बहरों में एक स्थान प्राप्त कराया है।”

‘बेला’ संग्रह में प्राकृतिक, आध्यात्मिक और श्रृंगारी रचनाएँ भी आई हैं। जो कवि की स्वस्थ प्रवृत्ति का परिचय देती हैं। भले ही उसकी भाषा सुबोध, सरल और उर्दू मिश्रित ग्रामिणी रही हो। ‘बेला’ की रचनायें विषय की दृष्टि से ‘परिमल’ ‘अनामिका’ ‘गीतिका’ और ‘गीतगुंज’ की कड़ी में रखी जा सकती हैं। परन्तु कुछ कवितायें ऐसी भी हैं जो प्रगतिशील तथा प्रयोगशील कही जा सकती हैं। शैली की दृष्टि से बेला की कविताओं को एक प्रयोग ही कहा जायगा। जैसा कि हम पहले कह आये हैं कि ‘बेला’ की गजलें भी एक प्रयोग ही हैं। राजनीतिक प्रयोगों का व्यंग्यात्मक और तिरस्कृत रूप इन कविताओं में देखने को मिल जाता है। ‘बेला’ की कतिपय प्रयोगवादी कविताएँ हैं—‘छला गया’ ‘किरनों का प्रकाश कैसे करे’ ? (पृ० ५६), ‘वह चलने से तेरे छटा जा रहा है’ (पृ० ५६) ‘गिराया है जमी होकर, छुटाया आसमां होकर’ (पृ० ६२), ‘बदली जो उनकी आँखें, इरादा बदल गया’ (पृ० ६३) ‘अगर समस्त पदों का किसी को डर होता’ (पृ० ६२) ‘तुम हो गतिवान जहाँ’ (पृ० ६७)। इन कविताओं के अलावा भाषा, शैली विषय की दृष्टि से अन्य कई कविताएँ भी एक प्रयोग ही नजर आती हैं। देखिए—

साथ न होना । गाँठ खुलेगी, छूटेगा उर का सोना

आँख पर चढ़े, कि लड़े, फिर लड़े,

जीवन के हुए और कोस कड़े ?

प्राणों से हुआ हाथ धोना । साथ न होना ।

× × ×
हाथ बचा जा, कहने से माथ बचा जा,

अपने को सदा लचा जा;

सोच न कर मिला अगर कोना । साथ न होना । (बेला, पृ० १२)

१ निराला : ‘बेला’ के आवेदन से ।

२ गिरीशचन्द्र तिवारी : ‘कवि निराला और उनका काव्य साहित्य-पृ० ५६ ।

यद्यपि यह एक दार्शनिक गीत है; पर यह भी एक प्रयोग है। इसी प्रकार का एक दार्शनिक गीत है 'फूलों के कुल कांटे, दल, बल', यहाँ फूलों को संबोधित करके मानव-जीवन पर, उसकी कमजोरियों पर प्रयोग किया गया है। देखिये—

फूलों के कुल कांटे, दल, बल ।
 कवलित जीवन की कला अकल ।
 विष, असगुन, चिन्ता और सोच,
 उकसाये, खाये करे लोच,
 कर गये पोच से और पोच;
 मुरझे तरु-जीवन के सम्बल । —(पृ० १३)

'बेला' की १५ वीं, १६ वीं कविता में बसंत का वर्णन किया गया है। ये कविताएँ ख्याल की शैली में हैं जो प्रेम की मादकता का वर्णन करती हैं। चौबीसवीं कविता में अस्पष्टता आ गई है—

अपने को दूसरा न देख,
 दूसरे को अपना न कह ।
 सपने को कल्पना न मान,
 कल्पना को सपना न कह ।
 आँख की आन के लिए
 आन की आँख से गुजर,
 तपने को बैठना सही,
 बैठने को तपना न कह ।
 जैसे हुबाब गाँठ बांध,
 जैसे गुलाब गाँठ खोल,
 आँख के लगने से सुघर
 आँख का तू झपना न कह । —(पृ० ३२)

उर्दू की नज्म-पद्धति पर हिन्दी के शब्दों का प्रयोग हुआ है, जिसमें मुशायरे की गंध आती है। परन्तु बोधगम्यता का अभाव लक्षित होता है।

पैंतीसवीं कविता 'बाहर मैं कर दिया गया हूँ। भीतर, पर, भर दिया गया हूँ। दार्शनिक गीत होते हुए आध्यात्म विषय से सम्बन्धित है। परन्तु उसकी विषय-योजना में कोई स्पष्टता नहीं दिखाई देती। ऐसा मालूम होता है कि शब्दों को जोड़-कर रचना की गई हो। कतिपय पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

बाहर मैं कर दिया गया हूँ। भीतर, पर, भर दिया गया हूँ ।
 ऊपर वह बर्फ गली है, नीचे यह नदी चली है;

भीतर, बाहर, बाहर, भीतर, देखा जब से, हुआ अनश्वर;
माया का साधन यह सस्वर;
ऐसे ही घर दिया गया हूँ । बाहर मैं कर दिया गया हूँ । (पृ० ४३)

×

×

✱

४४ वीं कविता 'आ रे, गंगा के किनारे' नये कवियों की भांति का एक प्रयोग है । इसमें चित्रित विषय यथार्थवादी है; वातावरण प्राकृतिक और योजना सामाजिक । इस कविता में पंडों पर व्यंग्य किया गया है जो धर्म के सहारे स्वार्थ-सिद्धि करते हैं । इसका उल्लेख हम पहले कर आये हैं । यहां यही कहना पर्याप्त होगा कि इस प्रयोग की एक विचार-भूमि है जो गंभीर न होकर स्पष्ट अवश्य है । इसमें बोध-गम्यता है । देखिये—

आ रे, गंगा के किनारे
झाऊ के बन से पगडंडी पकड़े हुए
रेती की खेती को छोड़कर; फूस की कुटी;
बाबा बैठे झारे-बहारे ।

×

✱

✱

बाबा साधक हैं और कढ़े भी हैं,
खारुए की पोथियां पढ़े भी हैं,
आंखों में तेज है, छाया है,
उस छवि की गेह सिधारे ।

—(पृ० ५२)

● बेला की विशेषतायें : प्रयोगशील काव्यदृष्टि से

(१) उर्दू-फारसी भाषा और छंदों का प्रयोग किया गया है, जिसमें गजलें, बहरें, ख्याल, रुबाइयां आदि में कवितायें की गई हैं । ध्यान इस बात का रखा गया है कि वे इतनी कठिन न हो जायें जो बोधगम्य न हों, तभी तो लोकभाषा के शब्दों को भी उनमें प्रयुक्त किया गया है । मुशायरे की पद्धति पर जनमानस को प्रभावित वाली प्रभावोत्पादकता बनाये रखने का प्रयास इन कविताओं में बराबर रहा है । 'बेला' की गजलें एक विशेष प्रकार का प्रयोग ही हैं ।

(२) प्राकृतिक, आध्यात्मिक से लेकर सामाजिक और राजनीतिक कवितायें इस संग्रह में हैं । जो भाषागत-विविधता और विषयगत सरलता को प्रकट करती हैं ।

(३) बेला की प्रयोगवादी रचनाओं की कोई विचारधारा नहीं है । कोई गंभीर उद्देश्य नहीं है । उनका महत्व सामाजिक और तात्कालिक प्रभाव-क्षमता में ही आंका जा सकता है ।

(४) भाषा-प्रयोग की विविधता से अस्पष्टता भी आ गई है, जो पाठक की रुचि को अनगढ़ प्रयोग-सी जान पड़ती है ।

(५) ये प्रयोग निराला की बहुज्ञता की सूचना देते हैं ।

● नये पत्ते

‘नए पत्ते’ संग्रह का आगमन १९४६ में हुआ; जब द्वितीय महासमर समाप्त हो चुका था। भारत की आर्थिक स्थिति और साम्राज्यवादी भार, राष्ट्रीय आन्दोलन का नया जोश और दमनकारी नीति, अत्याचार, साम्प्रदायिक झगड़ों आदि से सामाजिक व्यवस्था का रूप बिगड़ रहा था। निराला के संवेदनशील मन और उनकी अस्तव्यस्त जीवन-विषमताओं ने उनको झकझोर दिया था। इस समय तक उनकी मानसिक विक्षिप्तता बढ़ चुकी थी। ‘नए पत्ते’ का आगमन ही साहित्य-तरु में नहीं—हरीतिमा से समझना चाहिए। यह निराला की प्रगतिवादी और प्रयोगवादी स्थली है। इसमें विविध प्रकार के प्रयोग हुए हैं। काव्य-शिल्प को नया रूप मिला है। काव्यगत विषय को विविधता, काव्यभाषा को सरलता और चलताऊपन मिला है तथा काव्य के प्रयोजन को प्रयोगशीलता। ‘नये पत्ते’ की कतिपय प्रयोगशील कविताओं पर यहाँ हम विचार करेंगे। यह हम पहले ही कह आए हैं कि यह विषयगत, शैलीगत, छंदगत, भाषागत एक प्रयोग है।

‘रानी और कानी छंदबद्ध, विषय-प्रयोग है जो प्रगतिवादी समस्या को लेकर एक व्यंगचित्र उपस्थित करता है। शब्द-योजना से जो रूप बना है वह ‘शिल्प’ का प्रयोग कहा जा सकता है। देखिये—

बीनती है, कांडती है, कूटती है, पीसती है,
डलियों के सीले अपने रूखे हाथों मीसती है,
घर बुहारती है, करकट फेंकती है,
और घड़ों भरती है पानी, -(पृ० ६)

‘खजोहरा’ कविता प्रयोगवादी-नयीदृष्टि की सूचक है—

दौड़ते हैं बादल ये काले काले
हार्डकोर्ट के वकले मतवाले ।
जहाँ चाहिये वहाँ नहीं बरसे,
धान सूखे देखकर नहीं तरसे ।

×

×

×

नाम है हिलगी, बनी है भूचुम्बी
जैसी लौकी की लम्बी तुम्बी ।
कच्चे घर ऊबड़ खाबड़, गन्दे

गलियारे, बन्द पड़े कुल धन्धे ।..आदि ।-(पृ० ११-१२)

इस कविता में अनेक प्रकार के शब्द हैं जो उनकी प्रयोगशीलता का परिचय देते हैं—वकले, कहकहे, हिलगी, तुम्बी, टुम्नी-टुम्ने, सब्जे सब्जे, मेंढक एक बोलता है,

जैसे सुकरात, . . . आदि । यहाँ विषयगत बिखराव है पर भाषा की शुस्ती और शब्दों की शालीनता नहीं है ।

इसी प्रकार 'मास्को डायेलग्स' भारतीय साम्यवादी राजनीति के आडम्बर-प्रधान रूप पर व्यंग्यात्मक प्रयोग है । 'आँख आँख का काँटा हो गई' शीर्षक कविता तो प्रयोगशील कविता का उत्कृष्ट उदाहरण है ।

मुँहो-मुँह रहे

एक पेड़ पर दो डालों के कटि जैसे

अपनी-अपनी कली तोलते हुए ।

हर्फ न आया;

× × ×

• छाँह में बैठालकर तंग नसें ढीली कीं;

फिर बुखार उतारा;

राही जगा,

अपना रास्ता लिया

आँख आँख का काँटा हो गई ।

(पृ० २०-२१)

उनके इस प्रकार के प्रयोग उनकी मानसिक विक्षिप्तता का परिचय देते हैं । वैज्ञानिक विकास और परम्परा के ह्रास ने जो वातावरण प्रस्तुत किया है उसको लक्ष्य रखकर 'थोड़ों को बहुतों के पेट में आना पड़ा' कविता की सृष्टि हुई है । आँख आँख का काँटा हो गई, की भाँति ही यह कविता प्रयोग-दृष्टि का उदाहरण कही जायगी ।

घूँहों और गुफाओं और पत्थरों के घरों से

आजकल के शहरों तक, दुनियाँ ने चोली बदली ।

बिजली और तार और भाप और वायुयान

उसके बाहन हुए ।

जान खींची खानों से

कल और कारखानों से ।

(थोड़ों के पेट में बहुतों को आना

× × ×

पड़ा—पृ० २२)

'खुशखबरी' में सिनेमा-संगीत और कविता के नये फैशन पर व्यंग्यात्मक प्रयोग है । 'दगा की' नई सम्यता के कंकाल पर व्यंग्यात्मक प्रयोग कहा जा सकता है । 'गर्म पकौड़ी' कविता में गर्म पकौड़ी को प्रतीक रूप में लेकर व्यंग्यात्मक प्रयोग किया गया है जो आजकल के नवयुवकों पर प्रयोग कहा जायगा । 'स्फटिक शिला' कविता 'नये पत्ते' की सर्वमान्य प्रयोगशील रचना कही जायगी, यद्यपि इसका विषय यथार्थवादी दृष्टि से संबन्धित है । इसमें रामलाल का अन्य साथियों के साथ

स्फटिक शिला, चित्रकूट जाने की तैयारी से लेकर वहाँ पहुँचने तक का दृश्य दिखाया गया है। जाने के क्रम से पहुँचने तक के वातावरण का वर्णन अंकित है। यह वातावरण ही इस कविता का कथानक है, यही इसकी प्रयोग-शीलता का रूप कहा जायगा। इसमें लेखक की रुचि व्यंग्य और हास्य के द्वारा प्रयोगात्मक चित्र उपस्थित करने की रही है। पूरी कविता पढ़ने पर एक अजीब सी विषय-योजना, लगती है। 'कुत्ता भौंकने लगा' यथार्थवादी दृष्टि का अच्छा खासा व्यंग्यात्मक प्रयोग है। 'झींगुर डटकर बोला', 'डिण्डी साहब आये', 'महँगू महँगा रहा' आदि कविताएँ प्रयोगवादी दृष्टि की कही जायेंगी। 'कैलास में शरत्' कविता जैसा अति-काल्पनिक चित्रण भी एक प्रकार का प्रयोग है। इसमें अतिरंजित कल्पनाएँ आयी हैं। विषय की अतिकाल्पनिकता इस कविता को देखने पर दृष्टिगत होती है। यह एक विलक्षण, अद्भुत प्रयोग है। कतिपय पंक्तियाँ यहाँ उद्धृत की जाती हैं—

सारे देशों की हम लोगों ने यात्रा की।

किस्तियाँ डाली गईं,

उन पर चढ़-चढ़ कर हम

मानसर पर चले।

सर्वोत्तम स्थान यह।

इन्दीवर करोड़ों,

करोड़ों अन्य कमल, कोकनद, शतदल

ऐसी सुगन्ध की मदिरा न फिर मिली।

उन्मद बिहार किया।

एक ओर सिन्धु, एक ओर ब्रह्मपुत्र का

उद्गम सुहावना।

एक नदी और है

यहाँ से निकली हुई।

दिव्यता के भीतर हम

दिव्य बने ही रहे।'

● नये पत्ते की विशेषताएँ—प्रयोगशील दृष्टि से

निराला यहाँ यथार्थ की भूमि पर उसके सुडौल रूप को, मार्मिक रूप को कम देखते हैं। भोंडापन भद्दापन ही हास्य और व्यंग्य के रूप में चित्रित किया गया है। अतिथार्थवाद का स्वरूप उभर आया है; जिसे अतिकाल्पनिकता भी कह सकते हैं।

(२) तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था और राजनीतिक गतिविधि पर जो दृश्यावलोकन किया गया है, वह किसी गंभीर लक्ष्य की ओर प्रेरित नहीं करता।

मनोविनोदात्मक शैली के प्रयोगों में कोई सुसम्बद्धता या क्रमिकता नहीं है। विकृत-यथार्थ के हास्यात्मक दृश्य हैं।

(३) यथार्थवादी काव्य-दृष्टि का जो वातावरण इन प्रयोगशील कविताओं में रक्खा गया है उसका कोई 'वाद'-बद्ध या दृष्टिबद्ध उद्देश्य नहीं है। यह तो प्रयोग के निमित्त प्रयोग से जान पड़ते हैं। इनका लक्ष्य हास्य और व्यंग की हल्की चोट हो सकता है।

(४) यह प्रयोगशीलता कवि की मनःस्थिति के विकृत रूप को बतलाती है। कवि के मन और बुद्धि का सन्तुलन, नियमित और क्रमबद्ध तथा गतानुगतिक नहीं रहा है।

(५) भाषा के ऊबड़-खाबड़ प्रयोग, जिनमें अर्थ की अभिधेयता और शब्द की निरंकुशता लक्षित होती है, जो शायद काव्य-भाषा के शब्द नहीं हो सकते, उनको बलात्, बे सोचे-समझे किसी जगह पर प्रयुक्त कर दिया गया है।

● प्रयोगशील कविताओं की साहित्यिक विशेषता

हिंदी में प्रयोगवाद प्रतीकवाद का ही दूसरा नाम है। ऊपर लिखे कुछ तथ्यों के अनुसार विषयगत शैलीगत, छंदगत तथा भाषा की भूमि पर हम निराला की कतिपय कविताओं में प्रयोगशील दृष्टि देखते हैं। गद्यमय काव्य-पंक्तियाँ, अतुकांत छंद-विधान, लोकभाषा, मुहावरेदानी, अप्रचलित शब्द तथा देशज भाषाओं का प्रयोग, उर्दू फारसी से लेकर अंग्रेजी शब्दों तक का प्रयोग, अनिश्चित भाव-विस्तार, अभिधेयात्मक चित्रव्यंजना, दैनन्दिनी-प्रयोग-चर्या का व्यवहार, कटुता, रूक्षता, व्यंग्य, हास्य, ईर्ष्या, राग, द्वेष आदि का वैचारिक और वर्गगत स्वरूपांकन आदि की प्रयोगशीलता निराला के इस काव्य में मिलती है। 'अणिमा', 'कुकुरमुत्ता', 'बेला', 'नये पत्ते' उनकी नयी दृष्टि के परिचायक हैं, जिसमें सामाजिक चेतना की नयी-जागृति है। इस जागृति का नया लक्ष्य है। इस लक्ष्य का नया मार्ग है। इस मार्ग का नया रूप है और इस नये रूप की नई सृष्टि है निराला का प्रयोगशील काव्य।

निराला के परवर्ती गीतों का अध्ययन

● प्रस्तावना

निराला-काव्य में गीतों का विशेष स्थान है। उनकी जितनी काव्य-रचनायें प्रकाशित हुई हैं, कदाचित् 'कुकुरमुत्ता' और 'तुलसीदास' को छोड़कर; शेष सब में न्यूनाधिक संख्या में गीतों का भी चयन किया गया है। किन्तु ये दोनों काव्य-पुस्तकें एक ही लम्बी कविता के आधार पर बनी हैं, इसलिए इनमें स्फुट गीतों के संग्रह का अवकाश नहीं था। निरालाजी के दूसरे दो संग्रह 'बेला' और 'नये पत्ते' हैं, इनमें से 'बेला' में उर्दू गजल-शैली का प्रयोग किया गया है। 'गजल' भी एक प्रकार के गीत ही हैं, यद्यपि इन्हें निराला के अन्य गीतों की तुलना में नहीं रखा जा सकता, जो अधिक परिनिष्ठित संगीत की सृष्टि करते हैं। इसी प्रकार 'नये पत्ते' काव्य-संग्रह में प्रयोगात्मक शैली के कुछ गीत हैं, जिनमें वह सौष्ठव नहीं जो निरालाजी के हिन्दी-शैली के गीतों में है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि निराला का झुकाव गीतों की ओर प्रारम्भ से ही रहा है और अन्त तक बना रहा है; बल्कि यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि अपने अन्तिम वर्षों में निरालाजी प्रमुखतः क्या; एकान्त भाव से गीत ही लिखते रहे हैं। उनकी अन्तिम तीन कविता-पुस्तकें 'अर्चना' 'आराधना' और 'गीतगुंज' आद्यन्त गीतों से समन्वित हैं।

गीतों की सृष्टि अन्य काव्यरूपों की सृष्टि से भिन्न होती है। इसमें काव्य-कला के साथ संगीतकला का संयोग होता है। जब तक दोनों विधाओं का संपूर्ण और प्रौढ़ अम्यास न हो, यही नहीं; दोनों विधाओं को संजोकर, उन्हें समन्वित कर एक में रखने की शक्ति न हो, तब तक सफल गीत-सृष्टि नहीं हो सकती। निरालाजी ने स्वयं कहा है कि उनके कुछ गीत कवि सम्मेलनों या अन्य गोष्ठियों में गाकर की गई अदायगी से बहुत भिन्न हैं।^१ किसी तरह कविता को गाकर सुना देना एक

१ निराला : 'गीतिका' की भूमिका (पृ० १२)—कुछ गीत समय के दायरे से बाहर हैं। उनके लिए गायक का उचित निर्णय आवश्यक होगा। उनके भाव किस-किस रागिनी में अच्छी अभिव्यक्ति पायेंगे, यह मैंने गायक की समझ पर छोड़

बात है, किन्तु उसे संगीत-कला के माध्यम से उपस्थित करना और स्वीकृत रागरागिनियों में उन्हें बांधकर सुनाना दूसरी बात है। छंदों की सफल योजना भी सफल गीत का निर्माण करे, यह आवश्यक नहीं। हिन्दी में अधिकतर कवियों ने छंद-बद्ध गीत लिखे हैं पर उनमें छंद की प्रधानता है, गीत की नहीं। उन्हें गाकर सुनाने में छंद की समरूपता तो आ जायगी, पर गीत का स्वर-संभार नहीं आ सकेगा। उधर दूसरी ओर ऐसे संगीतज्ञ मिलते हैं जो संगीत के स्वरों का, रागरागिनी और तालों का निर्माण और निर्वाह तो कर लेते हैं, परन्तु जिनकी शब्दयोजना अत्यन्त शिथिल और निष्प्राण होती है। यहां संगीत-पक्ष प्रधान हो जाता है; गेयता ही लक्ष्य बन जाती है; पर काव्य के भावों और रसों का स्वतन्त्र रूप से प्रवेश नहीं हो पाता। हम मानते हैं कि संगीत स्वयं अपने में अपना साध्य है। वह एक स्वतन्त्र कला भी है। उसमें स्वरों की योजना से भावों और रसों की सृष्टि भी हो सकती है, और होती है; परन्तु जहाँ साहित्य और काव्य की चर्चा की जाती है, वहाँ संगीत उसका अंग बनकर ही आ सकता है। हम यहाँ कवि निराला के गीतों पर लिख रहे हैं, इसलिए हमारा प्रयोजन केवल संगीतशास्त्र से नहीं सध सकता। काव्य की भूमिका पर संगीत का प्रवेश जिस भाव या रस की सृष्टि में सहायक होता है, हमारा प्रयोजन उसी संगीत से है। हम यहां निराला के काव्य की समीक्षा कर रहे हैं। अतएव उनके गीतों में आए हुए संगीत को सहायक तत्व के रूप में ही ले सकते हैं।

निरालाजी ने स्वयं इस बात की चर्चा की है कि उनके गीतों में संगीत की रागरागिनियों का निर्वाह किस रूप में हुआ है। छंद-शास्त्र के नियमों के अनुसार निरालाजी ने मात्राओं की योजना पर पूरा बल दिया है। गीतिकाव्य के लिए यह अपेक्षित भी है। पर मात्राओं पर बल देते हुए भी संगीत-शास्त्र की दृष्टि से उनकी गेयता अबाधित रही है। यह अवश्य है कि जब किसी गीत को रागरागिनी में बाँधकर गाया जायगा, तो संगीत के आग्रह से संगीत की मात्रायें घटाई और बढ़ाई जा सकेंगी। जब किसी कविता को संगीत का स्वरूप दिया जायगा, तब इस प्रकार के संशोधन आवश्यक हो जायेंगे। ऐसा न होने पर काव्य-कला और संगीत-कला का समन्वय ही संभव नहीं होगा। एक उदाहरण देकर निरालाजी ने इस स्थिति को और भी स्पष्ट किया है—

‘प्राणधन को स्मरण करते

नयन झरते नयन झरते १

दिया है। पर यह निश्चित है कि ब्रजभाषा के पद गाने वालों के लिए साफ उच्चारण के साथ इन गीतों का गाना असम्भव है। वे इतने मार्जित नहीं हो सके।

१ निराला : ‘गीतिका’ की भूमिका से—पृ० ७।

ये राग धम्मर की १४ मात्राओं की पंक्तियाँ हैं, किन्तु जब इस गीत का अंतरा आता है, तब निरालाजी की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

स्नेह ओतप्रोत
सिन्धु दूर शशि प्रभा दृग
अश्रु ज्योत्स्ना स्रोत ।

ये तीनों पंक्तियाँ १४-१४ मात्राओं की नहीं हैं। पहली और तीसरी १०-१० मात्राओं की है। केवल दूसरी १४ मात्राओं की है। इन्हें संगीत में ढालते समय गायक को तीनों पंक्तियों को १४ मात्राओं में परिणत करके गाना होगा और वह इस प्रकार होगा^२—

२	१	२	२	२	२	२	१ — १४
स्ने	ह	ओ	त	प्रो	ओ	ओ	त

निरालाजी की इस व्याख्या से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि उनके गीतों को संगीत के साँचे में ढाला गया है। परन्तु यह संगीतज्ञ के अपने कौशल पर अवलंबित है कि वह छंद की मात्राओं को संगीत की भूमिका पर ले जाकर अभीष्ट रूप में उसका गान करे।

केवल छंदों की घटबढ़ को सुधारने-संवारने का कार्य ही पर्याप्त नहीं है। निरालाजी के कई गीतों में पंक्तियों के अंशों को आगे पीछे करके संगीतात्मक रूप देना पड़ता है। उनकी एक कविता है—

‘जग का एक देखा तार
कंठ अगणित, देह सप्तक
मधुर स्वर झंकार^३

इस गीत को यदि संगीत के माध्यम से गाना है, तो उसे बदलकर इस रूप में गाना होगा—

‘एक देखा। तार जग का।
कंठ अगणित। देह सप्तक
मधुर स्वर-झड़। कार जग का^४’

१ ‘गीतिका’ की भूमिका में निराला की व्याख्या—पृ० ७।

२ वही।

३ वही, पृ० ७।

४ ‘गीतिका’ की भूमिका में निरालाजी की व्याख्या—पृ० ८।

ऊपर के इन दो उदाहरणों से यह स्पष्ट होता है कि काव्य में उसके अपने भाव, भाषा और छंद सुरक्षित रहेंगे; फिर भी कवि का संगीत सम्बन्धी ज्ञान कविता को विशिष्ट रागरागिनियों में परिवर्तित कर सकेगा। इस प्रकार काव्य-सौन्दर्य की स्वतन्त्र रक्षा करते हुये संगीत का अतिरिक्त माधुर्य उसमें समाहित हो सकेगा और तब गेय पदों में साहित्य और संगीत का दुहरा आनन्द उपलब्ध होगा। निश्चय ही यह क्षमता उन्हीं कवियों में प्राप्त होगी, जो काव्य की मार्मिक भाव-योजना का अधिकार रखते हैं, पर साथ ही जिनमें संगीत की गहरी चेतना और ज्ञान भी सन्निहित है। निराला ऐसे ही एक गायक कवि हैं। तभी उनके गेय पदों में काव्यत्व की सम्यक योजना के साथ संगीत की भी समुचित अवतारणा हुई है।

यह तो काव्य-प्रक्रिया में संगीत-तत्त्व के संयोग की चर्चा हुई। हमें यह भी देखना है कि निराला के गीतों में संगीत के कैसे स्वरूपों की संसृष्टि पाई जाती है। भारतीय संगीत के संबन्ध में निरालाजी के अपने विचार हैं। उन्हीं विचारों के अनुरूप उन्होंने अपने गेय पदों में संगीत के स्वरों का आनयन किया है। निरालाजी की धारणा यह है कि भारतीय संगीत का सर्वश्रेष्ठ स्वरूप वैदिक ऋचाओं में पाया जाता है। उनकी दृष्टि में गायत्री मंत्र आदर्श संगीत का प्रतीक है, जिसमें भाव की मुक्ति के साथ शब्द और गीत की मुक्ति भी सन्निहित है।^१ प्राचीन ऋषि की मुक्त आत्मा की झंकार इस वेद-मंत्र में मिलती है। इसमें न तो छन्द का बन्धन है और न मात्राओं की गणना। फिर भी यह एक उत्तम भावोच्छास को आविर्भूत करता है। साथ ही संगीत के मुक्त किन्तु सशक्त स्वरूप का आकलन भी करता है। वेदों के पश्चात् संगीत का विकास संस्कृत साहित्य में हुआ है। निरालाजी का यह अनुमान है कि वदिक वाणी में संगीत का जो निर्वादि स्वरूप है, उसे ही छंद-ताल-वाद्य में बाँधकर संस्कृत भाषा के माध्यम से लोकानुरंजक बना दिया गया है। पहली वस्तु वैयक्तिक थी। दूसरी समुदायगत हो गई है। किन्तु तत्त्वतः दोनों में अधिक अंतर नहीं आया; परन्तु जब परवर्ती काल में लोकानुरंजन की सीमा इतनी बढ़ी कि उसमें एक प्रकार का स्त्रैण भाव आने लगा। तब संगीत भी अपने मुक्त स्वरूप की रक्षा न कर सका। मूल रागरागिनियों और तालों आदि में इस स्त्रैण तत्व का प्रभाव मुसलमानी काल में देखा जाता है, जब संगीत में नाना प्रकार की तानें प्रचलित हुई। संगीतज्ञों के अलग-अलग घराने बने। परन्तु निरालाजी का मत है कि किसी भी विद्या में जब

१ निराला : 'गीतिका' की भूमिका, पृ० १। "आर्य जाति का सामवेद संगीत के लिए प्रसिद्ध है, यों इस जाति ने वेदों में जो कुछ कहा, भावमय संगीत में कहा है। संगीत का ऐसा मुक्त रूप अन्यत्र उसलब्ध नहीं होता। गायत्री की महत्ता आज भी आर्यों में प्रतिष्ठित है। इसके नाम में ही संगीत की सूचना है। भाव और भाषा की ऐसी पवित्र झंकार और भी कहीं है, मुझे नहीं मालूम।"

इतने भेदोपभेद आ जाते हैं, इतनी रूपमत्ता आ जाती है, तब वह ह्लासोन्मुख हो जाती है और बाहर से रंगीनी रखते हुये भी, भीतर से खोखली पड़ जाती है। निराला की इस दृष्टि में सत्य की बड़ी मात्रा पाई जाती है। पाश्चात्य समीक्षकों ने भी रूपात्मकता के विकास के साथ-साथ भावतत्त्व की क्षीणता को साहित्य और कलाओं के इतिहास में स्वीकार किया है। अतएव निरालाजी मुक्त पौरुष तत्त्व के प्रेमी होने के कारण संगीत की इस तान-बहुल स्थिति से संतुष्ट नहीं थे।

संगीत के विकास-क्रम में निरालाजी ने देश-भाषाओं के संगीत को संस्कृत-संगीत से हीनतर माना है। उनका कथन है कि संस्कृत गीत-गोविन्द में संगीत का जो स्तर है, वह चंडीदास और गोविन्ददास जैसे देशभाषा के कवि-गायकों से उच्चतर है। 'गीतगोविन्द' में आये हुए शृंगार को आजकल के लोग अश्लील बताते हैं, किन्तु संगीत की भूमिका पर निराला उसकी अश्लीलता स्वीकार नहीं करते। साहित्य-रसिकों के लिए निराला का यह निर्देश सदैव ध्यान देने योग्य रहेगा।

हिन्दी के पुराने कवियों में निरालाजी कबीर, सूर, तुलसी और मीरा के संगीत के प्रशंसक हैं। कबीर में काव्यपक्ष उतना समृद्ध नहीं है; परन्तु ब्रह्म को निराकार और निर्गुण मानकर चलने के कारण उनके पदों में मुक्तभाव अधिक मात्रा में आये हैं। सूर और तुलसी सगुणोपासक थे, अतएव इस सीमा तक उनके गीतों में रूपात्मकता अधिक है। परन्तु काव्य की दृष्टि से अधिक समृद्ध होने के कारण इस रूपाधिक्य की क्षतिपूर्ति हो गई है। इसी कारण निराला, सूर और तुलसी के गीतों को कबीर के पदों से श्रेष्ठतर मानते हैं। मीरा को वे भारतीय संगीत की महान साधिका के रूप में स्वीकार कर उनके गीतों में उच्चतम सौन्दर्य की उपलब्धि देखते हैं।

आधुनिक युग में आकर भारतीय संगीत पर पश्चिमी प्रभाव पड़ने लगा। निराला इस प्रभाव को बुरा नहीं मानते, परन्तु वे भारतीय संगीत की राष्ट्रीय परंपरा के पोषक हैं और उन्हें इस बात का खेद है कि पश्चिम का समाज भारतीय संगीत का यथार्थ आकलन और आस्वादन करने में अक्षम रहा है। उन्होंने लिखा है कि इस का मूल कारण पश्चिम की अपनी सांस्कृतिक दृष्टि है। पश्चिमी समाज अधिक स्वच्छंदता-प्रिय है। वह भारतीय संगीत में स्त्रैणता देखता है, जिसे वह पसन्द नहीं करता। परन्तु निरालाजी का कथन है कि यह स्त्रैणता तो पिछले खेव के संगीत में आयी है। भारतीय संगीत में ऐसे अनेक राग और रागिनियाँ हैं जिनका पौरुष तत्त्व संसार के किसी पौरुष तत्त्व से टक्कर ले सकता है और उससे आगे भी बढ़ जाता है।^१ परन्तु

१ हमारे यहाँ भैरव, मालकोस, दीपक आदि रागों के जैसे स्वरूप चित्रित किये गये हैं, उन्हें देखकर कोई यह नहीं कह सकेगा कि इनमें स्त्रीत्व है, भैरव में तो पुरुषत्व का विकास इतना अधिक करके दिखाया गया है कि संसार में उस तरह का मस्त और दुनियाँ को तुच्छ समझने वाला पुरुष संसार की किसी भी

भारतीय संगीत का उचित प्रतिनिधित्व पश्चिम में नहीं हो पाया। आधुनिक युग में डी० एल० राय और रवीन्द्रनाथ ने पश्चिमी संगीत के तत्वों को अपनाया है; परन्तु उन्होंने भी भारतीय परम्परा की अवहेलना नहीं की है। वर्तमान युग में पश्चिमी संगीत के मिश्रण से भारतीय काव्य और संगीत का एक नया स्वरूप विकसित हो रहा है। निराला के गीत इसी विकासमान परम्परा की एक सशक्त कड़ी के रूप में देखे और परखे जा सकते हैं।

● गीतिकाव्य का स्वरूप

जिस प्रकार नाट्यकला में काव्य और अभिनय के उपकरण संयुक्त होकर एक नये प्रकार की कला-सृष्टि करते हैं, उसी प्रकार गीतिकाव्य में कविता और संगीत के उपकरण एकत्र होकर उसके नूतन स्वरूप का निर्माण करते हैं। नाटक की समीक्षा केवल साहित्यिक भूमिका पर नहीं की जा सकती। उसके विवेचन में रंगमंच के समस्त संभार, अभिनय की सारी विशेषताओं, नाट्य-दर्शकों के समस्त मनोभावों आदि का ध्यान रखना पड़ता है। उसी प्रकार गीतिकाव्य की विवेचना काव्य और संगीत की संयुक्त भूमि पर ही की जा सकती है। काव्य अपने विशुद्ध स्वरूप से आगे बढ़कर जब दृश्य-काव्य के रूप में उपस्थित होता है, तब उसे अनेक नई मर्यादाएँ ग्रहण करनी पड़ती हैं। संभव है, इस प्रक्रिया में कोई नाटक श्रेष्ठ काव्य भी बना रहे, पर इसके अतिरिक्त इसे कुछ और भी करना पड़ता है।^१

Allardyce Nicoll ने अपनी पुस्तक *Theory of Drama* में लिखा है कि उत्तम नाटक में उत्तम काव्य के गुण हो सकते हैं, पर उसमें उत्तम अभिनय के गुण भी होने चाहिये।^२ उसी प्रकार हम भी कह सकते हैं कि उत्तम

जाति में न रहा होगा। हमारे यहाँ ध्रुपद-धम्मर आदि तालों में स्त्रीत्व का तो कहीं निशान भी नहीं है। हमारे यहाँ मृदंग के बोल भी पुरुषत्व के उद्दीपक हैं। जब से राग-रागिनियों की खिचड़ी पकी, गजल-युग आया, तब से संगीत में स्त्रीत्व का प्रभाव बढ़ा है।

—निराला : रवीन्द्र-कविता-कानन, 'संगीतकाव्य' शीर्षक निबन्ध से,

पृ० १४२, १४३।

- 1 Already we have seen that, in order to judge the worth of a particular piece of dramatic art, the theatre, if not physically present, must be visualized, and that all endeavours have to be made in the reading of the play to imagine its production in a play-house, with scenery and histrionic interpretation of the parts.

—Allardyce Nicoll : *Theory of Drama*, P. 60.

- 2 It would be wrong, however, to speak merely of their poetical power, for the 'poetry' of a 'Hamlet' or an 'Othello' is not as

गीतिकाव्य में श्रेष्ठ काव्य गुणों के साथ-साथ श्रेष्ठ गीति-गुणों का समावेश भी आवश्यक है। अब हम देखना चाहेंगे कि श्रेष्ठ गीतिकाव्य के वे कौन से उपकरण हैं, जो इस उभयमुखी कला के लिए आवश्यक कहे जा सकते हैं।

सबसे पहले गीतिकाव्य में गीत का आकार आता है। सामान्यतः कविता के आकार की कोई सीमा नहीं है। पर गीतिकविता एक निश्चित सीमा के बाहर नहीं जा सकती। सामान्यतः एक गायक जितने समय तक अपना स्वर-संधान कर सकता है, उससे अधिक विस्तार गीत को नहीं मिल सकता। इसीलिये संसार के समस्त गीति-कवियों के पद २०-२५ पंक्तियों से अधिक बड़े नहीं हैं, बल्कि अधिकांश गीति-रचना उससे भी छोटी रहती है। आकार की इस लघुता का एक अन्य भी कारण है। वह है गीत में एक स्वतन्त्र और आत्मसंपूर्ण भाव का संयोजन। गीत में केन्द्रीकरण की इस आवश्यकता के कारण दीर्घ विस्तार या प्रसार नहीं हो सकता।

● गीतिकाव्य की भावसंपत्ति

जब हम जयदेव से आरम्भ होने वाले भारतीय गीतिकाव्य की भावसंपत्ति का आकलन करते हैं और विद्यापति से लेकर कबीर, सूर, तुलसी, मीरा और आधुनिक युग में भारतेन्दु तथा प्रसाद के गीतों तक फैली हुई हिन्दी की अशेष गीतसृष्टि का अवलोकन करते हैं, तो यह स्पष्ट होता है कि गीतों का मूलतत्त्व माधुर्य है जो संगीतकला की देन है। इसका द्वितीय तत्व भाव-परिष्कार या सौंदर्य-चेतना का है।^१ परिष्कार से हमारा आशय गीतों में आने वाले भावों के स्वच्छ सुसंस्कृत स्वरूप से है। यह भी संगीतकला का ही एक उपकरण है। किसी भी ऐसे पद का गायन नहीं किया जा सकता, जिसमें अधूरे या अपरिपक्व भाव आये हों। इसके साथ गीतिकाव्य में तल्लीनता की भूमिका भी रहती है। गीतों में टेक-प्रयोग तल्लीनता के आशय की ही सिद्धि करता है। इन्हीं कारणों से गीत में रसबोध या

the poetry of a *Paradise Lost* or a *Divine Commedia*. It is poetry applied to and ever kept subservient to, dramatic necessity."

—Allardyce Nicoll : *Theory of Drama*. P. 67.

- १ इसी तथ्य की पुष्टि पं० नन्ददुलारे वाजपेयी की 'गीतिका' की समीक्षा में आई हुई इन पंक्तियों द्वारा होती है—'सौंदर्य ही चेतना है, चेतना ही जीवन है, अतएव काव्य-कला का उद्देश्य सौंदर्य का ही उन्मेष करना है। मनुष्य अपने को चेतना-संपन्न प्राणी कहता है; पर वास्तव में वह कितने क्षण सचेत रहता है? कितने क्षण वह चतुर्दिक फैली हुई सौंदर्य-राशि का अनुभव करता है? वह तो अधिकांश आँखें मूंदकर ही दिवस-यापन करने का अभ्यस्त होता है। कविता उसकी आँखें खोलने का प्रयास करती है।' (पृ० १७)

आस्वादन का भी गंभीर योग रहा करता है। अन्य प्रकार की कवितायें तात्कालिक वैयक्तिक प्रतिक्रिया का परिणाम हो सकती हैं, परन्तु गीत का आधार ले लेने पर इन प्रतिक्रियाओं का वैयक्तिक पक्ष मिटा देना आवश्यक हो जाता है। इसका यह आशय नहीं कि गीतों में नवीनता नहीं होती। नई कल्पना-छवियों का तथा नूतन मानसिक उपादानों का योग नहीं होता। वह तो प्रचुर मात्रा में होता है, जैसे कि सूरदास के गीतों में; और विशेषकर उनके वात्सल्य-रस के गीतों में देखा जाता है, परन्तु काव्य और संगीत के समाहार के कारण गीतिकाव्य में अधिक सार्वजनीनता अपेक्षित होती है।

● गीतिकाव्य की भाषा

गीतिकाव्य की भाषा में सामासिकता का गुण आवश्यक है। सामासिकता से यहाँ हमारा आशय समासों की बहुलता से नहीं, बल्कि भाषा की मितव्ययिता से है। गीत में एक भी अनावश्यक शब्द नियोजित होने पर बिना खटके नहीं रह सकता। क्लिष्ट या अस्पष्ट आशय के शब्द गीतों के लिये हानिकारक होते हैं। कबीर जैसे कवि को भी जो बहुत बड़े भाषाविद् नहीं थे, अपने गीतों में अत्यंत व्यंजक प्रतीक-शब्दों का प्रयोग करना पड़ा है। किसी भी प्रकार का अपरिचित शब्द या अर्थ गीतिकाव्य की सबसे बड़ी बाधा है। भाषा में कृत्रिम अनुप्रासों या अन्य अलंकरणों का योजन भी गीतिकाव्य में सहा नहीं हो सकता। शब्दालंकार और यमक आदि अंततः काव्यचमत्कार के तत्त्व हैं। संगीत के माध्यम से आनेवाली निगूढ़ भावाभिव्यक्ति के लिये वे रोड़े का ही काम कर सकते हैं। परन्तु यदि अनुप्रासों और शब्दालंकारों का योग सहज और स्वाभाविक रीति से किया जाता है, जिससे अर्थ की उपलब्धि में लेशमात्र भी कठिनाई नहीं होती, तो ऐसी अनुप्रास-योजना से गीत का काव्यात्मक चमत्कार बढ़ जाता है।

भरा हर्ष बन के मन नवोत्कर्ष छाया

अथवा— पास ही रे हीरे की खान

खोजना उसे कहाँ नादान'

जैसी गीत-पंक्तियों में 'हर्ष' और 'नवोत्कर्ष' तथा 'ही रे' और 'हीरे' की शब्दालंकरणियाँ काव्य-सौंदर्य में वृद्धि ही करती हैं।

● निराला के आरम्भिक गीत

'परिमल' और 'गीतिका' में निरालाजी के आरम्भिक गीत संकलित हैं। 'परिमल' में गीतों की संख्या बीस से अधिक नहीं है। 'गीतिका' में १०१ गीत हैं। 'परिमल' के गीतों में कुछ तो ऋतु सम्बन्धी हैं, कुछ शृंगारिक गीत हैं, और कुछ

गीतों में उद्बोधन और प्रार्थना की झंकार है। 'सेवा' और 'पतनोन्मुख' शीर्षक गीत करुणरस की व्यंजना करते हैं। इस प्रकार आरम्भ से ही निरालाजी के गीतों में भाव-वैविध्य की सूचना मिलती है। परन्तु सभी गीतों में आलंकारिक चित्रों की प्रमुखता है। निराला अपनी गीतकला को सँवारने में संलग्न हैं। उनकी प्रसन्न और आकाश-गामिनी मुद्रा सबमें व्याप्त है।

बहा हृदय-हर प्रणय समीरण
छोड़ छोड़ नभ ओर उड़ा मन,
रूप राशि जागी जगती तन
खुले नयन भाये'

'गीतिका' के गीतों में 'परिमल' के गीतों का ही भाव-विस्तार है। दोनों की आत्मा एक सी ही है। शृंगारिक भावना का अधिक विस्तार हुआ है। विरह और मिलन के विविध भाव समाहित हुए हैं। श्रुतुगीतों में भी शृंगारिकता पूरी मात्रा में उपस्थित है।

'जागो जीवन धनिके', 'छोड़ दो जीवन यों न मलो', 'जला दे जीर्णशीर्ण प्राचीन', 'चाल ऐसी मत चलो' जैसे गीतों में सामाजिक जीवन के पक्ष अधिक स्पष्टता से उभर सके हैं। 'भारति जयविजय करे' जैसे राष्ट्रगीत भी लिखे गये हैं। परन्तु गीतिका में निराला का झुकाव आत्मशोध और आत्मसंस्कार की ओर भी कम नहीं है। उनके प्रार्थना-गीतों में जहाँ एक ओर उत्साह और नई कार्यनिष्ठा की चेतना है, वहीं दूसरी ओर आत्मनिवेदन की भावना भी भरपूर लक्षित होती है। 'गीतिका' में कतिपय दार्शनिक गीत भी आये हैं। 'जग का एक देखा तार', 'कौन तम के पार', 'पास ही रे हीरे की खान' गीतों में, कवि के जीवन-दर्शन की झांकियाँ मिलती हैं। यों प्रायः सभी गीतों में फिर वे किसी भाव की क्यों न हों, दर्शन का पुट विद्यमान है। मानव-छवियों में असीम सौंदर्य की प्रतिच्छवि देखी गई है। 'मार दी तुझे पिचकारी', 'नयनों के डोरे लाल गुलाल भरे, खेली होली' जैसी कविताओं में उद्दाम शृंगार के चित्र भी आये हैं। परन्तु वे विनोद की हल्की आभा से अनुरंजित है।

'गीतिका' के गीतों में विविध भावों की छटा होते हुए भी सौन्दर्य और शृंगार की ही प्रमुख छवियाँ अंकित हुई हैं। सब में कवि का प्रसन्न, कला-प्रिय और सौन्दर्यान्वेषी व्यक्तित्व दिखाई पड़ता है। इन गीतों की भाषा सुसज्जित, प्रवाहमयी और संस्कृत के सौष्ठव से समलंकृत है। जान पड़ता है कि कवि के पास छंदों की अपार राशि विद्यमान है। 'गीतिका' में बूढ़े पर भी बिल्कुल समान दो छंद नहीं मिलेंगे। गीतों की सृष्टि में प्रायः कविगण छंदों की बार-बार आवृत्ति करते हैं।

परंतु निराला इसके अपवाद हैं। इसका कारण कदाचित् यह है कि उनके गीतों में शास्त्रीय रागों की कठोरता नहीं है। गायक को स्वतन्त्रता है कि वह किसी भी राग में इन गीतों को बाँध ले। संगीतकला की दृष्टि से इसे हम नया प्रसार भी कह सकते हैं; यद्यपि शास्त्रज्ञ इसमें परिनिष्ठित रागों की अवहेलना भी देख सकते हैं। गीतों के निर्माण में निरालाजी ने पश्चिमी संगीत की भूमिकाएँ भी अपनाई हैं। सर्वत्र सम का ध्यान न रखकर भाव की पूर्णता और प्रसरणशीलता का अधिक निर्वाह किया है।

अस्ताचल रवि, जल छल-छल छवि
स्तब्ध विश्व कवि, जीवन उन्मन,
मंद पवन बहती सुधि रह-रह
परिमल की कह कथा पुरातन १

चार पंक्तियों में समाप्त होने वाले भाव को टेक की भांति काम में लाना विदेशी संगीत की ही शैली कही जायगी। इसका संगीत आर्कस्ट्रा की शैली का सा संगीत है। भारतीय गीतकार इसे अटपटा ही मानेंगे। 'परिमल' में भी—

एक दिन थम जायगा रोदन
तुम्हारे, प्रेम-अंचल में,
लिपट स्मृति बन जायंगे कुछ कन—
कनक सींचे नयन जल में २

गीत भी आसानी से भारतीय पद्धति पर नहीं गाया जा सकता।

● 'अनामिका' के गीतों में भाव परिवर्तन

'गीतिका' के पश्चात् निरालाजी की दूसरी 'अनामिका' में जो सन् ३८ में प्रकाशित हुई, कुछ पुराने गीतों के साथ कुछ ३५-३६ के गीत संग्रहित हैं। इन पिछले गीतों में निरालाजी का भाव-परिवर्तन स्पष्ट दिखाई देने लगा है। पहले ही गीत में जो उनकी अपनी हस्तलिपि में मुद्रित हुआ है, निराला के अन्तःप्रयाण की सूचना मिलने लगती है।

मुदें पलक, केवल देखें उर में
सुनें सब कथा परिमल-सुर में,
जो चाहें, कहें वे, कहें । ३

१ निराला : गीतिका, गीत-६१, पृ० ६८ ।

२ निराला : परिमल 'निवेदन', पृ० ३२ ।

३ निराला : अनामिका-हस्तलिपि में मुद्रित गीत ।

इस गीत की भावना में एक द्विधात्मकता है^१ एक ओर जग को निर्भय दृष्टि से देखने का और अतिशय सुख के सागर में बहने का उल्लेख है, तो दूसरी ओर सामाजिक संघर्षों को सहने और पलकें मूंदने का भी संकेत है। निरालाजी के आरम्भिक गीतों में इस प्रकार का द्विधात्मक भाव-संयोजन नहीं दिखाई देता। इसी प्रकार आवेदन (सन् ३७) 'फिर सँवार सितार लो' गीत में समस्त बाह्य प्रकृति को स्वप्न की भांति सज्जित देखने की अभिलाषा व्यक्त की गई है, जो निराला की पूर्ववर्ती उल्लासमयी भाव भूमिका के अनुरूप नहीं है। यद्यपि 'विनय' और 'उत्साह' शीर्षक गीतों में पूर्ववर्ती गीतों का सा शब्द-चयन है, फिर भी प्रारम्भिक गीतों का प्रवाह इनमें लुप्त होने लगा है और उसके बदले एक गम्भीरता आने लगी है। 'उक्ति' शीर्षक गीत में निरालाजी प्रथम बार वैयक्तिक आत्मनिवेदन की भूमिका पर आते हैं—

कुछ न हुआ, न हो
मुझे विश्व का सुख-श्री यदि केवल
पास तुम रहो^१

इसके बाद ही निराला का वह 'मरण-दृश्य गीत' आता है जिसे हम उनके परवर्ती काव्य की आरम्भिक तिथि का आधार मानते हैं। इसकी रचना ५-१-३८ को हुई थी—

दिये थे जो स्नेह चुंबन,
आज प्याले गरल के बन
कह रही हो हँस 'पियो-प्रिय
पियो प्रिय निरुपाय'^२

यद्यपि इस गरलपान को कवि ने अमृत मानकर पीने का प्रयत्न किया है, परन्तु इस गरल-पान ने निराला की गीत-दिशा बदल दी है, यह स्वीकार करना ही होगा। यहीं से निराला के गीतों का परवर्ती चरण प्रारम्भ होता है।

● निराला के परवर्ती गीत

अपने परवर्ती गीतों के सम्बन्ध में निरालाजी ने 'अणिमा' और 'अर्चना' की भूमिका में दो छोटे वक्तव्य दिए हैं। 'अणिमा' में वे लिखते हैं—'प्रायः सभी गीतों की भाषा सरल है। गाने की अनुकूलता और स्वर के सौन्दर्य और श्रुतिमधुरता के

१ निराला : अनामिका—उक्ति, (रचना १६-५-३८) पृ० १६०।

२ निराला—अनामिका—मरणदृश्य, (रचना ५-१-३८) पृ० १३५।

विचार से पुस्तिका के प्रारम्भिक गीत मुझे ज्यादा पसन्द हैं। मेरे कुछ साहित्यिक मित्रों ने बाद के गीतों की तारीफ की है। उनकी भाषा गद्य के अनुसार है।^१

इस वक्तव्य से दो तथ्यों पर प्रकाश पड़ता है। पहले का सम्बन्ध निरालाजी की रुचि से है। 'अणिमा' के आरम्भ में जो गीत हैं, वे 'परिमल' और 'गीतिका'-शैली के हैं। स्वरसौन्दर्य और श्रुतिमधुरता के कारण वे निरालाजी को प्रिय हैं। यहाँ श्रुतिमधुरता से निरालाजी की संस्कृत पदावली का ही आशय लिया जा सकेगा। माधुर्य का गुण भाषा में तभी आता है, जब उसमें उच्चारण का परिष्कार और सौष्ठव हो। बिना संस्कृत की सहायता लिये खड़ी बोली में यह तत्व आना कठिन है। मधुरता का दूसरा उद्गम लोकभाषा की अपनी मिठास है परन्तु खड़ी बोली में यह मिठास लोक-भाषा के माध्यम से कम ही आई है। कदाचित् इसीलिये अधिक सरल भाषा में लिखे हुए अपने गीतों को निरालाजी 'गद्य के अनुसार, कहते हैं। इसका आशय यह है कि 'अणिमा' के गीतों में वे अपनी दृष्टि से लोकभाषा का माधुर्य खड़ी बोली में नहीं ला सके हैं, यद्यपि इसके लिए उन्होंने निरन्तर प्रयत्न किया है, और आगे चलकर सफल भी हुए हैं।

'अर्चना' की स्वयोक्ति में निरालाजी ने फिर इस प्रश्न को उठाया है और आसान खड़ी बोली में गीत-रचना की कठिनाई का उल्लेख किया है। वे लिखते हैं, 'प्रस्तुत गीतों में तद्वत् सफलता के न होने का कारण खड़ी बोली का पाठ; इसलिये गले से सफलतापूर्वक न उतर जाना है। साधारणजन देहातों में यह भाषा नहीं बोलते। उनके गले और आधुनिक शरीर की नेमि अभी तक मंजूर मसृण नहीं हुई है। खड़ी बोली की गाड़ी के और चलते रहने की आवश्यकता है। ये गीत जैसे उसी की पूर्ति करते हैं।'^२

संस्कृत का साहचर्य छोड़ देने के पश्चात् खड़ी बोली के गीतों के सामने यह प्रश्न अनिवार्य रूप से आता है कि इन गीतों में गीत-माधुर्य किस प्रकार आये ? ब्रज-भाषा और अवधी के गीतों के लिये तो हिन्दी भाषियों के कान अभ्यस्त हैं और वे उन गीतों का रस भी आसानी से लेते हैं। परन्तु खड़ी बोली में कई वर्ण ऐसे हैं जो हिन्दी की सामान्य जनता को अभ्यस्त नहीं हैं। खड़ी बोली के 'ण' का उच्चारण उन्हें कर्ण-कटु प्रतीत होता है, 'परन्तु भव-अर्णव की तरणी तरुणा' में अनेकशः आये हुये 'ण' के प्रयोग निराला के गीत में विद्यमान हैं। ऐसे उच्चारणों को खड़ी बोली से बहिष्कृत भी नहीं किया जा सकता और बहिष्कृत न करने पर हिन्दी के सामान्य श्रोताओं को वह ग्राह्य भी नहीं होता। इस द्विधात्मकता से किस प्रकार मुक्ति मिले, यह समस्या खड़ी बोली के गीतकार निराला के सामने थी। जैसा कि निरालाजी ने

१ निराला : अणिमा की भूमिका।

२ निराला : अर्चना की 'स्वयोक्ति'।

कहा है, खड़ी बोली की गाड़ी का अधिकाधिक चलीते रहना और हिन्दी पाठकों के कानों का उनसे अभ्यस्त होते जाना इस द्वंद्व का एकमात्र उपचार है। निरालाजी ने प्रयत्न किया है कि वे सरल खड़ी बोली में लिखे गये अपने परवर्ती गीतों में स्वरों का अधिकाधिक संगीत भर दें, ताकि उच्चारण की कठिनाइयाँ और कानों का अभ्यास क्रमशः तिरोहित हो जाय।

● परवर्ती गीतों का वर्गीकरण

द्वितीय 'अनामिका' के कुछ संक्रांतिकालीन गीतों को छोड़ देने पर (जिनकी चर्चा हम ऊपर कर चुके हैं) 'अणिमा' 'अर्चना' 'आराधना' और 'गीतगुंज' 'संग्रहों में उनके गीतों की संख्या २६८ तक पहुँचती है। विश्वसनीय वक्तव्यों से ज्ञात होता है कि उनके परवर्ती काल के ६५ गीत अब तक अप्रकाशित हैं।^१ इन अप्रकाशित गीतों का विवरण हम नहीं दे सकेंगे। प्रकाशित गीतों में विनय, प्रार्थना या भक्ति के १०० गीत, आत्मनिवेदन या वैयक्तिक वेदना से संबन्धित ५१ गीत, ऋतुवर्णन के ४६ गीत, शृंगारिक भावना के २५ गीत, प्रयोग और प्रगति संबन्धी १९ गीत, दार्शनिक या आध्यात्मिक ८ गीत और १८ स्फुट गीत हैं। इन परवर्ती गीतों के विषयगत वर्गीकरण के साथ जब हम 'परिमल' और 'गीतिका' के पूर्ववर्ती गीतों की विषयगत तुलना करते हैं, तो यह स्पष्ट दिखाई देता है कि विषय प्रायः समान होते हुये भी उनके अनुपात में बहुत अन्तर है, जब कि 'परिमल' 'गीतिका' और दूसरी 'अनामिका' के, ३५ के पूर्व के गीतों में जिनकी संख्या १२२ है। (परिमल में १७, 'गीतिका' में १०१ दूसरी 'अनामिका' में ६४) शृंगारिक गीत सर्वाधिक हैं और तत्पश्चात् ऋतुगीत, दार्शनिक गीत, प्रार्थना, संकल्प और कर्मण्यता के गीत गाते हैं। तब परवर्ती गीतों में दूसरी 'अनामिका' के १८ गीतों को छोड़कर शेष २६८ गीतों का अनुपात ऊपर दिया गया है। इस विषयगत वर्गीकरण से ही निरालाजी के पूर्ववर्ती और परवर्ती गीतों की भावभूमिका अन्तर स्पष्ट हो जाता है।

१ (क) श्री रामकृष्ण त्रिपाठी का लेख 'मेरे पिता निराला'- साप्ताहिक 'हिन्दुस्तान' ११ फरवरी ६२-"मेरे स्वर्गीय पिता कई अप्रकाशित पुस्तकें छोड़ गये हैं। जो उनके जीवनकाल में नहीं छप सकीं। जिनमें से एक तो ६५ गीतों का संग्रह है, हिन्दी-साहित्य को उनकी अन्तिम देन है और श्री श्रीनारायण चतुर्वेदी के पास सुरक्षित है।"-पृ० ५०।

(ख) डा० शिवगोपाल मिश्र : 'निरालाजी का काव्य-साहित्य' .लेख- निराला' पत्रिका, बसंतपञ्चमी, १९६२-पृ० १९

"इधर उन्होंने कुछ गीत और भी लिखे थे, परन्तु वे इस संग्रह (गीतगुंज) में संकलित नहीं हो पाये।"

२ देखिये-इस प्रबन्ध का विस्तृत परिशिष्ट।

‘अणिमा’ ‘अर्चना’ ‘आराधना’ और ‘गीतगुंज’ संग्रहों में, जो निरालाजी की परवर्ती काल की रचनायें हैं, प्रायः १०० गीत विनय, प्रार्थना, भक्ति या स्तवन के हैं। इन भक्तिगीतों के संबन्ध में निरालाजी ने ‘अर्चना’ की भूमिका में लिखा है “इनका अंतरंग विषय यौवन से अतिक्रान्त कवि के परलोक से सम्बद्ध है, इसलिए यहां सम्मति का फल निष्काम में ही होगा।”^१ निरालाजी के इन वाक्यों को ही लेकर हिन्दी के कुछ समीक्षकों ने इन्हें परंपरागत भक्ति-काव्य के स्तर पर रख कर देखा है, परन्तु निराला का आशय निष्काम भावना के आग्रह से है। परलोक शब्द से वे केवल इस लोक की बहिर्मुखी प्रवृत्तियों का निषेध कर रहे हैं। हमारी समझ में इन गीतों में शांतरस की योजना का ही लक्ष्य है। निराला का कवि-व्यक्तित्व यहाँ आकर पूर्ण निःसंग हो गया है और वे सांसारिक वैषम्यों का स्पष्ट विरोध न कर सब कुछ उस पराशक्ति पर छोड़ देते हैं, जो इस विश्व की नियामिका है। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि निराला इस लोक के परे किसी परलोक की साधना में संलग्न है। एक अद्वैतवादी कवि के लिए लोक और परलोक का द्विधात्मक या दुहरा पक्ष रह भी नहीं सकता। हम यह अवश्य देखते हैं कि इन विनय-गीतों में निरालाजी प्रथम पुरुष का प्रयोग करते हैं। जिन गीतों में वे अपनी निजी वेदना को व्यक्त करते हैं और उक्त वेदना के निवारण का आश्वासन मांगते हैं, वे भले ही वैयक्तिक गीत कहे जा सकते हैं, पर उनके अंतरंग में भी एक समष्टिगत भावना विद्यमान है। किन्तु इसके अतिरिक्त निरालाजी के ऐसे विनयगीत भी हैं, जिनमें प्रथम पुरुष के माध्यम से सृष्टि मात्र की मंगल-कामना की गई है।

हिम के आतप के तप को झुलसो
नाम-वारि के वारिष हुलसो
भीगे कठिन घटा निष्पावन,
चले चतुर्दिक् हल अभिभावन,
बोये बीज सीझ कर उलसो।^२

इन पंक्तियों में कवि की प्रार्थना है कि नाम की शक्ति से संसार के हिम और आतप का ताप नष्ट हो जाय। अपवित्र धरा आर्द्र हो उठे। नई कृषि लहलहा उठे, जो नवीन सांस्कृतिक बीज युग भूमिका पर बोये गये हैं, वे विशद रूप में अंकुरित और पुष्पित हों।

जहाँ केवल आराध्य की रूप-छवि का वर्णन है वहाँ भी उस छवि का आनन्द कोई व्यक्ति विशेष नहीं लेता; सारा संसार लेता है।

१ निराला : अर्चना की ‘स्वयोक्ति’।

२ निराला ; आराधना-गीत-२६ (रचना- १४-११-५२)

जावक जय-चरणों पर छाई
 पलक-पलास डाल कलि आई ।
 थोक अशोक-कोकनद फूले,
 मधु के मद भौरे दिक् भूले,
 मानव के मन जीवन तूले,
 ऋतु की ऋतु अबनी भर आई ।^१

जिनके चरणों में रक्त जावक की अहगाई छापी हुई है और जिसकी श्रीशोभा को देखकर मनुष्यों की पलकें पलास की डाल की भाँति खिल उठी हैं। सारी प्रकृति में आमोद भर गया है। मनुष्यों के मन नई जीवनशक्ति से आपूरित हो गये हैं। यहाँ भी दिव्यशक्ति का रूप-सौंदर्य किसी व्यक्ति विशेष को नहीं, समस्त सृष्टि को आमोदित करता है। जब-जब निरालाजी अपने भीतर किसी शून्यता का अनुभव करते हैं और रिक्तता को भरने के लिए, आत्मशक्ति का आवाहन करते हैं, तब-तब वे प्रकृति को भी उसी शून्यता में रंगी पाते हैं और जब दिव्यशक्ति की करुणा उन पर होती है, तो सारी प्रकृति भी उस करुणा की अधिकारिणी बनती है। निरालाजी अनुभव करते हैं कि संसार में जहाँ कहीं सत्य है, सुकृति है, उर्वरता है, वहाँ सर्वत्र उसी अनन्त शक्ति का निवास है।

सत्य पाया जहाँ जग ने, दान तेरा ही वहाँ है।

जहाँ भी पूजा चढ़ी है, मान तेरा ही वहाँ है।

×

✱

×

जिस प्रवर्षण भूमि उर्वर, जिस तपन मरु धूम्र धूसर,

जिस पवन लहरा, दिगन्तर, ज्ञान तेरा वहाँ है ।^२

ऊपर के कतिपय उदाहरणों से यह अनुमित होता है कि निरालाजी की आध्यात्मिक चेतना अन्तरमुखी या वैयक्तिक नहीं है। निराला का आराध्य सगुण और निर्गुण दोनों है और दोनों से परे भी है। नेति-नेति कह कर संकेतित किया गया है। वह न केवल निर्गुण है और न सगुण। मनुष्य की बुद्धि और धारणा में आने वाले समस्त स्वरूप सीमित हैं और वे उस उत्तम तत्व का पूर्णता में आकलन नहीं कर सकते। उनकी तत्व संबंधी कल्पना इस प्रकार है—

पूछा जग ने वह राम कौन
 बोली विशुद्धि जो रही मौन,
 वह जिसके इन, न ड्योढ़-पीन,
 जो वेदों में है सत्य, साम ।

१ निराला : आराधना-गीत-४०, (रचना-१६-११-५२)

२ निराला : आराधना गीत-३५ (रचना-१५-११-५२)

वह सूर्यवंश सम्भूत-तभी,
जीवन की जय का सूत तभी,
कृष्णार्जुन हारण पूत तभी,
जो चरण विचारण बिना दाम ।^१

कहीं-कहीं निरालाजी ने पुराने भक्त कवियों की तरह विशुद्ध भक्ति-प्रेरित गीत भी लिखे हैं, जिनमें भजन, कीर्तन और जप आदि के भाव भी आये हैं ।

काम रूप हरो काम,
जपू नाम, राम, राम ।^२

अथवा

हरि का मन से गुण गान करो,
तुम और गुमान करो, न करो ।
स्वर गंगा का जलपान करो,
तुम अन्य विधान करो, न करो ।
निशि वासर ईश्वर ध्यान करो,
तुम अन्य विमान करो, न करो ।
ठग को जग-जीवन-दान करो,
तुम अन्य प्रदान करो, न करो ।^३

एक अन्य गीत में श्याम की छवि को सूरदास की भाँति जगत के समस्त रूपों में व्याप्त दिखाया है ।

जिधर देखिये, श्याम विराजे,
श्याम कुंज, वन, यमुना श्यामा,
श्याम गगन, घन-वारिद गाजे ।
श्याम धरा, तृण-गुल्म श्याम हैं
श्याम सुरभि-अंचल दल साजे ।^४

पर, इस प्रकार के पुरानी शैली के गीत उन्होंने अधिक नहीं लिखे हैं और इन्हें हम उनकी गीत-सृष्टि का एक आनुवंशिक अंश ही कह सकते हैं । कहीं-कहीं निरालाजी अपने परवर्ती गीतों की सरल शैली को छोड़कर क्लिष्ट सन्दाबली का प्रयोग भी करते हैं । परन्तु ऐसे गीत संख्या में नगण्य हैं—

१ निराला : आराधना-गीत-२०, (रचना १८-६-५२)

२ वही, गीत, २०, (रचना १३-६-५२)

३ निराला : अर्चना-गीत, ४४ (रचना २४-१-५०)

४ निराला : गीतगुंज-गीत १२ (रचना १५-८-५४)

जलद-पयोधर-भास,
रवि-शशि-तारक-हारा,
व्योम-मुखच्छवि सारा ।
शतधारा पथ-हीना ।
ऋषिकुल-कल-कण्ठ स्तुति,
दिव्य-शस्य-सकलाहुति,
निगमागम-शास्त्र श्रुति
रासभ-वासव-वीणा^१

कहीं वे अत्यंत छोटे छंद में गीत रचना कर अपनी आलंकारिक शक्ति का परिचय देते हैं—

गत शत पथ पर
निर्जर रथ पर
तिमिर तीर हर तरुणे ।
निःसंशय क्षय,
हँसा पराजय;
रुका काम, भय, करुणे ।^२

सामान्यतः निराला के विनय, प्रार्थना और भक्ति-गीतों का यही विवरण है।

● (२) आत्मपरक गीत

निरालाजी के विनय और भक्तिपरक गीतों से मिलती जुलती भावधारा के उनके आत्मपरक गीत हैं। अंतर करने के लिये हम उन गीतों को आत्मपरक कहते हैं, जिनमें कवि ने अपने वैयक्तिक सुख-दुख या आनन्द-विषाद की भावना व्यक्त की है। यद्यपि यह भावना अंततः आत्मनिवेदन या वैयक्तिक शरणागति से ही संबद्ध होने के कारण एक अर्थ में विनय-भावना भी कही जा सकती है; परन्तु जब कि निरालाजी के विनय और भक्तिपरक गीतों में लोक-जीवन के संस्कार का भाव निहित है, तब इन आत्मपरक गीतों में निरालाजी अधिकतर अपनी निजी वेदना और कष्टों तथा यत्र-तत्र अपनी आत्मिक शान्ति और आह्लाद का प्रकाशन करते हैं। जहाँ वे अपनी ढलती हुई उम्र, गिरते हुए स्वास्थ्य का और अपने एकाकीपन का वर्णन 'मैं अकेला' 'स्नेह निर्झर बह गया है' जैसे गीतों में करते हैं, तो दूसरी ओर 'आज मन पावन हुआ है' तथा 'जननि मोहमयी तमिस्रा दूर मेरी हो गयी है' जैसी पंक्तियों में वे अपनी आत्मिक सुखशान्ति और निर्वेद का भी वर्णन करते हैं।

१ निराला : अर्चना-गीत ६१ (रचना ६-२-५०)

२ निराला : आराधना-गीत ६० (रचना २३-१-५०)

कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं—

आत्मव्यथा—

मैं अकेला
देखता हूँ, आ रही
मेरे दिवस की सान्ध्य बेला ।
पके आधे बाल मेरे,
हुए निष्प्रभ गाल मेरे,
चाल मेरी मन्द होती आ रही,
हट रहा मेला ।^१

शारीरिक जीर्णता— स्नेह-निर्झर बह गया है ।

रेत ज्यों तन रह गया है ।
आम की यह डाल जो सूखी दिखी
कह रही है—अब यहाँ पिक या शिखी
नहीं आते, पंक्ति मैं बह हूँ लिखी
नहीं जिसका अर्थ—
जीवन दह गया है ।^२

मानसिक प्रसन्नता— आज मन पावन हुआ है,

जेठ में सावन हुआ है ।
अभी तक दुःख बन्द थे ये,
खुले उर के छन्द थे ये,
सजल होकर बन्द थे ये,
राम अहिरावण हुआ है ।^३

दार्शनिक शान्ति— जननि, मोहमयी तमिस्रा दूर मेरी हो गयी है ।

विश्व-जीवन की विविधता एकता में खो गई है ।^४

कुछ गंभीरता से इन आत्मपरक गीतों को देखने पर यह प्रकट होता है कि निरालाजी के ये गीत क्रमशः उनके व्यक्तित्व के गहन और व्यथामय अनुभवों से अधिकाधिक मार्मिक होते गये हैं, यद्यपि ये गीत अंततः प्रार्थनापरक होने के कारण एक आध्यात्मिकता, आस्था और आश्वासन का प्रश्रय लिये हुए हैं । इनकी तुलना

१ निराला : अणिमा—पृ० २० (रचना, ४०)

२ निराला : अणिमा—पृ० ५५ (रचना, ४२)

३ निराला : आराधना-गीत १० (रचना, २६-८-५२)

४ निराला : अणिमा—पृ० ६२ (रचना, ४२)

निराला और निरनिशय विषाद-मूलक कतिपय नूतने कवियों के गीतों से नहीं की जा सकती । एक मार्मिक आत्मपरक गीत इस प्रकार है—

बाँधो न नाव इस ठाँव, बन्धु !
 पूछेगा सारा गाँव बन्धु !
 वह हँसी बहुत कुछ कहती थी,
 फिर भी अपने में रहती थी,
 सबकी सुनती थी, सहती थी,
 देती थी सबके दाँव बन्धु !^१

यहाँ निरालाजी अपनी वैयक्तिक अनुस्मृति से उस प्रेयसी का वर्णन करते हैं जो संकीर्ण, सामाजिक बन्धनों में बँधकर भी अपने प्रेम का निर्वाह कर सकी है। एकदम वैयक्तिक संवेदना लिये हुए अनेक मर्मस्पर्शी गीतों में से केवल दो के उदाहरण नीचे दिये जाते हैं—

क्यों मुझको तुम भूल गये हो ?
 काट डाल क्या, मूल गये हो ।
 नहीं ज्ञात, उत्पात हुआ क्यों ?
 ऐसा निष्ठुर घात हुआ क्यों,
 विमल-गात अस्नात हुआ क्यों,
 बढ़ने को प्रतिकूल गये हो ?^२
 × × ×

निबिड़ विपिन, पथ अराल;
 भरे हिंस्र जन्तु-व्याल ।
 अंधकार के दृढ़ कर
 बँधा जा रहा जर्जर
 तन उन्मीलन निःस्वर,
 मन्द-चरण मरणताल ।^३

स्पष्ट है कि इन पंक्तियों में निराला के वैयक्तिक कष्ट, पीड़ा और उनसे मुक्ति पाने की आहत अभिलाषा ही व्यक्त हुई है। इन गीतों में करुण रस की सशक्त और मार्मिक अभिव्यंजना हो सकी है।

जिन गीतों में निरालाजी का स्वर अधिक वैयक्तिक भूमि पर मुखरित हुआ है, वहाँ या तो कवि ने अपने विषण्ण मन के लिये उपचार और संबल

१ निराला : अर्चना-गीत ३७ (रचना २३-१-५०)

२ निराला : अर्चना-गीत ५४ (रचना २५-१-५०)

३ निराला : अर्चना-गीत ४० (रचना २३-१-५०)

चाहा है अथवा नये प्रकाश की याचना की है, या नैतिक बल और साहस की माँग की है ।

गीत गाने दो मुझे तो
वेदना को रोकने को
चोट खाकर राह चलते
होश के भी होश छूटे,
हाथ जो पाथेय थे, ठग
ठाकुरों ने रात लूटे
× × ×

बुझ गई है लौ पृथा की,
जल उठो फिर सींचने को ।^१

निराला के ये गीत कहीं भी आत्मपराजय के परिचायक नहीं हैं । अधिक से अधिक वे हारे हुये मन के लिये एक छाया या आश्वासन का संधान करते हैं ।

● (३) ऋतु और प्राकृतिक गीत

निराला के परवर्ती गीतों की यह उल्लेखनीय विशेषता है कि इनमें विषयगत अंतर होते हुये भी मूलवर्ती भावना का बहुत कुछ साम्य है । यह मूलवर्ती भावना आत्मनिवेदनात्मक है । इसे हम निरालाजी के प्रशांत और अनुद्विग्न मानस का प्रतिफलन भी कह सकते हैं । यहाँ आकर निराला के प्रार्थनापरक गीत उनके ऋतु-गीतों से उनके शृंगारिक गीत, उनके विनय-गीतों से भावनात्मक आदान-प्रदान करते रहते हैं । इन गीतों में निराला आपनी प्रारम्भिक प्रगल्भता छोड़ बैठे हैं और एक वस्तुमुखी प्रसन्नतर चेतना से संपन्न हो गये हैं । हम पहले उल्लेख कर चुके हैं कि निराला के आरम्भिक गीतों में प्रिया-प्रियतम की छवियाँ उनके प्रकृति-गीतों में भी उभर उठी हैं । यह एक प्रकार की आलंकारिक सृष्टि है, जिसके मूल में शृंगारिक सौंदर्य-भावना का संक्रमण हुआ है । इस प्रकार की आलंकारिकता उनके परवर्ती प्रकृति-गीतों में नहीं रह गई है । कहीं कहीं उनके इन प्रकृति-गीतों में कवण और रौद्र भावना भी मिलती है, जो उनकी वैयक्तिक मनःस्थिति की छाया भी कही जा सकती है । इस प्रकार के रौद्र चित्र उनकी आरम्भिक 'बादलराग' की कविताओं में भी विद्यमान हैं, पर वहाँ वह रौद्र, एक क्रांति और परिवर्तन की प्रेरणा से समन्वित है । परवर्ती काल के रौद्र-भावों में क्रांति का स्वर नहीं, आहत वेदना का स्वर ही प्रमुख है ।

हर-हर हरती समीर,
जीवन-यौवन अधीर,

चले तीक्ष्ण-तीक्ष्ण तीर,
छूटे गृह-वन के सम्बल ।

परन्तु इस प्रकार के प्रकृति के रौद्र गीत संख्या में बहुत कम हैं। निराला के परवर्ती ऋतु गीतों में प्रसन्नता का स्वर ही प्रधान है। जान पड़ता है कि जिन क्षणों में निराला को अपने वैयक्तिक शारीरिक कष्टों से राहत मिली है, उन्होंने प्रकृति की रमणीयता में अपना दिल बहलाया है अथवा यह भी कह सकते हैं कि प्रकृति की रमणीय सुषमा से निराला अपने कष्ट-निवारण का प्रयत्न भी करते हैं। यदि कोई एक आधार-वस्तु ऐसी है, जो निराला को उनके समस्त काव्य-काल में अव्याहत रूप से आह्लादक रही है, सामाजिक और मानसिक संघर्षों की विभीषिका से यदि कोई वस्तु उनको सांत्वना देती रही है, तो वह प्रकृति की अशेष सौन्दर्य-राशि ही है। निराला ने अपने समस्त काव्य-रचना-युगों में नाना विषयों और शैलियों को अपनाया और उनके प्रति अपनी अनेकमुखी प्रतिक्रियाएँ व्यक्त कीं, पर प्रकृति के प्रति उनकी आस्था अटूट बनी रही है। प्रकृति निरालाजी के लिए एक औषधि या उपचार का काम देती रही है -

बौरे आम कि भौरे बोले ।
प्रात कि गात पात के तोले ।
सरसाई समीर मधुवन-की,
आँखों छबि आई आनन की,
आलस दूर हुआ, मन भाया,
चिड़ियों ने सुख के मुख खोले ।^२

निराला जब कभी ये प्रकृति-गीत लिखते हैं, तब ग्रामांचल की सुषमा और ग्राम-बधू की याद नहीं भूलते। इससे यह सूचित होता है कि निराला के मानस में दिगंत प्रसरित उस प्रकृति का छायाचित्र नृत्य करता रहा है, जो नगरों की अट्टालिकाओं से ओझल नहीं है अथवा जिसका सृजन बन्द कमरे में बैठकर नहीं किया जा सकता।

हरियाली के झूले झूले
ग्राम बधू सुख से दुख भूले,
गहरे गहरे मधुर जो भूलें,
करषो है समीर के स्पन्दन ।^३

१ निराला : गीतगुंज-गीत ५ (रचना ८-१-५४) पृष्ठ २७, द्वि० संस्करण।

२ निराला : गीतगुंज-गीत ३ (रचना २६-२-५४)।

३ निराला : गीतगुंज-गीत १४ (रचना १७-८-५४)।

अथवा

शांत हो चली निशा और कुछ,
रवि की खेती बड़ी, पौर कुछ
गांव-गांव साठी को काटे
खुश होते हैं बातें कर-कर १

यद्यपि ये प्रकृति गीत 'अणिमा', 'अर्चना', और 'आराधना' में भी छिटपुट बिखरे हैं पर उनके अंतिम काव्यसंग्रह 'गीतगुंज' के अधिकांश गीत प्रकृति और ऋतु सम्बन्धी हैं। जब कि अन्य गीत-सृष्टियों में निरालाजी ने अधिक साहित्यिक और शास्त्रीय संगीत के स्वरों का प्रयोग किया है, तब प्रकृति और ऋतु-गीतों में उन्होंने लोक-गीतों की सहज और उच्छल ध्वनियों का अधिक आश्रय लिया है।

गोरे अधर मुसकाई
हमारी वसन्त विदाई ।
अंग-अंग बल खाई
हमारी वसन्त विदाई ।
भाल लगा ऊषा का टीका,
चमका सहज संदेशा पी का,
छूटा भय पति पावन जी का,
फूटी अरुण अरुणाई,
कि छुट गई और सगाई । २

● (४) शृंगारिक गीत

एक ओर जहां निराला के प्रकृति-गीतों की संख्या उनके परवर्ती काव्य में बढ़ती चली गई है, वहां नारी-शृंगार सम्बन्धी उनके गीत संख्या में कम होते गये हैं। सन् ४१, ४२ तक उनके शृंगारिक गीत फिर भी उनके अन्य गीतों के साथ समतुल्य कहे जा सकते हैं। परन्तु 'अर्चना' 'आराधना' और 'गीतगुंज' में उनकी संख्या उँगलियों पर गिनी जा सकती है। इसका स्वाभाविक कारण यह है कि निराला की आत्म-चेतना ज्यों-ज्यों उदात्त होती गई, त्यों-त्यों, नारी के संयोग-वियोग के प्रति उनकी भावना मंद होती गई है। शृंगार सम्बन्धी जितने भी गीत उनकी इन संग्रह-पुस्तकों में हैं, उनमें मिलन-विरह की प्रधानता नहीं है; बल्कि नारी की सात्विक छवियां अधिक अंकित हुई हैं। 'अणिमा' में आई 'नुपूर के सुर मंद रहे'

१ निराला : गीत गुंजन, गीत-२६ (रचना ८-११-५५) ।

२ निराला : आराधना-गीत ६४ (रचना, ३-५१) ।

विशुद्ध नारी-शृंगार की रचना है। परन्तु इसके पश्चात् लौकिक शृंगार की ओर निरालाजी कम ही गये हैं। स्वयं निरालाजी सन् ४३ के अपने एक गीत में लिखते हैं—

खुले उर की प्रेमिका की
गंध का बाहक नहीं अब
मुक्तनयना संगिनी का
पथिक परिचायक नहीं अब,

× × ×

बरसने को गरजते थे
वे न जाने किस हवा से
उड़ गये हैं गगन में घन,
रह गये हैं नयन प्यासे,^१

कदाचित् यह गीत निराला की शृंगारिक भावना में एक नए पट-परिवर्तन की सूचना देता है और नारी-शृंगार से हटकर प्रकृति-शृंगार की ओर उनकी मनःस्थिति का लगाव जहाँ एक ओर उनके स्वाभाविक वय-विकास की सूचना देता है, वहाँ दूसरी ओर वह उनकी नारी के प्रति क्रमशः आने वाली गंभीर और उदात्त भावना का भी परिचायक बन गया है। सन्, ५० का लिखा उनका प्रसिद्ध 'तन की, मन की, घन की हो तुम' गीत समग्र रूप से उनके परिवर्तित मनोभाव का निर्देशक है।

तन की, मन की, घन की हो तुम।
काम कामिनी कभी नहीं तुम,
सहज स्वामिनी सदा रहीं तुम,
स्वर्ग-दामिनी नदी बही तुम,
अनयन नयन-नयन की हो तुम।^२

यहां यद्यपि नारी की शृंगारिक छबि है, उसे 'स्वर्गदामिनी नदी' कहकर उसका रूपांकन किया गया है; परन्तु दूसरी ही पंक्ति में उसे सांसारिक नयनों के लिए अनयन भी कहा गया है। अर्थात् वासनात्मक दृष्टि से उसकी दूरी और अप्राप्ति बताई गई है। नारी की यह छबि एक ऐसी दिव्यता लिये हुए है, जिसकी अनेकशः वर्णना निराला के उन गीतों में हुई है, जिनमें उन्होंने जननि या माँ कहकर

१ निराला : अणिमा, पृ० १०२ (रचना, ४३)।

२ निराला : अर्चना, गीत-२ (रचना १२-१-५०)।

अपनी उपासना व्यंजित की है। कहा जा सकता है कि इन शृंगारी गीतों की भावना निराला के उपासना-गीतों के समकक्ष पहुँच गई है।

एक अन्य गीत है—

रंग भरी किस अंग भरी हो ?
गात हरी किस हाथ बरी हो ?
जीवन के जागरण-शयन की,
श्याम-अरुण-सित-तरुण-नयन की,
गन्ध-कुसुम-शोभा उपवन की,
मानस-मानस में उतरी हो;
जीवन-जोबन से सँवरी हो।'

यद्यपि इस गीत में नारी की शारीरिक शोभा का, उसके इन्द्रियाकर्षण का वर्णन किया गया है, परन्तु उसके प्रति कवि की दृष्टि समस्त शारीरिक संवेदनों से ऊपर उठकर विशुद्ध मानस-भूमि पर पहुँचती है।

इन शृंगारिक गीतों में यह भी दर्शनीय है कि चूँकि इनमें अपार्थिव भावना का योग बढ़ता गया है, इसलिये इनकी भाषा में संस्कृत पदावली का अपेक्षाकृत योग हुआ है। यदि निरालाजी के अन्य विषयक गीतों से उनके शृंगारिक गीतों की शब्द-रचना की तुलना की जाय, तो यह अन्तर सर्वत्र दिखाई देता है। निराला की बदलती हुई गीत-भाषा के मर्म को समझने के लिए हमें उनके इन शृंगारिक गीतों की भाषा पर स्पष्टतापूर्वक विचार करना होगा। कुछ समीक्षक निराला की छायावादी भाषा और उनकी परवर्ती सहज भाषा का अन्तर बताते हुये यह कहते हैं कि निराला क्रमशः कल्पना की आकाशीय भूमिका से उतरकर पृथ्वी पर आये हैं। आदर्श जगत से वास्तविक जगत का साक्षात्कार किया है और इसीलिए उनकी परवर्ती भाषा में उनके यथार्थोन्मुख भावों की छाया है। परन्तु हमारी दृष्टि में निराला की भाषा छायावादी और प्रगतिवादी आधार पर विभाजित नहीं की जा सकती। वे आरम्भ से भावानुरूप भाषा-परिवर्तन करते रहे हैं और उनकी भाषा का एकमात्र नियामक तत्व उनकी भाव-प्रकाशन की आवश्यकता है। उनकी भाषा में सरलता और सघनता उनके पूर्ववर्ती रचनाकाल में भी है और परवर्ती रचनाकाल में भी। भाषा का संबंध किसी वाद से बताना कम से कम निराला-काव्य के आधार पर सिद्ध नहीं किया जा सकता।

निराला के परवर्ती शृंगारी गीतों में अभिव्यंजना की प्रणाली सीधी और इतिवृत्तात्मक होती गयी है। इसकी लाक्षणिक वक्रतायें घटती गयी हैं और वे क्रमशः

अभिव्यंजना के शिल्प-चमत्कार को छोड़कर अभिव्यंग्य वस्तु की अलंकारहीन रचना करने लगे हैं ।

प्रिय के हाथ लगाये जागी,
ऐसी मैं सो गयी अभागी ।
हर सिंगार के फूल झर गये,
कनक रश्मि से द्वार भर गये,
चिड़ियों के कल कंठ मर गये,
भस्म रमाकर चला विरागी ।^१

वमत्कारहीन सरल अभिव्यंजना में भी भावों का अशेष गाम्भीर्य समाया हुआ है ।

● (५) दार्शनिक गीत

दार्शनिक गीत से प्रायः तत्त्व निरूपक और बुद्धिप्रधान उन गीतों का आशय लिया जाता है, जिनमें कवि अपने विचारों को रूप देता है । परन्तु विचार की भूमिका जब क्रिया या समर्पण में परिणत हो जाती है, तब उसका स्वतंत्र स्वरूप नहीं रह जाता । हम कह सकते हैं कि निराला की बौद्धिक दार्शनिकता क्रमशः एक तरल और आर्द्र जीवन-दर्शन में परिणत होती गयी है और इसलिए उनके स्वतंत्र, दार्शनिक या विचारात्मक गीत क्रमशः कम होते गये हैं । दार्शनिकता रहस्योन्मुख अनुभूति में परिणत होती गयी है या अर्चना का स्वरूप ग्रहण करती गई है । निराला के परवर्ती गीत अहंकार के विलय के गीत हैं । अतएव उनमें 'अहं ब्रह्मास्मि' की दार्शनिक चेतना कम होती गई है । यद्यपि उसका मूलतत्त्व आत्मप्रसार और आत्मविसर्जन उनके अधिकांश गीतों में अंतर्निहित या अनुस्यूत है । निराला की दार्शनिकता का वह रूपान्तर तीन सरणियों में देखा जा सकता है ।

(१) विश्व में व्याप्त एक सार्वत्रिक सत्ता का रहस्यात्मक अनुभव,^२

(२) मानव-मानव की एकता का मानवतावादी आकलन;

(३) वैयक्तिक सुखदुख का समष्टि सुखदुख में विलीनीकरण ।

इनमें से प्रत्येक का एक-एक उदाहरण दृष्टव्य है—

सत्य पाया जहाँ जन्म ने, दान तेरा ही वहाँ है ।

जहाँ भी पूजा चढ़ी है, मान तेरा ही वहाँ है ।

१ निराला : अर्चना, गीत-६८, (रचना ७-२-५०)

२ देखिये, आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी का मत 'निराला के काव्य में वेदान्त की सहायता से विश्व को एक सत्ता मानने की भावना है'—राष्ट्रभाषा की कुछ समस्यायें ।

जिस प्रवर्षण भूमि ऊर्वर, जिस तपन मरु धूम-धूसर
जिस पवन लहरा दिगन्तर, ज्ञान तेरा ही वहां है ।^१

× × ×
मानव का मन शांत करो हे ।
काम, क्रोध, मद, लोभ दंभ से
जीवन को एकान्त करो हे ।
हिलें वासना-कृष्ण-तृष्ण उर,
खिलें विटप छाया-जल-सुमधुर,
गूंजें अलिगुंजन के नूपुर
निज-पुर-सीमा-प्रान्त करो हे ।^२

× × ×
दुख भी सुख का बन्धु बना,
पहले की बदली रचना,
परम प्रेयसी आज श्रेयसी,
भीति अचानक गीति गेय की,
हेय हुई जो उपादेय थी,
कठिन, कमल कोमल वचना ।^३

● (६) प्रगतिशील और प्रयोगशील गीत

राजनीति की भूमिका पर निराला ने भारत की भाग्य-लक्ष्मी को जगाने का उपक्रम 'जागो जीवन धनिके' गीत में बहुत पहले किया था । देशप्रेम और राष्ट्रीय गौरव से आपूर्ण उनका 'भारति जय विजय करे' गीत उनकी पूर्ववर्ती गीति-रचना का सुमेरु ही कहा जा सकता है । इसी राष्ट्रीय और मानवीय चेतना का रूपांतर निराला के परवर्ती समाजोन्मुख गीतों में हुआ है, उन्हें ही हम उनके प्रगतिशील गीत कहते हैं । देशप्रेम की भावना निराला के व्यक्तित्व में अक्षुण्ण बनी रही है । उनका एक परवर्ती गीत इस प्रकार है—

भारत ही जीवन-धन
ज्योतिर्मय परम-रमण
सर-सरिता बन-उपवन
तपःपुंज गिरि-कन्दर,
निर्झर के स्वर पुष्कर

१ निराला : आराधना-गीत ३५, (रचना १५-११-५२)

२ निराला : अर्चना-गीत ४८, (रचना २५-१-५०)

३ निराला : आराधना-गीत ५० (रचना १०-१०-६०)

दिक्प्रान्तर मर्म बुखर
मानव-मानव जीवन ।^१

भारतीय मानव बिस्व मानव-जीवन का प्रतिनिधि है। इस राष्ट्रीय भावना को पल्लवित करते हुये निराला ने अपने प्रगतिशील गीतों में आज के मनुष्यजीवन के वैषम्यों और विकृतियों का व्यंगात्मक चित्र प्रस्तुत किया है। इसलिये हमने अन्यत्र कहा है, 'निराला की प्रगतिशीलता उनकी मानवीयता का अपर पर्याय है। एक स्थान पर वे लिखते हैं—

मां अपने आलोक निखारो,
नर को नरक-त्रास से बारो ।
विपुल दिशावधि शून्य वर्गजन,
व्याधि-शयन जर्जर मानव मन,
ज्ञान-गगन से निर्जर जीवन
करुणा करो उतारो, तारो ।^२

आज मनुष्य नानावर्गों में विभाजित है। इसी कारण उसका मन व्याधि-जर्जर हो रहा है। जब तक मनुष्य इस स्थिति में रहेंगे, तब तक उन्हें नरक-त्रास पाना होगा। इस त्रास से बचने के लिये निरालाजी मार्गनिर्देशन करते हैं—

पथ पर बेमौत न मर,
श्रम कर तू विश्रम-कर ।
उठा-उठा करद हाथ,
दे दे तू वरद साथ,
जग के इस सजग प्रात
पात-पात किरनें भर ।^३

यह श्रम-शिक्षा वर्गीय श्रम की शिक्षा नहीं है। सहयोग पूर्वक संसार में एक नया प्रभात लाने का सामूहिक संदेश है। इन गीतों में प्रगतिशीलता का स्वरूप किस प्रकार मानव के सर्वोदय से संयुक्त है, इसका परिचय हम यहाँ पा सकते हैं।

जब निरालाजी आज के बिस्वसमाज में इस सहयोगी आदर्श का परिचय चिन्ह नहीं पाते, तब वे विचलित हो कर खीझ उठते हैं और तब इस प्रकार के उद्गार व्यक्त करते हैं—

१ निराला : अणिमा-पृ० ६७, (रचना ४२)

२ निराला : अर्चना गीत-१०८, ।

३ वही, गीत-६२, (रचना १४-२-५०)

मानव जहाँ बैल घोड़ा है,
कैसा तन-मन का जोड़ा है ?
किस साधन का स्वाँग रचा यह
किस बाधा की बनी त्वचा यह,
देख रहा है विश्व आधुनिक
वन्य भाव का यह कोड़ा है ।^१

निराला के इस मानववाद में द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद की छाया कहीं नहीं है । अपनी इस खीझ और वितृष्णा को स्वर देते हुए निरालाजी प्रयोगशील चमत्कारों पर उतर आते हैं और इस प्रकार उनकी प्रगतिशील भावना प्रगोग-शैली में व्यक्त होकर अपना असर खोने लगती है । स्मरण रखना है कि मानसिक विक्षेप की स्थितियाँ उनके स्वस्थ क्षणों के इतने समीप हैं कि रह रह कर वे निराला के भाव-मानस पर आक्रमण करती हैं । जब तक निराला इस आक्रमण का प्रतिकार कर सकते हैं; करते हैं । परन्तु जब विक्षेप का आवेग प्रमुख हो जाता है, तब निराला की रचना में प्रयोगात्मकता प्रवेश कर जाती है और तब निराला का भाव-पक्ष शब्दों की भूल-भुलैयाँ में अवसित होने लगता है । हम अन्यत्र लिख चुके हैं कि 'आज मन पावन हुआ है, जेठ में सावन हुआ है, की सुन्दर पंक्तियों के साथ जब वे निम्नलिखित वाक्य लिखते हैं—

कटा था जो पटा रहकर,
फटा था जो सटा रहकर
डटा था जो हटा रहकर
अचल था, धावन हुआ है ।^२

तब उनकी इस विक्षेपपूर्ण प्रयोगशीलता पर हम चिंतित हुए बिना नहीं रह पाते । निरालाजी के प्रयोगशील गीतों की दो-एक बानगी नीचे दी जाती है—

बुझी दिल की न लगी मेरी
तो क्या मेरी बात बनी ।
चली कोई न चलाई चाल
तो क्या तेरी घात बनी ।^३
× × ×
छलके छलके पैमाने क्या ।
आये बेमाने माने क्या ।

१ निराला : आराधना—गीत ७३ ।

२ वही (रचना २६-८-५२)

३ निराला : गीतगुंज—गीत ६, (रचना १६-४-५२)

हलके-हलके हलके न हुए,
दलके-दलके दलके न हुए,
उफले-उफले फल के न हुए,
बेदाने थे तो दाने क्या ?^१

इन गीतों में शाब्दिक चमत्कार इतना अधिक उभर आया है कि भाव की धारा अंतःसलिला बनकर ही रह गई है। जिस निराला ने भाषा के, छंदों के, अभिव्यंजनाओं के इतने सशक्त प्रयोग किये थे, वह इस प्रकार की भटकी हुई प्रयोगशीलता का परिचय देगा, यह किसने आशा की थी ?

● (७) स्फुट गीत

✓ निरालाजी की परवर्ती गीत-सृष्टि को हमने ऊपर जिन श्रेणियों या प्रकरणों में बाँधने का प्रयत्न किया है, उनमें वह निःशेष नहीं हुई है। ऐसी अनेक भावनाएँ और रचना-प्रकार बच रहे हैं, जिन्हें हम स्फुट संज्ञा ही दे सकते हैं। एक स्थान पर निरालाजी बालक की भाँति 'इस ज्ञात सृष्टि के उस पार क्या है' यह जानने की इच्छा करते हैं। 'उस अनिर्वचनीय लोक के निवासी क्या खाते और क्या गाते हैं, उनका वर्ण, जाति, आकृति और दैनिक जीवनचर्या क्या है; इसकी उन्हें जिज्ञासा है। 'परिमल' में निरालाजी लिख चुके थे—

हमें जाना है जग के पार ।
जहाँ नयनों से नयन मिले,
ज्योति के रूप सहस्र खिले,
सदा ही बहती नव-रस-धार
वहीं जाना, इस जग के पार—^२

इस गीत में उन्होंने उस अनिर्वचनीय लोक की एक झाँकी दी है जो अशेष सौंदर्य-मंडित है। परन्तु प्रस्तुत गीत में उनकी एक नयी जिज्ञासा व्यक्त हुई है, जिसमें वे सचमुच एक बाल-कौतूहल का भाव व्यक्त करते हैं। देखिये—

पार-पारावार जो है,
स्नेह से मुझको दिखा दो ।
रीति क्या, कैसे नियम,
निर्देश कर करके सिखा दो ।
कौन से जन, कौन जीवन,
कौन से गृह, कौन आंगन,

१ निराला : आराधना-गीत ३० (रचना १४-११-५२).

२ निराला : परिमल, पृ० १०४.१

किन तनों की छाँह के तन,
मान-मानस में लिखा दो ।^१

इस गीत में निराला-मानस की एक नई ही झलक मिलती है। इस प्रकार की नवीनताएँ जो किसी सुस्पष्ट बंधन में बाँधी नहीं जा सकतीं, निराला के स्फुट गीतों में स्थान-स्थान पर आई हैं। इनके अधिक उदाहरण देना हमारी अध्याय सीमा-के बाहर जाना होगा। अतएव हम केवल उनके स्फुट गीतों की बहुल भाव-चेतना का संकेत करके ही संतोष करते हैं।)

● निराला की गीत-कला

निराला के परवर्ती गीतों के इस अध्ययन के पश्चात् हम उनकी गीति-कला के सम्बन्ध में भी कुछ निवेदन करना चाहते हैं। आश्चर्य की बात यह है कि निराला की गीत-सृष्टि पर अनेक प्रकार की अनभिज्ञतापूर्ण टिप्पणियाँ लिखी गई हैं। उनकी दुरूहता और क्लिष्टता का विशेष रूप से उल्लेख किया गया है। निराला के गीतों में वैयक्तिक अनुभूति की मार्मिकता नहीं है, यह भी आरोप किया गया है। इस सम्बन्ध में यह स्मरण रखना चाहिये कि निराला के गीत वैयक्तिक भाव-चेतना या निजी सुख-दुख के तत्वों से निर्मित नहीं हैं, जैसा कि वर्तमान युग के अधिकांश गीत हैं। निरालाजी के गीतों का निर्माण सामूहिक और समष्टिगत भावाधार पर हुआ है। यहाँ निराला ने आधुनिक गीत शैली को छोड़कर प्राचीन रस-प्रवण गीतों की परम्परा को अपनाया है। यह बहुत बड़ा अन्तर है, जिसकी ओर समीक्षकों की दृष्टि यथेष्ट रूप में नहीं गई है। यों तो निराला के समग्र काव्य में तटस्थता का गुण मौजूद है, पर उनके गीत तो विशुद्ध शास्त्रीय शैली का अनुगमन करते हैं। उनके गीतों की तुलना प्रसाद और महादेवी की अपेक्षा जयदेव, विद्यापति और सूर से करना अधिक संगत होगा। जब तक निराला के इस गीत-स्तर को हम नहीं समझते, तब तक उनके गीतों की सम्यक समीक्षा नहीं की जा सकती।

निरालाजी भारतीय संगीत और एक सीमा तक पश्चिमी संगीत के भी, अभ्यासी रहे हैं। भारतीय संगीत की केन्द्रीय विशेषता उसकी सामूहिक रसात्मकता है। उसमें वैयक्तिक भावना का योग अतिशय विरल रहता है। पश्चिमी संगीत में वैयक्तिक भावोन्मेष अवश्य पाया जाता है, पर वहाँ भी संगीत समाज की वस्तु माना गया है। जो संगीतकार सामाजिक चेतना के जितना ही समीप रहा है, उसने नवसंगीत-निर्माण में उतनी ही सफलता प्राप्त की है। आज के पाउल राप्सन जैसे संगीतज्ञ इस बात का प्रमाण उपस्थित करते हैं। पश्चिमी संगीत की इस सामूहिक भाव-चेतना के कारण उसमें पौरुषत्व की प्रधानता पायी जाती है। रुदन गीतों को अथवा वैयक्तिक अनुभूतियों को नये संगीत प्रवर्तन में प्रयुक्त नहीं किया जा सकता। निराला के गीत भी इसी सामूहिक गीत-परम्परा के

अनुयायी हैं; इसीलिये कदाचित् निराला नये गीतों के स्रष्टा हैं जब कि अन्य कवि केवल गीतकार हैं।

पूछा जा सकता है कि जब निराला अपने गीतों में इतने समूहमुखी हैं तब उनके गीत समाज की प्रचलित भाषा के अनुरूप क्यों नहीं हैं। इसका एकमात्र उत्तर यह है कि जहाँ तक गीतों के स्वर-विधान का सम्बन्ध है, निराला के गीत सामूहिक स्वर-विधान के अतिशय अनुरूप हैं। उनका 'भारति जय विजय करे' अथवा 'वीणा वादिनि वर दे' आज प्रायः राष्ट्र प्रचलित गीत बन गये हैं, जब कि हिन्दी के किसी दूसरे कवि के गीत इस महत्व को नहीं पा सके। यह निराला के स्वरसंधान की विशेषता है कि उनके गीत इतने लोकप्रिय हुये हैं। जहाँ तक शब्द-योजना का प्रश्न है, निराला के गीत शब्दों की मितव्ययिता के आधार पर बने हैं। मितव्ययिता स्वयं साधारण जनों के लिये दुरूह और दुष्प्राप्य होती है। किन्तु निराला साधारण लोगों की इस कठिनाई के कारण अपने गीतों का सौंदर्य शिथिलित नहीं कर सकते थे। यह भी स्मरण रखना होगा कि निराला के गीतों में लोक-लयें तो हैं, पर उनके गीत साहित्यिक और कलात्मक हैं। वे आधुनिक कुछ गीतकारों की तरह 'पिया' 'सैया' या 'साथी' की भूमिका पर नहीं आ सकते थे। हम पहले ही कह चुके हैं कि निराला के गीतों की भूमिका साहित्यिक और शास्त्रीय है।

आधुनिक युग में निराला के गीतों की तुलना एकमात्र रवीन्द्रनाथ के गीतों से की जा सकती है। संख्या में रवि बाबू के गीत निराला के गीतों से कहीं अधिक हैं, उनके गीतों का भावोन्मेष अधिक वैविध्यपूर्ण भी कहा जा सकता है। रवीन्द्रनाथ के गीतों में वैयक्तिक भाव-संवेदन निराला से कहीं अधिक है। इसलिए उनके गीतों में अधिक स्वाभाविकता और मार्मिकता नजर आती है। किन्तु रवीन्द्रनाथ के गीतों में संयम के तत्व की कमी है। वे अधिक भावनामय हैं; अतएव उनके गीतों में ऐसी स्थितियाँ भी आती हैं, जिन्हें आज की मनोवैज्ञानिक काव्य-समीक्षा में डिस्सिपेशन की स्थिति कहते हैं। यद्यपि रवीन्द्र की भाव-बहुलता में यह कमजोरी अनेक बार छिप जाती है; परन्तु निराला के गीतों में इस प्रकार के भावस्खलन का अवसर ही नहीं आया है। वे आरम्भ से ही जिस भाव-स्तर से रचना करते हैं, और जिस प्रकार शब्द-संयम का उपयोग करते हैं, उसमें 'डिस्सिपेशन' के लिये अवकाश ही नहीं रहता। संभव है, इस उच्चतरीय काव्य-गायन में लोगों को हार्दिकता की कमी जान पड़े, परन्तु निराला का स्वर हृदय की परितृप्ति के लिए ही नियोजित नहीं हुआ। उसमें मानवचेतना के उदात्त अंश को रूपायित करने की क्षमता है। खेद है कि अपनी परवर्ती विश्लेषावस्था के कारण निरालाजी सर्वत्र एक से भावस्तर पर नहीं रहे हैं, और कहीं-कहीं तो शब्दों की असंयत क्रीड़ा भी दिखाई देती है। परन्तु, स्वच्छ मानसिक क्षणों में लिखे गये उनके परवर्ती गीत कर्ण और शान्त मिश्रित ऐसे शृंगार की सृष्टि करते हैं, जिसकी तुलना में हिन्दी की कोई आधुनिक गीत-सृष्टि नहीं आती, अतः जिसे 'निराला-संगीत' के नाम से ही अभिहित करना सार्थक और समीचीन होगा।

निराला की परवर्ती प्रगीत-सृष्टियां

अपने परवर्ती रचना-काल में निराला ने जिन अनेक काव्य-रूपों का विन्यास किया; उन्हें हम पूर्व के अध्यायों में विवेचित कर चुके हैं। एक ही काव्यरूप जिसका उल्लेख करना शेष है, निराला का परवर्ती प्रगीत रूप है। इसे हम इस अन्तिम अध्याय में इसलिए ले रहे हैं कि इस काल की प्रगीत-रचनायें संख्या में कम हैं। ये निराला के प्रारम्भिक प्रगीतों की ही शैली का अनुगमन करती हैं। इनमें अधिक नवीनता नहीं आई है। फिर भी इन कृतियों के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि निराला की प्रतिभा प्रगीत काव्य-रूप में इतनी ही बलशालिनी है, जितनी किसी अन्य रचना-प्रयोग में। बल्कि हम कह सकते हैं, निराला के प्रगीतों में जितनी अनेकरूपता है, उतनी कदाचित् किसी अन्य रचना-प्रकार में नहीं।

❁ पश्चिमी प्रगीत-प्रकार

प्रगीत काव्य के अनेकानेक भेद और प्रकार हैं। कुछ तो कथाप्रगीत होते हैं, जिन्हें हम अंग्रेजी के बलेड (Ballad) शब्द से अभिहित करते हैं। इन्हें हिन्दी में गाथा-गीत या आख्यान-गीत भी कहा गया है। प्रगीत का दूसरा स्वरूप विशुद्ध भावात्मक या उच्छ्वासमूलक या चित्रात्मक होता है, जिसे विशुद्ध प्रगीत या (Pure Lyric) कहते हैं। कवि की किसी क्षण की मनोभावना या 'मूड' का एक लघु-सीमा में निरूपण प्रगीत की मूलभूत विशेषता कही जाती है। कुछ नए समीक्षक तो इस लघु प्रगीत को ही एकमात्र प्रगीत की संज्ञा देते हैं। ज्योंही रचना में विस्तार आया, उसकी प्रगीत-संज्ञा समाप्त हो गई। परन्तु यह अतिवादी दृष्टि सर्वस्वीकृत नहीं है और शायद स्वीकृत हो भी नहीं सकती। क्योंकि कवि-प्रतिभा को इनीगिनी पक्तियों की सीमा में बाँध देना उसकी कल्पनाशक्ति के प्रति अन्याय है। शेली का वेस्टविंड (West wind) लम्बा प्रगीत है; परन्तु कदाचित् वह संसार के श्रेष्ठ प्रगीतों में परिगणित है। उसी प्रकार निराला की 'सरोजस्मृति' लम्बी रचना है; परन्तु वह दीर्घता में भी आत्मसंपूर्ण है। उसे किसी प्रकार खंडित नहीं किया जा सकता। जब कविता अत्यधिक अंतर्मुख हो जाती है तब कवियों के अवचेतन का उन्मेष काव्य की छोटी सीमा में ही समाप्त हो जाता है। तो क्या अवचेतना का

उन्मेष ही कविता की परिभाषा कहा जायगा ? पर ऐसा करना तो विश्व-काव्य के गौरवशाली इतिहास का अनादर करना होगा । कदाचित् इसीलिए कविता या प्रगीत-कविता विषयक यह मत साहित्यिक चिन्तन में गृहीत नहीं हो पाया है ।

लघु प्रगीतों के भी अनेक भेद हैं और दीर्घतर प्रगीतों के भी अनेक स्वरूप हैं । लघु प्रगीत मुक्त छंद में भी लिखे जाते हैं । वे छन्दबद्ध भी होते हैं और अनेक बार गीतात्मक भी हो जाते हैं । मुक्त छन्द के लघु प्रगीतों का योरप के प्रतीकवादियों में अधिक प्रचलन हुआ है । वे प्रत्येक ऐसी वस्तु से हिचकते हैं, जिसमें कहीं भी बौद्धिक प्रयास की प्रतीति होती है । छन्द-योजना भी उनकी दृष्टि में बौद्धिक प्रयत्न है । पर इस प्रकार की एकांगी दृष्टियाँ कविता के स्वरूपों को समझने में सहायक नहीं हो सकतीं । अत्यन्त सुन्दर प्रगीत छन्दबद्ध हुए हैं । गीत भी एक प्रकार के प्रगीत ही हैं । अंग्रेजी में सानेट मूलतः गीत है; परन्तु वह प्रगीतकाव्य का एक विशिष्ट रूप माना जाता है ।

इन लघु-दीर्घ प्रगीतों की एक परम्परा विश्व-काव्य में लम्बे समय से मिलती है । पश्चिमी काव्य-विवेचन में इनको odd (संवोध गीत), *Elegy* (शोक गीत) और *Epis le* (पत्रगीत) आदि विविध नाम दिए गए हैं । इस प्रकार प्रत्येक साहित्य की अपनी परम्परा के अनुसार उपलब्ध दीर्घप्रगीतों को अनेकानेक अभिधान दिए गए हैं । दीर्घ प्रगीतों का ही उपहास गीत (*Satire*) नाम का एक पृथक् काव्य-रूप है । इन रूपों की गणना करना इसलिए व्यर्थ है कि इनकी संख्या अपरिमित हो सकती है । गणना इसलिए की जाती है कि एक ही प्रकार और शैली की जब अनेक रचनायें मिलने लगती हैं, तो उनकी एक परम्परा बन जाती है । इसके उपकरण स्थिर हो जाते हैं और उनका नामकरण कर दिया जाता है । भावनाट्य और गीति-नाट्य के स्तर पर प्रगीतकाव्य की दो अन्य विधायें भी दिखाई देती हैं, जिनमें परस्पर कुछ अन्तर भी है । भावनाट्य अधिक मनोवैज्ञानिक होता है । उसकी गति में मंदता होती है जब कि गीतिनाट्य विशुद्ध भावात्मक होता है और दर्शकों के मन को एकाग्र करने में अधिक सक्षम होता है । इसी गीतिनाट्य का एक स्वरूप निरालाजी ने मुक्त छन्द के माध्यम से ग्रहण किया है । उनकी प्रारम्भिक कविता 'पंचवटी प्रसंग' मुक्त छन्द में लिखा गया गीतिनाट्य ही है । पाश्चात्य काव्य में धार्मिक प्रगीतों की भी एक स्वतन्त्र शैली है । प्रार्थना, उपासना या आत्मचिन्तन के लिए इन प्रगीतों का व्यवहार होता है । इन्हीं में कुछ दार्शनिक और रहस्यात्मक प्रगीत भी हैं ।

● भारतीय गीत या प्रगीत-परम्परा

वास्तव में निराला ही एक कवि हैं, जिन्होंने भारतीय गीतों की परम्परा को सर्वाधिक अपनाया है । यह एक आश्चर्यजनक हेतुभास है कि जो कवि सामाजिक और साहित्यिक रूढ़ियों का सबसे बड़ा विध्वंसक है, वही राष्ट्रीय स्वस्थ परम्पराओं

का सबसे बड़ा पोषक भी है। निराला के व्यक्तित्व और उनके काव्य के इस समानान्तर पक्ष को न समझने के कारण लोगों को उन्हें तथा उनके काव्य को सम्यक् रीति से समझने में कठिनाई हुई है। लोग सोचते हैं कि निराला यदि व्यक्तित्व में और काव्य में क्रान्तिकारी हैं, तो वे भारतीयता के संरक्षक कैसे हो सकते हैं ? थोड़ी सी गहराई में जाकर देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि निराला उन सामाजिक और साहित्यिक रूढ़ियों का तिरस्कार करते रहे हैं, जो आधुनिक जीवन और साहित्य के विकास की घातक हैं। परन्तु भारतीय दर्शन की श्रेष्ठ उपलब्धियों को, कला और संगीत के मनोरम और उदात्त तत्वों को, अपनाने में भी वे उतने ही तत्पर रहे हैं। निराला का विद्रोह विवेकपूर्ण विद्रोह है। वह विद्रोह के लिए विद्रोह नहीं है। एक विशिष्ट विवेक की भूमिका पर वे काव्य-निर्माण में संग्रह और त्याग के पक्षों को स्वीकार करते और छोड़ते रहे हैं। अतएव उन्होंने भारतीय राष्ट्रीय परम्परा और उसके काव्य-साहित्य के श्रेष्ठ अंशों को नया विकास दिया है। भारतीय काव्य में गीत या प्रगीत यद्यपि विशाल परिमाण में पाये जाते हैं, परन्तु काव्यशास्त्र में उनका अनुलेखन मुक्तक काव्य के नाम पर ही किया गया है। प्रश्न होता है कि गेय काव्य को भी मुक्तक, उपदेशात्मक काव्य को भी मुक्तक, व्यंगात्मक काव्य को भी मुक्तक, दरबारी कविता को भी मुक्तक कहने में शास्त्रकार का क्या प्रयोजन और स्वारस्य है। इतनी भिन्न विधाओं को एक ही शीर्षक देकर क्यों पुकारा गया है ? इसका उत्तर तो विद्वज्जन ही दे सकते हैं; पर हमारा विनम्र मत यह है कि काव्यरूप तो मुक्तक ही है। गेयता, पाठ्यता, व्यंगात्मकता आदि तो उसकी शैलियाँ हैं। अतएव काव्य रूपों का वर्गीकरण करते हुए भारतीय शास्त्रकार ने ठीक ही रास्ता अपनाया है। पाश्चात्य वर्गीकरण में लिरिक, बलेड, नरेटिव, डायरेक्टिव आदि मुक्तक काव्य के अनेक भेद करते हुये भी मुक्तक का क्षेत्र निःशेष नहीं हो सका। अनेक रचनाओं को नाम देना भी कठिन हो गया। उसकी अपेक्षा भारतीय विभाजन—दृश्य और श्रव्यकाव्य, मुक्तक, खंडकाव्य और महाकाव्य के भेद—अधिक सुसंगत प्रतीत होता है।

भारतीय प्रगीत-काव्य मुक्तक का एक भेद है। निरालाजी ने वैदिक ऋचाओं को अपने मुक्तछंद की रचना में प्रमाण रूप में उपस्थित किया है। इससे यह लक्षित होता है कि निरालाजी वैदिक ऋचाओं को काव्य मानकर चले हैं। यदि वे काव्य हैं, तो उनकी गणना मुक्तक के अन्दर ही होगी। वे अपने ढंग से गेय भी हैं और पाठ्य भी। वेदों से आरम्भ होने वाले मुक्तक काव्य की यह गेय शैली निरन्तर विकसित होती रही है। संस्कृत काव्य में शास्त्रीय पक्ष और आलंकारिकता का अधिक अनुवर्तन होने के कारण, वहाँ गेयकाव्य का—प्रगीतों का—अधिकमात्रा में निर्माण न हो सका। फिर भी नाटकों के गेय छंदों के रूप में, 'मेघदूत' जैसे काव्य के माध्यम से, जयदेव की संस्कृत पदावली में, संस्कृत गेय-काव्य का इतिवृत्त देखा जा सकता है। परन्तु संस्कृत

की अपेक्षा लोक भाषाओं, प्राकृतों और अपभ्रंशों में गेय कविता प्रचुर परिमाण में उपलब्ध है। वहीं से वर्तमान लोकभाषाओं और हिन्दी में भी वह आनीत हुई है। इस क्रम-विकास से यह स्पष्ट होता है कि गेय कविता का संबन्ध लोकजीवन से जितना है, पांडित्य की भूमिका से उतना नहीं। यह तो प्रगीत काव्य के भारतीय विकास का रेखांकन है। इसके अतिरिक्त भारतीय संगीत की अपनी स्वतंत्र परम्परा है जिसमें शास्त्रीय संगीत और लोक-संगीत की धारयाँ प्रवहमान हैं। इन सांगीतिक धाराओं ने भी प्रगीत-काव्य को अनेकशः प्रेरणा दी है। कभी साहित्यिक प्रगीतों में, गेय पदों में, शास्त्रीय पक्ष की प्रधानता हुई है और कभी लोक-गीतों का व्यवहार हुआ है। इस द्वंद्वात्मक भूमिका पर भारतीय भाषाओं के प्रगीतों का विकास होता रहा है।

एक और तथ्य है जिसकी ओर हमारा ध्यान जाना आवश्यक है। समस्त भारतीय कलायें, चाहे काव्य हो या संगीत, भारतीय दर्शन से अनुप्राणित हैं। यहाँ के साहित्य तथा संगीत के इतिहास को प्रस्तुत करने के लिए भारतीय दर्शनों का ज्ञान अपेक्षित है। मूलतः काव्य और संगीत वैयक्तिक अनुभूतियों के प्रदर्शन के लिए प्रणीत नहीं हुए। वे सांस्कृतिक विकास के अनिवार्य अंग के रूप में विकसित हुये हैं। अतएव भारतीय कलाओं की मूल प्रेरणा व्यक्तिमुखी नहीं, वस्तुमुखी है; आनन्द तत्त्व के प्रसार के लिए है। कम से कम आधुनिक युग के पूर्व उनका यही स्वरूप रहा है।

निरालाजी ने भी इसी वस्तुमुखी, सांस्कृतिक और दार्शनिक प्रेरणा का अनुसरण करते हुए काव्य-क्षेत्र में प्रवेश किया था। सौभाग्यवश उन्हें भारतीय दर्शन और अध्यात्म विद्या से तरुणावस्था में ही परिचित होने का अवसर मिला। उनकी इस आरंभिक शिक्षा ने उनके काव्य को पश्चिमी काव्य से भिन्नता प्रदान की है। उनके काव्य का तटस्थ चित्रण और वस्तुमुखी विन्यास आधुनिक पश्चिमी धारणा के अनुसार प्रगीत काव्य के मूल लक्षणों से भिन्न है। इसी कारण कुछ पश्चिमी शैली के हिन्दी समीक्षक निराला को प्रगीत कवि मानने में भी असमजस का अनुभव करते हैं। परन्तु जो विचारक प्रगीत काव्य की भारतीय भूमिका से परिचित हैं उन्हें निराला के प्रगीतों को भारतीय गेय-काव्य का आगामी विकास मानने में रंचमात्र भी द्विविधा न होगी। भारतीय प्रगीतों के स्वरूप से परिचित राष्ट्रीय और सांस्कृतिक परंपरा का बोध रखने वाले निराला जैसे कवि के लिए यह सम्भव न था कि वे पश्चिमी प्रगीतों के व्यक्तिवादी आधार को आंख मूंद कर अपना लेते।

● निराला के आरंभिक प्रगीत

निराला का पहला काव्य-चरण ही वास्तव में उनका प्रगीत-चरण है। इसकी स्थिति सन् १९१६ से २८ तक मानी जा सकती है। निराला की जीवनी पर लिखते हुए हम यह कह सकते हैं कि वही उनके निर्बाध और निश्चित व्यक्तित्व का पहला चरण था। निराला की बहिरंग परिस्थितियाँ भी तब तक प्रतिकूल वाताचक्र से

आकाश नहीं हुई थीं। निराला का पहला प्रगीत 'जुही की कली' निराला-काव्य के प्रथम चरण का प्रतीक माना जा सकता है। नारी के सौकुमार्य और पुरुष की प्रगल्भता की इतनी सुन्दर काव्य-योजना उस प्रथम कविता को ही हिन्दी-काव्य में स्मरणीय बना देती है। उस समय तक स्वच्छन्द प्रेम की ऐसी अंतरंग चर्चा, ऐसा चमत्कारी चित्रण हिन्दी में आया ही नहीं था। प्रसाद का वेदना-काव्य 'आँसू' आठ वर्ष बाद प्रकाशित हुआ था। पंतजी के 'उच्छ्वास' और 'ग्रन्थि' में कच्ची वय के प्रेम के स्मृतिचिह्न दिखाई देते हैं। सारे छायावादी युग में यदि पंत 'उच्छ्वास' के कवि हैं तो निराला 'जुही के कली' के कवि हैं। हम अन्यत्र कह चुके हैं कि यह 'जुही की कली' प्राकृतिक परिधान पहनकर उपस्थित हुई है। शृंगार एक सुन्दर आवरण डाल कर उपस्थित हुआ है।

निरंतर बारह वर्षों तक निराला ने मुक्त छंद में, स्वच्छन्द छंद में (मुक्त छंद निराला के शब्दों में वर्णवृत्त की भूमिका पर प्रस्तुत हुआ है और अंत्यानुप्रास रहित भी है जब कि 'स्वच्छन्द छंद' मात्रिक भूमिका पर लिखा है और अंत्यानुप्रास से समन्वित है। यद्यपि इसकी लड़ियां घटती-बढ़ती रही हैं) और छन्दात्मक शैली में प्रगीत रचना की है। उनके छंदात्मक प्रगीत-प्रयोगों में पंक्तियों की योजना सुनिश्चित मात्राओं के आधार पर की गई है।'

ये सभी प्रगीत एक अनुपम सौन्दर्य चेतना, स्वस्थ विद्रोह भावना और वस्तु-मुखी कलात्मक चित्रण के सुन्दर उदाहरण हैं। इनमें कुछ लघु प्रगीत हैं और कुछ दीर्घतर; परन्तु सबमें कलागत पूर्णता है। निरालाजी के उद्गम भावावेग का पता इसी बात से लग सकता है कि 'जागो फिर एक बार' शीर्षक दो रचनायें दो भिन्न रसों में लिखी गई हैं। एक में वीरोद्बोधन है, तो दूसरी दार्शनिक और शृंगारिक है। दोनों में कौन-सी रचना श्रेष्ठतम है, यह बता सकना संभव नहीं। निराला की यह वस्तुमुखी प्रवृत्ति उनकी कला के मूल में निवास करती है।

कुछ लोग प्रगीत-काव्य में वैयक्तिक वेदना की, जिसे वे काव्य का आत्मपक्ष कहते हैं, झाँकी देखना चाहते हैं। निराला में आत्मपक्ष तो है, यदि आत्मपक्ष का अर्थ

१ निराला : प्रबन्ध-प्रतिमा (पृ २६६) - " हिन्दी-काव्य की मुक्ति के मुझे दो उपाय मालूम दिये एक वर्णवृत्त में, दूसरा मात्रावृत्त में। 'जुही की कली' की वर्णवृत्तवाली जमीन है। इसमें अंत्यानुप्रास नहीं। यह गाई नहीं जाती। इससे पढ़ने की कला व्यक्त होती है। 'परिमल' के तीसरे खंड में इस तरह की रचनायें हैं। इनके छंद को मैं मुक्तछंद कहता हूँ। दूसरी मात्रावृत्तवाली रचनायें 'परिमल' के दूसरे खंड में हैं। इनमें लड़ियां असमान हैं, पर अंत्यानुप्रास है। आधार मात्रिक होने के कारण, ये गाई जा सकती हैं; पर संगीत अंग्रेजी ढंग का है। इस गीत को मैं 'मुक्तगीत' कहता हूँ।"

आत्मिक-संवेदन हो। परन्तु, वैयक्तिक वेदना को निराला सदैव अकाव्योपयोगी मानते रहे हैं। उन्होंने 'सरोज-स्मृति' में लिखा है—

दुख ही जीवन की कथा रही,
क्या कहूँ आज, जो नहीं कही ?^१

निराला के चेतन प्रयत्नों के रहते हुए भी उनके कुछ प्रगीतों में वैयक्तिक वेदना का स्वर उभर ही उठा है। 'स्मृति' कविता की आरम्भिक पंक्तियाँ देखिये—

जटिल जीवन-नद में तिर-तिर
डूब जाती हो तुम चुपचाप,
सतत द्रुतगतिमयि अयि फिर-फिर
उमड़ करती हो प्रेमालाप;
सुप्त मेरे अतीत के गान
सुना प्रिय हर लेती हो ध्यान।^२

स्पष्ट है कि निराला की सांस्कृतिक अभिवृत्ति उन्हें निजी वेदना के प्रदर्शन से रोकती रही है। यह भी कहा जा सकता है कि निराला का प्रेम असफल प्रेम नहीं था, किन्तु क्या इसके लिए कवि को दोषी ठहराया जा सकता है? क्या असफल प्रेम ही प्रगीत-काव्य का मूल सहचर है?

हमारा विषय निराला के प्रारम्भिक प्रगीत नहीं है, अतएव हम इस क्षेत्र में अधिक देर तक नहीं रह सकते। वैयक्तिक वेदना के सम्बन्ध में एक ही वाक्य और कहा जा सकता है। कदाचित् यह वेदना स्वच्छन्दतावादी काव्य की सबसे बड़ी कमजोरी भी रही है। इसका महाकवि गेटे ने रह-रह कर स्मरण दिलाया है।^३ आज के वस्तुवादी युग में जब कि यथार्थ जीवन-संघर्षों का काव्य-चित्रण प्रमुख हो रहा है,

१ निराला : अनामिका—'सरोज स्मृति' से, पृ० १३४।

२ निराला : परिमल—'स्मृति कविता से, पृ० १०६।

3 Quoted by Scott James : Making of Literature, P. 236.

(a) Poetry of the highest type manifests itself as altogether objective; when once it withdraws itself from the external world to become subjective it begins to degenerate. so long as the Poet gives utterance merely to his subjective feelings, he has no right to the title.

(b) where the subject is taken immediately from the authors, personal sensations and experiences, the excellence of the particular poem.....is often a fallacious pledge of genuine poetic power.

व्यक्तिवाद की भूमिका पर लिखा गया प्रेम-काव्य उपेक्षित भी होने लगा है। आज कविता का अधिक सशक्त आधार ढूँढ़ा जा रहा है।^१

हमें काव्यगत व्यक्तिपरकता और आत्मपरकता में अन्तर करना होगा तभी हम प्रगीत काव्य के केन्द्रित तत्त्व आत्मपरकता को यथार्थ रूप में समझ सकेंगे। जब कि व्यक्तिपरकता (सब्जेक्टिविटी) काव्य का एक दुर्बल मानसिक पक्ष है और अंततः कुंठा काव्य में परिणत होती है, तब आत्मपरकता उसका सबल भावपरक पक्ष है और वह दार्शनिक या रहस्यात्मक आलोक काव्य में परिणत होती है।

निराला की इस आरम्भिक प्रगीत-सृष्टि पर एक आरोप यह भी है कि निराला मूलतः गायक हैं, कवि नहीं। अपने प्रगीतों में और विशेषकर अपनी गीत-सृष्टियों में जिन्हें हम ऊपर प्रगीत का ही एक अंग कह चुके हैं, स्वर-संधान, अनुप्रास-योजना और शब्दों की अनुसरणात्मक नियोजना में कवि इतना व्यस्त है— अभिव्यंजना-कौशल के लिये इतना तत्पर है, कि उन प्रगीतों के वस्तु या भाव-पक्ष में सृजनात्मक प्रतिभा की झलक नहीं मिलती। आरोप निराला के विशुद्ध काव्य-वैभव को देखते हुए अयथास्थान ही नहीं, कदाचित एक दृष्टि-दोष का परिचायक भी है। निराला में संगीत और काव्य-तत्त्वों का एक साथ समाहार हुआ है। उनके काव्यात्मक संगीत का एक उदाहरण देखा सकता है—

दे मैं कल्ल वरण

जननि दुखहरण पग राग रंजित मरण

‘पग राग रंजित मरण’ की कल्पना एकदम नवीन है और श्रेष्ठ कवि को भी महत्व दे सकती है। ऐसी अनेकानेक पंक्तियाँ निराला-प्रगीतों में बिखरी हुई हैं।

● मध्यवर्ती प्रगीत

‘गीतिका’ के प्रकाशन के पश्चात् सन् ३६, ३७, ३८ के निराला के प्रगीत एक भिन्न श्रेणी में आते हैं जिसे हम उनकी मध्यवर्ती प्रगीत-श्रेणी कह सकते हैं। इन्हीं वर्षों में निराला की कविता में व्यंगात्मकता भी आने लगी थी जिसकी चर्चा हम अन्यत्र कर चुके हैं। व्यंगात्मक कविताओं की एक अलग ही श्रेणी है जिनसे भावात्मक प्रगीतों की श्रेणी बिल्कुल भिन्न है। निराला के इस समय के भावात्मक

१ आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी : आधुनिक साहित्य —(‘स्वच्छंदता और परम्परा’ लेख से) पृ० ३८८।

—“जो काव्यधारा अत्यंत अनियमित पद्धति, संयम रहित प्रवृत्ति को प्रोत्साहन देती है, वह रोमेंटिक अति की सूचक है। काव्य में भावना के अतिरेक से जो असंयम आता है, नियमों की जो अबहेलना होती है, रोमेंटिसिज्म की अति की परिचायक है।”

प्रगीतों में ('सम्राट् एडवर्ड अष्टम के प्रति', 'जायसी', 'बनबेला', 'सरोज-स्मृति', 'वे किसान की नई बहू की आँखें', 'राम की शक्तिपूजा', 'तुलसीदास', 'सेवा-प्रारम्भ', आदि लघु दीर्घ प्रगीत) दीर्घ प्रगीतों की ही संख्या अधिक है जो दूसरी 'अनामिका' और 'तुलसीदास' पुस्तक में प्रकाशित हुए हैं।

इन संक्रांतिकालीन प्रगीतों को देखने पर निराला के काव्य में होने वाले परिवर्तन का आभास मिल जाता है। ये सभी प्रगीत बड़े आकार में भी अधिक संतुलित, चिंतनप्रधान और आवेश-शून्य दिखाई देते हैं। इनमें कवि के प्रौढ़ व्यक्तित्व की एक नई ही झलक दृष्टिगत होती है। इनमें वर्णनात्मक और वैचारिक पक्षों का भी योग हो गया है। 'सम्राट् एडवर्ड अष्टम के प्रति' कविता में निरालाजी ने एक अत्यंत जटिल समस्या पर—कर्त्तव्य और प्रेम में कौन श्रेष्ठ है; इस प्रश्न पर—निश्चयात्मक विचार व्यक्त किया है। जिस समय अष्टम एडवर्ड ने अपनी प्रेयसी के प्रेमवश अपना राज्य पद छोड़ा था, उस समय देशी-विदेशी पत्रों में यह अनवरत चर्चा का विषय बन गया था। इंग्लैंड के अधिकांश राजनीतिज्ञ और विचारक एडवर्ड की इस घोषणा पर असंतुष्ट थे। व्यक्तिगत प्रेम की सामाजिक कर्त्तव्य के सम्मुख वह महत्ता और महिमा उन्हें स्वीकार न थी, जो सम्राट् अष्टम एडवर्ड ने उसे दी थी। यद्यपि इस घटना के साथ वैयक्तिक प्रेम के अतिरिक्त कुछ अन्य सूत्र भी जुड़े हुए थे, जिनमें से एक सूत्र इंग्लैंड की वह राजकीय रूढ़िवादिता थी, जिसके अनुसार इंग्लैंड का कोई शासक किसी पूर्व परिणीता का वरण नहीं कर सकता, और यदि वरण करे, तो उसे राजच्युत होना पड़ता है। यह सूत्र वास्तव में सामाजिक आदर्शों का सूत्र ही कहा जायगा। निराला ने इन समस्त प्रक्रियाओं पर विचार करने के पश्चात् सम्राट् अष्टम एडवर्ड की अभ्यर्थना की है और उनके राज्य-त्याग को सामाजिक जीवन के लिये ऐतिहासिक महत्व का कार्य बताया है। स्पष्ट है कि इस रचना में निराला के चिंतन का समृद्ध योग हुआ है।

'प्रेयसी' और 'बनबेला' दोनों ही श्रृंगारिक प्रगीत हैं। परन्तु जब कि 'प्रेयसी' में विशुद्ध श्रृंगारिक भावना का आलेखन हुआ है और नारी की सामाजिक क्रांति-दर्शिता का निःशंक निरूपण किया गया है, तब 'बनबेला' में निराला प्रकृति-सौंदर्य की पृष्ठभूमि में सामाजिक वैषम्यों पर फलितियाँ सुनाते हैं। इस कविता में निराला का व्यंग-पक्ष भी सामने आ गया है। 'वे किसान की नई बहू की आँखें' में ग्रामीण नारी के रूप-सौंदर्य का अनुपम आलेखन है। अब तक निराला अपने काव्य में ग्रामीण भूमिका पर नहीं गये थे। यह उनकी विचार-दृष्टि का, उनके अनुभव-क्षेत्र का एक परिवर्द्धित आयाम है।

'सरोज स्मृति', 'राम की शक्तिपूजा' और 'तुलसीदास' निराला की ऐसी रचनायें हैं, जिन पर हिन्दी के समीक्षकों ने शत-शत प्रशंसा-पुष्प चढ़ाए हैं।

डा० बच्चन जैसे भिन्न प्रकृति के कवि ने भी 'राम की शक्तिपूजा' को निराला की सर्वश्रेष्ठ रचना कहा है। 'सरोजस्मृति' की शोक-गीति के मार्मिक और अव्याहत भाव-सौंदर्य पर तो दो रायें हो ही नहीं सकतीं। परन्तु 'राम की शक्तिपूजा' और 'तुलसीदास' की संक्रांतिकालीन रचनाएँ अपनी भाषागत क्लिष्टता और दुरूहता में क्या उसी स्थान की अधिकारिणी हैं, जिस स्थान की अधिकारिणी 'सरोज-स्मृति' है ? इन दोनों रचनाओं के काव्य-सौंदर्य पर विचार करते हुए सबसे पहले यह जान लेना आवश्यक है कि यद्यपि इनके मूल में कवि की निजी समन्वित कल्पना प्रमुख है और इस कारण इसमें प्रगीतात्मक गुण भी विद्यमान हैं, परन्तु ये ऐतिहासिक और पौराणिक कथाओं और अनुश्रुतियों पर भी आश्रित हैं, और उनका वर्णनात्मक रूप भी प्रस्तुत करती हैं। लोक जीवन से सम्बन्धित और उसमें व्याप्त कथायें होने के कारण इनमें वीरगीत या 'बैलेड' कविता के उपकरण भी मौजूद हैं। इस प्रकार ये दोनों एक मिश्रित काव्य-रूप के अन्तर्गत आती हैं और फिर इन्हें निराला की प्रतिभा ने एक तीसरा रूप भी देने का प्रयत्न किया है, जिसे अन्य उपयुक्त शब्द के अभाव में महाकाव्योचित रूप भी कहा जा सकता है। आश्चर्य यह है कि लोक गाथायें अधिक सहज और भावात्मक होती हैं; परन्तु निराला ने इनकी सहज भावात्मकता का पक्ष गौण कर दिया है और इन्हें आलंकारिक वैशिष्ट्य देने का प्रयत्न किया है। इस प्रकार निजी कल्पना, लोकप्रचलित अनुश्रुति और साहित्यिक पांडित्य प्रदर्शन के त्रिविध आयामों से संबद्ध ये कवितायें अपने विशिष्ट काव्य-रूप का निर्णय करने में ही असमर्थ हैं। फिर भी ये समाहित काव्य तो हैं ही और हमारी दृष्टि में किसी रूढ़ काव्य-रूप की अपेक्षा समाहित काव्य स्वतः एक बड़ी वस्तु है।

'राम की शक्ति पूजा' में प्रगीतात्मक प्रेरणा देखने के लिये हम निम्नलिखित पंक्तियाँ उद्धृत करते हैं, जिनमें निराला के निजी व्यक्तित्व के संघर्षों की छाया राम के चरित्र में प्रतिबिम्बित है—

“धिक् जीवन को जो पाता ही आया विरोध
धिक् साधन जिसके लिये सदा ही किया शोध।”

इसी प्रगीत भूमिका से प्रकृति वर्णन की उन पंक्तियों में निरालाजी संचरण कर जाते हैं जिनमें महाकाव्योचित उत्कर्ष और गरिमा है—

हो श्वमित पवन—उनचास, पिता—पक्ष से तुमुल
एकत्र वक्ष पर बहा बाष्प को उड़ा अतुल,

१ देखिये, डा० हरिवंशराय बच्चन का लेख, 'यह मतवाला—निराला' (साप्ताहिक हिन्दुस्तान, ११ फरवरी ६२) पृ० ७ “.....ये पंक्तियाँ 'राम की शक्तिपूजा' की बीज भी हैं, जो निराला की सर्वश्रेष्ठ रचना है।”

२ निराला : अनामिका : 'राम की शक्तिपूजा' (रचना २३-१०-३६), पृ० १६३।

शत घूर्णावर्त, तरंग-भंग उठते पहाड़,
जल-राशि राशि-जल पर चढ़ता खाता पछाड़,
तोड़ता बन्ध-प्रतिसन्ध धरा, हो स्फीत-वक्ष
दिग्विजय-अर्थ प्रतिपल समर्थ बढ़ता समक्ष'

इस प्रकार काव्य के लक्ष्य की दृष्टि से काव्य-रूप का प्रयोजन भावना-विशेष का समन्वित निरूपण ही कहा जायगा। 'राम की शक्ति पूजा' और 'तुलसीदास' में इस प्रकार की भाव संसृष्टियाँ प्राप्त होती हैं जो स्वयं ही श्रेष्ठतम काव्य की विशेषता नहीं कही जा सकती। कुल मिलाकर ये रचनायें साहित्यिक औदात्य की भूमि पर प्रतिष्ठित हैं। ये दोनों काव्य-रचनायें आकार में विशाल होती हुई भी अतिरिक्त पांडित्य के भार से बोझिल हैं। इनमें आलंकारिकता का अनावश्यक आग्रह है। विशुद्ध काव्य-सौष्ठव की दृष्टि से इनमें छंद-रचना सम्बन्धी और अलंकार-योजना सम्बन्धी प्रयत्न या आयास दिखाई पड़ता है जो अत्यन्त नहीं है। विद्वानों द्वारा इनका अधिक अभिनिवेशपूर्ण अध्ययन अपेक्षित है।

● निराला के परवर्ती प्रगीतों का वर्गीकरण

सन् ३८-३९ के पश्चात् निराला के प्रगीत एक तीसरी भूमिका पर पहुँचने लगते हैं। इस समय की उनकी प्रगीत रचनायें प्रयोगात्मक अधिक हैं। जिन व्यंग्य-प्रगीतों का आरम्भ उन्होंने ३५-३६ के आसपास किया था, वे परवर्तीकाल में अधिक संख्या में लिखे गये हैं। कहा जा सकता है कि निराला ने व्यंग्य-शैली का एक नया विन्यास ही कर लिया है। उनका दूसरा प्रयोग उर्दू छंदों में लिखी गई गजलों का है। व्यंग्य-प्रगीत आकार में छोटे भी हैं और 'कुकुरमुत्ता' और 'खजोहरा' जैसे लम्बे भी हैं। परन्तु गजलों प्रायः समान आकार की हैं। निराला के परवर्ती प्रगीतों का एक तीसरा वर्ग प्रशस्तिमूलक कविताओं का है। इसके अन्तर्गत कुछ साहित्यिक और राजनीतिक नेताओं की भावात्मक प्रशंसा की गई है। प्रशस्ति-गीतों का काव्यरूप सुनिर्दिष्ट नहीं है। इनका रूप-विन्यास प्रायः शिथिल है। इन प्रशस्तिमूलक प्रगीतों के समीपवर्ती कुछ ऐतिहासिक और दार्शनिक प्रशस्तियाँ भी हैं, जैसे 'सहस्राब्दी'; जिसमें विक्रमादित्य के पश्चात् भारतीय संस्कृति के विकास का और उसके प्रमुख उन्नायकों का आलेख किया गया है। इसी प्रकार 'महात्मा बुद्ध के प्रति' कविता दार्शनिक प्रशस्ति ही कही जायगी। इन प्रशस्तियों के समकक्ष 'परमहंस श्री रामकृष्णदेव के प्रति' तथा 'देवी सरस्वती' शीर्षक अभ्यर्थनामूलक प्रगीत हैं। 'कैलाश में शरत्' शीर्षक एक अन्य रचना है, जिसमें अतिकाल्पनिकता का आधार लेकर एक फेन्टेसी तैयार की गई है।

हम कह चुके हैं, पिछले वर्षों में निरालाजी ने गेयगीतों की रचना अधिक की है। उनके स्वच्छंद प्रगीत इस अवधि में अपेक्षाकृत कम हैं, यद्यपि व्यंग्य-प्रगीत को

प्रगीतों की एक नयी विधा मान लेने पर और गजलों को भी प्रगीत की संज्ञा दे देने पर, उनकी संख्या पर्याप्त हो जाती है।

अब हम क्रमशः उपर्युक्त विभिन्न वर्गों में विभाजित उनकी परवर्ती प्रगीत-रचनाओं का विवेचन करेंगे। पिछले अध्यायों में हमने निराला की प्रयोग-शैली, उनकी प्रगतिशील भावना और उनके उर्दू पद्धति के काव्य के वस्तु और शैलीपक्ष पर विचार किया है। इस अध्याय में हम प्रगीत काव्य-रूप की दृष्टि से उनका निरीक्षण करेंगे।

● निराला के परवर्ती गीतों का अध्ययन

हम इस अध्याय के आरम्भ में कह चुके हैं कि निराला काव्य के परवर्तीकाल में प्रगीतों की संख्या अधिक नहीं है। इसी अध्याय में हमने यह भी कहा है कि यदि निराला की व्यंग कविताओं को प्रगीत की श्रेणी में ही रखा जाय तो उनके परवर्ती प्रगीतों की मात्रा पर्याप्त हो जाती है। हमें आरम्भ में ही देख लेना चाहिये कि निराला की व्यंग-रचनाओं और गजलों को प्रगीत-कला के अंतर्गत लेना कहाँ तक उचित होगा। स्वयं प्रगीत निश्चयार्थक नहीं है। सामान्यरूप से आत्माभिव्यंजक रचनाओं को प्रगीत कहते हैं। स्वाभावतः उनका आकार अधिक बड़ा नहीं होता। डबल्यू० एच० हडसन ने प्रगीत शब्द को आत्मपरक काव्य (Subjective Poetry) के अर्थ में प्रयुक्त किया है। इस प्रकार कविता को वस्तुपरक, कथात्मक या वर्णनात्मक काव्य के विपक्ष में रखा गया है। यद्यपि स्वयं हडसन ने यह कहा है कि ये दोनों काव्य-वर्ग एक दूसरे से नितान्त पृथक् नहीं हैं और इनकी सम्मिलन-भूमियाँ भी नगण्य नहीं हैं।^१

प्रगीत कविता को आत्मपरक मानने के पश्चात् और कथात्मक या दृश्य-काव्य से उसका अंतर करने के पश्चात् हडसन ने उसके भेदोपभेदों का भी वर्णन किया है। उसने अत्यंत सीमित वैयक्तिक भूमिका से लेकर राष्ट्रीय और धार्मिक गीतों की सामूहिकता तक प्रगीत काव्य की व्याप्ति बताई है। सरलतम प्रेम से लेकर जटिल दार्शनिक भावों तक प्रगीत की गति होती है और इसी के अंतर्गत जीवन के हल्के विनोदात्मक पक्ष भी आ जाते हैं, जिन्हें फ्रेंच भाषा में *Vers de Societe* कहा गया है। चूंकि व्यंग-विडम्बना में केवल आत्मतत्त्व का ही प्रकाशन नहीं होता; बल्कि किसी वस्तु या आलंबन का आधार रहता है। इसीलिए यह प्रश्न

1 W. H. Hudson : An Introduction to the Study of Literature.

“We may begin with personal or subjective poetry to which, rather loosely, the name lyrical is often applied.....In this sense, much poetry belonging to the impersonal division-like the old ballads and even epics-might strictly speaking be described as lyrical.....Moreover there is much lyrical poetry which is communal rather than personal in character.” P. 126, 127.

उठता है कि विशुद्ध प्रगीत-काव्य में, जो मूलतः भावमूलक और सौंदर्य-दायक होते हैं, व्यंग और उपहास की वैचारिक और अपेक्षाकृत रुक्ष मनोभावना के लिये कहाँ तक स्थान है ?

ऊपर हम हडसन द्वारा प्रस्तुत किये गये प्रगीत भेदों में *Vers de societe* का उल्लेख कर चुके हैं। इसी की सीमा में व्यंग या विनोद प्रगीत आते हैं। विचार-पूर्वक देखने से ज्ञात होता है कि व्यक्तिगत मनोभावना भी व्यंग और हास्य का रूप ग्रहण कर सकती है और साधन रूप में किसी वस्तु या स्थिति को लेकर कविगण वैयक्तिक उद्गार व्यक्त कर सकते हैं। मूल रूप में कवि की दृष्टि का प्रश्न रहा करता है। यदि उसकी दृष्टि आत्मपरक है, अपनी निजी चेतना के किसी अंश को वह उद्घाटित कर रहा है, तो वह बाह्य वस्तु का सहारा लेकर भी वर्णनात्मक काव्य की रचना नहीं करेगा, बल्कि 'अपनी बात' कहना चाहेगा और यह अपनी बात ही प्रगीत-काव्य का व्यापक मूलाधार है। सारांश यह कि 'लिरिक' या प्रगीत कविता के जो अत्यंत संकीर्ण और नितान्त आत्मपरक व्याख्याता हैं, उन्हें छोड़कर शेष सभी समीक्षक एक व्यापक आत्मपरकता के साथ साधन रूप में संसार के नाना विचारों और स्थितियों को प्रगीत काव्य के उपयुक्त मानते हैं। इस संबंध में प्रगीत की वह परिभाषा दृष्टव्य है जो पी० टी० पालग्रेव ने अपनी प्रसिद्ध 'गोल्डन ट्रेजरी' काव्यसंग्रह की भूमिका में प्रस्तुत की है। उसका आशय यह है "लिरिक (या प्रगीत) की रचना किसी एक ही विचार, भावना अथवा परिस्थिति से संबंधित होती है और उसकी रचनाशैली संक्षिप्त तथा भावनारन्जित होती है।" यहाँ हम देखते हैं कि पालग्रेव ने आत्मपरकता को एक व्यापक आधार दिया है। पश्चिम के वर्तमान काव्य-विकास को देखते हुये प्रगीत की यह व्यापक परिभाषा अपेक्षित भी है; क्योंकि आज के जीवन में जिस प्रकार असंतोष और शंकाओं का प्राधान्य है उसी प्रकार आज के काव्य में व्यंग की प्रवृत्तियाँ बढ़ती जा रही हैं। आज विशुद्ध प्रेम-प्रगीत नाम की वस्तु ढूँढ़ निकालना कठिन हो गया है। वैसी स्थिति में व्यंग और उपहास-शैली की भूमिका पर कवि की वैयक्तिक प्रतिक्रिया के रूप में जो वैचारिक और भावात्मक रचनाएँ प्रस्तुत की जा रही हैं, उन्हें प्रगीत-काव्य की सीमा में मानना सर्वथा उचित होगा।

(१) व्यंग प्रगीत—व्यंग कविता को प्रगीत काव्य की भूमि पर स्वीकार करने या न करने के संबंध में हम ऊपर कुछ आरम्भिक निर्देश कर चुके हैं। प्रगीत चूँकि मूलतः भावात्मक वस्तु है; अतएव सामान्य रूप से व्यंगकाव्य उसमें कठिनाई से समाहित हो सकता है। परन्तु व्यंग-काव्य भी कई प्रकार का होता है। एक तो अत्यंत सहृदय व्यंग का प्रहार, जिसमें बौद्धिक और वैचारिक तथ्यों की प्रमुखता होती है। लक्ष्य का प्राधान्य होता है। रस या भाव की अपेक्षा कटाक्ष की

प्रधानता होती है; परन्तु दूसरे प्रकार की व्यंग्गात्मक कवितायें वे हैं, जिनका व्यंग सुधारात्मक होता है। नवीन निर्माण के लिए पृष्ठभूमि का काम करता है। ऐसी रचानाओं में सहृदयता निवास करती है। कवि ऐसे व्यंग-चित्र देता है जो मानव संवेदना को करुणा या हास्य के माध्यम से जागृत करते हैं। प्रायः ऐसी रचनायें करुण दृश्यों का आधार लेकर निर्मित होती हैं, जैसे निराला की 'दान' शीर्षक कविता। इसमें व्यंग है, पर करुणा भी कम नहीं है। तीसरे प्रकार की वे व्यंग्गात्मक कवितायें होती हैं, जिनमें करुणा कम और हास्य अधिक होता है। इनमें सहृदयता और विनोद का तत्व और भी स्पष्ट रहा करता है। भारतीय विवेचकों ने हास्य को रस या आनन्द तत्व के अन्तर्गत स्वीकार किया है। निराला की 'कुकुरमुत्ता' कविता में व्यंग की अपेक्षा हास्य की प्रधानता है। अतएव वस्तु-दृष्टि से हम इन रचनाओं को प्रगीत के अन्तर्गत ले सकते हैं।

प्रगीत काव्य का दूसरा आधार कलापक्ष या शिल्प से संबन्धित है। भावों की अन्विति, उनकी उचित गत्यात्मकता, उनका समाहार, समग्रता आदि प्रगीत के कलापक्ष के लिये आवश्यक हैं। प्रगीत कला में बाह्य अंगों की अपेक्षा अंतरंग निर्माण की सुचारुता अपेक्षित होती है। उसका वस्तु संगठन मानसिक आत्मसंपूर्णता के आधार पर परखा जा सकता है। निश्चय ही व्यंगमूलक कविताओं में प्रेम और सौन्दर्य की वैयक्तिक अनुभूतियाँ नहीं हो सकतीं। क्योंकि व्यंग का अर्थ ही है किसी न किसी प्रकार का आक्षेप। प्रेम आक्षेप को बर्दाश्त नहीं कर सकता। परन्तु कवि का आशय यदि विरोधीतत्वों को हटाकर स्वस्थ समाज की प्रतिष्ठा करना है, जहाँ प्रेम और सौन्दर्य का स्वस्थ और अव्याहत विकास हो सके, तो यहाँ भी एक भावात्मक दीप्ति बनी रहती है, जो प्रगीत-काव्य का केंद्रित आधार है।

निरालाजी की व्यंग्गात्मक कविताओं में हास्य और विनोद की प्रमुखता सर्वत्र पायी जाती है। 'नये पत्ते' काव्यसंग्रह में 'रानी और कानी' कविता हास्य और करुणा का अद्भुत मिश्रण है। कुल मिलाकर रानी के जीवन में एक विवशता है, जिसका दायित्व उस पर नहीं है। वह जन्म से ही कानी है। प्रकृति ने ही उस पर व्यंग किया है। समाज में भी उसके लिये कोई सद्भावना नहीं है, यद्यपि वह गार्हस्थिक कार्य में निपुण है। इस विषम स्थिति को चित्रित कर निरालाजी ने समाज पर ही कटाक्ष किया है। किन्तु रानी की माँ पर भी एक हल्का व्यंग है। प्रगीत की दृष्टि से यह रचना किसी समन्वित भाव की सृष्टि न करने के कारण पूर्णतः सफल नहीं है; फिर भी इसमें एक संपूर्ण चित्र प्रगीत-काव्य के अनुरूप है। इसी प्रकार 'मास्को-डायलाग्स' की रचना में प्रगीतात्मक अन्विति है और विशुद्ध विनोदात्मक होने के कारण इसमें हास्य प्रगीत के लक्षण यथेष्ट मात्रा में उभरे हैं। 'झींगुर डटकर बोला, 'महगू महंगा रहा' आदि हास्य-सृष्टियों में प्रगीतात्मकता के लक्षण मौजूद हैं।

‘कुकुरमुत्ता’ और ‘खजोहरा’ तथा ‘स्फटिक शिला’ आख्यान-आत्मक आधार पर लिखे गये हैं। अतएव इन्हें विशुद्ध प्रगीत की भूमिका पर रखकर देखना समीचीन नहीं होगा। परन्तु यह आवश्यक नहीं कि आख्यान-मूलक रचनाओं में प्रगीतात्मकता का अस्तित्व ही न रह जाये। छायावाद युग के आख्यान-काव्य में प्रगीत-तत्व बड़ी मात्रा में मिलता है। निरालाजी उसी युग के कवि रहे हैं। अतएव उनके आख्यान-आत्मक व्यंग-काव्य में प्रगीत की आभा पायी जाती है। विशेषकर ‘कुकुरमुत्ता’ में तो आख्यान का पक्ष अत्यन्त न्यून है और नाटकीय संवाद का तत्व प्रमुख है। अपनी प्रगीतात्मक विशेषता के कारण ‘कुकुरमुत्ता’ निराला के व्यंग काव्य में सर्वश्रेष्ठ माना जाता है और सर्वथा उचित भी है। इसमें ‘खजोहरा’ जैसी कुरूपता नहीं है और न ‘स्फटिक-शिला’ का सा अनगढ़ यथार्थ है। ‘कुकुरमुत्ता’ को दो भागों में लिखा गया है। प्रथम भाग में प्रगीत की विशेषतायें अधिक मुखर हैं।

निराला ने इन व्यंग-प्रगीतों में मुक्तछन्द का एक नया ही स्वरूप उद्घाटित किया है। जब कि उनका आरंभिक मुक्तछन्द वर्णों की गति पर चलता है और अधिक प्रवाहपूर्ण है, तब उनका यह व्यंग-काव्य मुक्तछन्द की मात्रिक पद्धति को अपनाकर चला है। पंक्तियाँ रुक-रुक कर आगे बढ़ती हैं। विराम के लिये अधिक अवकाश है। व्यंग और विनोद में गति के तत्व की अपेक्षा अभिज्ञता और समझदारी की अधिक अपेक्षा होती है। कदाचित् इसीलिए निराला ने अपने व्यंग-प्रगीतों में मात्रिक मुक्तछन्द की भूमि अपनाई है।

(२) गजल प्रगीत—निराला के परवर्ती काव्य में उर्दू शैली की गजलों की एक बड़ी संख्या मिलती है। इन गजलों के वस्तुपक्ष, भाषा, शैली आदि पर हम एक स्वतंत्र अध्याय में विचार कर चुके हैं। यहाँ हम उन गजलों के प्रगीतात्मक सौन्दर्य पर एक दृष्टि डालना चाहते हैं। उर्दू में गजल की मूल इकाई की दो पंक्तियाँ होती हैं; जिसे शेर कहते हैं। परन्तु कई शेर मिलकर एक दूसरी इकाई भी बनाते हैं, जिसे गजल कहा जाता है। गजलें कई प्रकार की होती हैं। कुछ गजलों के शेर परस्पर समान भाव की भूमिका पर समन्वित होते हैं, तब उन्हें नज्म कहा जाता है। जब किसी गजल के सभी शेर समन्वित न हों, बल्कि स्वतंत्र हों, तब गजल प्रायः स्फुट भावों का प्रदर्शन मात्र होती है और ऐसी गजलों में चमत्कार और उक्ति-पक्ष की प्रधानता रहती है। दूसरे प्रकार की गजलों में भावपक्ष प्रधान होता है। उसमें भावान्विति अधिक होती है।

निरालाजी ने अधिकतर भाव-समन्वित गजलें लिखी हैं। स्फुट गजलों की संख्या अपेक्षाकृत कम है; इसलिए निराला की इन गजलों में प्रगीत काव्य का सौन्दर्य पाया जाता है।

हंसी के तार के होते हैं ये बहार के दिन
हृदय के हार के होते हैं ये बहार के दिन '

के सभी शेरों में एक शृंगारिक भावना का योग दिखाई देता है । निरालाजी मूल रूप में चमत्कारवादी कवि नहीं हैं । इसीलिये उनकी गजलें उक्ति-कौशल को प्रमुखता न देकर भावविन्यास को प्रमुखता देती है ।

कुछ गजलें उर्दू की शब्दावली में लिखी गई हैं ; पर कुछ विशुद्ध हिन्दी का सौन्दर्य लिये हुए हैं, यद्यपि उनका छंद उर्दू का है । हम यह देखते हैं कि हिन्दी की प्रमुखता लेकर लिखी गई गजलें अधिक भावात्मक हैं और प्रगीत-काव्य के सौन्दर्य से समन्वित हैं । परन्तु उर्दू की अधिकता लिये हुए शेर किसी समाहित भावचेतना का आभास नहीं देते । दोनों प्रकार की कविताओं का अन्तर नीचे के उदाहरणों से स्पष्ट हो जायेगा—

हिन्दी पदावली— रूप की धारा के उस पार

कभी धँसने भी दोगे मुझे

विश्व की श्यामल स्नेह सँवार

हँसी हँसने भी दोगे मुझे^१

उर्दू पदावली— गिराया है जमीं होकर, छुटाया आसमां होकर

निकाला दुश्मने जाँ और बुलाया मेहरबां होकर

स्पष्ट है कि पहली कविता पढ़ने के पश्चात् हम प्रगीत की भावमयता में डूब जाते हैं, जब कि दूसरी कविता को पढ़कर हम केवल वाहवाही दे सकते हैं । कुछ बहरें लोक-लयों के आधार पर भी रची गई हैं । ऐसे पद्यों में लोक-गीतों का आंशिक आस्वाद मिलता है । जो गजलें विशुद्ध भावात्मक न होकर व्यंग-विनोद या किसी अन्य सामाजिक उद्देश्य को लेकर लिखी गयीं हैं, वे स्वभावतः प्रगीत काव्य की विशेषताओं से बहुत कुछ रिक्त हैं ।

(३) प्रशस्तिमूलक प्रगीत—निरालाजी के प्रयोगात्मक प्रगीतों से—जिनमें व्यंग और हास्य-प्रगीत तथा गजलें आती हैं—आगे बढ़ने पर हमें विशुद्ध भावात्मक शैली के कुछ अन्य प्रगीत-रूप मिलते हैं जिनमें प्रशस्तिमूलक प्रगीतों की एक बड़ी संख्या है । ये प्रशस्तियां यदि एक ओर राजनीतिक और साहित्यिक व्यक्तियों के प्रति हैं, तो दूसरी ओर धार्मिक और आध्यात्मिक नेताओं के प्रति भी हैं । 'सहस्राब्दी' शीर्षक एक अन्य प्रशस्ति-प्रगीत है, जिसमें हजार वर्षों के ऐतिहासिक और सांस्कृतिक विकास को स्मरण किया गया है और उसके प्रमुख उन्नायकों को श्रद्धांजलि दी गयी है ।

राजनीतिक प्रशस्तियों में श्रीमती विजयलक्ष्मी पण्डित को दो प्रशस्तियां भेंट की गई हैं । एक हिन्दी में, दूसरी बंगला में । बंगला प्रशस्ति चतुर्दशपदी के

१ निराला : बेला, पृ० २३ ।

२ निराला : अणिमा पृ० ५०-५१ ।

रूप में लिखी गयी है और उसका हिन्दी अर्थ भी दे दिया गया है। हिन्दी-प्रशस्ति संस्कृत बहुल है और मूलतः शृंगारिक सांस्कृतिक-भावना से समन्वित है। बंगला वाली प्रशस्ति में विनोद की प्रमुखता है। ये दोनों प्रशस्तियाँ, यद्यपि प्रगीत की रूपात्मक भूमि पर अच्छी उतरी हैं, परन्तु इनका भावात्मक स्वरूप गहराई का द्योतक नहीं है।

साहित्यिक प्रशस्तियों में 'आचार्य शुक्ल के प्रति' 'आदरणीय प्रसाद जी के प्रति' 'श्रीमती महादेवी वर्मा के प्रति' तथा 'संत कवि रविदास' के प्रति मुख्य हैं।^१ शुक्ल जी के प्रति श्रद्धांजलि चतुर्दशपदी के माध्यम से दी गयी है। इसमें प्रतिप्रदा से लेकर चतुर्दशी तक निरन्तर विकासमान शुक्लजी की प्रतिभा को आलंकारिक रीति से अभिव्यक्त किया गया है। इस रचना में पांडित्य की प्रमुखता के साथ आलंकारिक चमत्कार अच्छी मात्रा में है।

'आदरणीय प्रसाद जी के प्रति' लम्बी प्रशस्ति-कविता है, जिसमें भावात्मक और तथ्यात्मक दोनों शैलियों का समन्वय है। प्रसाद के व्यक्तित्व के प्रति निराला की भावना सम्मानास्पद तो थी ही; प्रसाद के गौरव के प्रति अतिशय भावाकुल भी थी। कदाचित् इसीलिये इस प्रगीत में कल्पना-छवियों का सुन्दर समारोह आ सका है।

हुआ प्रवर्तन, खुली तुम्हारी ही आँखों से
उड़ने लगे बिहग ज्यों, युवक मुक्त पाँखों से
खोये हुये राह के भूले हुये कभी के
बड़े मुक्ति की ओर भाव पा अपने जी के २

प्रसाद की जीवनी को षट्-ऋतुओं में विभाजित किया गया है। इसी कविता के तथ्यात्मक अंश में सुमित्रानन्दन पन्त से लेकर 'द्विज' 'मुकुल' 'अरुण' 'सावित्री' प्रायः पचास प्रसादयुगीन साहित्यिकों का नामोल्लेख किया गया है, जो प्रसाद की कीर्ति-ध्वजा को धारण करने वाले हैं। प्रगीत की दृष्टि से यह रचना यद्यपि श्रेष्ठकोटि में नहीं जाती, इसमें कवियों और लेखकों के नाम बिना किसी विशेषण के संग्रहीत हैं जो गद्यात्मकता का भान कराते हैं; परन्तु इसका आरम्भिक अंश अधिक सुन्दर प्रगीत कला के अनुरूप हुआ है।

युग प्रवर्तिका 'श्रीमती महादेवी वर्मा के प्रति' कविता भी चतुर्दश-पदी है। इसमें कवयित्री को हिन्दी के विशाल-मन्दिर की वीणावाणी कहा है और उनकी सभी कविता-पुस्तकों के नामों को मुद्रालंकार की भूमिका पर प्रस्तुत किया है। इस कविता में भी चमत्कार की प्रधानता अधिक है।

१ निराला : अणिमा, क्रमशः पृ० २६, २७, ५३, २५।

२ निराला : अणिमा, पृ० २७।

‘संत कवि रविदास के प्रति’ कविता में ज्ञान-गंगा में अविरत बहने वाले समुज्ज्वल चर्मकार को कवि ने अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की है। उन्हें ज्ञान का आकर, परम मुनीश्वर, भक्त कवियों के अग्रज आदि विशेषणों से स्मरण किया है। इस रचना में निरालाजी ने वर्णाश्रम धर्म की जाति-पाँति की संकीर्ण भूमिका को तिलांजलि देने का प्रमाण दिया है।

ऐतिहासिक सांस्कृतिक प्रशस्तियाँ—‘युगावतार परमहंस श्रीरामकृष्ण देव के प्रति’ ‘भगवान बुद्ध के प्रति’, मुख्य रूप से धार्मिक-सांस्कृतिक प्रशस्तियाँ हैं जो निरालाजी के परवर्ती काल में लिखी गयी हैं। इनके अतिरिक्त ‘सहस्राब्दी’ शीर्षक एक अन्य प्रशस्ति ऐतिहासिक आधार पर लिखी गयी है।

‘युगावतार रामकृष्ण देव के प्रति’ कविता में निरालाजी ने रामकृष्ण देव के तत्कालीन सामाजिक महत्त्व का संकेत करते हुए अंत में उन्हें ज्योतिर्मय रूप प्रदान किया है। निरालाजी की वैयक्तिक आस्था रामकृष्ण के प्रति थी। अतएव यह कविता वास्तविक प्रशस्ति के स्तर पर पहुँच सकी है। इसी प्रकार ‘महात्मा बुद्ध के प्रति’, कविता में निराला ने भारतवर्ष के एक अन्यतम आध्यात्मिक पुरुष की अभ्यर्थना करते हुए वर्तमान वैज्ञानिक जड़-विकास की भर्त्सना की है। निराला की अपरिवर्तित आध्यात्मिक दृष्टि की निदर्शक यह एक सुन्दर कविता है, जो उनके परवर्ती काव्य के समीक्षकों द्वारा भुला दी गयी है। निराला को यथार्थवाद या पदार्थवाद की ओर मुड़ते हुये देखने वाले समीक्षकों के लिए यह कविता दृष्टिदोष का निवारण कर सकती है।

‘सहस्राब्दी’ कविता निराला की प्रशस्ति-कविताओं में कदाचित् सबसे अधिक सुव्यवस्थित, गम्भीर, पांडित्यपूर्ण और भावात्मक है। इसकी तुलना निराला के अच्छे से अच्छे प्रगीतों से की जा सकती है। इसमें उन्होंने विक्रमादित्य के राज्या-रोहण से लेकर भारतीय सम्यता और संस्कृति के मध्याह्न के आलोक को चित्रित किया है। वर्णाश्रम धर्म के प्रथम विकास में किस प्रकार देश की चतुर्मुखी जागृति हुई, इसका बड़ा ही तथ्यपूर्ण और प्रभावशाली चित्र उपस्थित किया गया है। शंकराचार्य, रामानुज तथा अन्य दार्शनिकों के मतों का बड़ा ही सटीक निरूपण किया है। राजनीतिक प्रगति के चित्र भी आये हैं। अपने समग्र प्रभाव में यह कविता सुन्दर ऐतिहासिक चित्रों से सुसज्जित होने के कारण अतिशय आकर्षक बन गयी है। कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

नूतन कटाक्ष संबोधन, नूतन उच्चारण,
नूतन प्रियता की प्रियतमता, समता नूतन
संस्कृति नूतन, वस्तु-वास्तुकौशल-कला नवल,
विज्ञान-शिल्प-साहित्य सकल नूतन सम्बल,

पाली के प्रबल पराक्रम को संस्कृत प्रहार,
कालिदास-वररुचि के समलंकृत रुचिर तार ।^१

(४) शेष प्रगीत—निराला के परवर्तीकाल के शेष प्रगीतों में 'स्वामी प्रेमानन्द जी महाराज' 'उद्बोधन' 'सन् ४१' 'तिलांजलि' 'देवी सरस्वती' और 'कैलास में शरत्' 'विचारार्थ' रह गये हैं। इनमें से 'स्वामी प्रेमानन्द जी महाराज' ^२ कविता निराला के रामकृष्णाश्रम के घनिष्ठ सम्पर्क की परिचायक है। आश्रम का आधार लेकर निरालाजी ने अनेक कविताओं में अपनी सम्मान-भावना व्यक्त की है। एकाध स्थान पर उन्होंने आश्रम-जीवन के प्रति अपनी अनास्था भी प्रकट की है। परन्तु अधिकांश स्थलों में वे रामकृष्ण आश्रम से प्रभावित ही दिखाई देते हैं। प्रस्तुत कविता में आश्रम के ही एक संन्यासी का प्रसंग लाया गया है। 'उद्बोधन' ^३ कविता में निराला ने नये समाज की गतिविधि और आशा-आकांक्षाओं का आधार लेकर नये राष्ट्रीय जीवन की एक सुन्दर कल्पना की है। यह नया चित्र उद्बोधनात्मक है। 'तिलांजलि' ^४ कविता में प्रसिद्ध साहित्य और कला मर्मज्ञ श्री आर० एस० पंडित के निधन पर उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित की गई है। 'देवी सरस्वती' ^५ कविता निरालाजी की उस अभ्यर्थनामूलक कविता की परिचायक है, जिसके उदाहरण उनकी पूर्ववर्ती कविताओं में अनेकगः मिलते हैं। इस रचना में प्रकृति के परिवेश में देवी सरस्वती की प्रतीकात्मक प्रतिष्ठा की गई है। 'कैलास में शरत्' ^६ शीर्षक निरालाजी का प्रगीत उनके विक्षेप-काल की रचना है। इसमें निराला की अंतर्मुख कल्पना (फेन्टेसी) का स्वरूप दिखाई देता है। हम क्रमशः इन पांचों कविताओं के प्रगीत-सौन्दर्य पर विचार करेंगे।

'स्वामी प्रेमानन्दजी महाराज' एक आख्यानक प्रगीत है, जिसमें निराला जी ने मुक्त छंद में यथार्थ चित्रण-शैली को अपनाया है। निराला का मुक्तछंद प्रायः भावोल्लास का परिचायक रहा है। परन्तु उसके अन्य प्रकार भी हैं। 'कुकुरमुत्ता' पर लिखते हुए हम ऊपर मुक्तछंद के एक नये प्रयोग का उल्लेख कर चुके हैं। 'प्रेमानन्द जी महाराज' में मुक्तछंद का एक तीसरा ही स्वरूप मिलता है। यहाँ इसका प्रयोग वर्णनात्मक काव्य की भूमिका पर किया गया है। बंगाल के एक मध्य-वित्तीय परिवार के वर्णन से कविता आरम्भ होती है। स्वामीजी के स्वागत में परिवार की

१ निराला : अणिमा, पृ० ३७।

२ वही, पृ० ६८।

३ वही, पृ० ४३।

४ निराला : नये पत्ते, पृ० ७४।

५ वही, पृ० ५८।

६ वही, पृ० ६१।

गृह-सज्जा और स्वागत-चर्या का वर्णन किया गया है। तत्पश्चात् भोजन की विधि का चित्रण करते हुए बंगाली शिष्टाचार का पूरा चित्र सामने रखा गया है। अत्यंत मंदगति से चलती हुई कथा आगे बढ़ती है। अंत में कायस्थ और ब्राह्मण के जातीय भेद का प्रसंग लाकर निरालाजी ने इन भेदों की व्यर्थता सिद्ध की है। यहीं रामकृष्ण आश्रम का लक्ष्य संपन्न और कुलीन समाज की अपेक्षा साधारण समाज के समीप रहने और जनसेवा करने का बताकर कविता समाप्त की गई है। यद्यपि इस कविता में निराला-काव्य का कोई बड़ा उत्कर्ष लक्षित नहीं होता, पर यह बंगाल के वर्ग-विशेष का यथार्थोन्मुख चित्र प्रस्तुत करती है। साथ ही रामकृष्ण आश्रम और उसके सन्यासियों के प्रति श्रद्धांजलि प्रकट करती है। इसकी शैली में नवीनता है। मुक्तछंद का प्रयोग वर्णनात्मक कविता में भी किया जा सकता है, इसे प्रदर्शित करने में इस रचना का महत्व है।

‘उद्बोधन’ अपेक्षाकृत छोटी प्रगीत-रचना है। इसमें निरालाजी ने राष्ट्रीय जीवन के आशापूर्ण भविष्य का भव्य चित्र उपस्थित किया है। भारतीय समाज का भविष्य हिंसा और भौतिक विकास में न होकर विश्वशांति और आत्मोन्नयन में है, यह संदेश इसमें दिया गया है। हमारी वर्तमान स्थिति पिछड़ी हुई है। पर यदि हमारे राष्ट्र में अपने इतिहास के चिर-प्रचलित आदर्शों को ग्रहण करने की रचि हो, तथा पश्चिमी देशों की युद्ध-लिप्सा और आत्म-प्रसार का रास्ता ब्रह्म छोड़ सके, तो उसका भविष्य अप्रत्याशित रूप से उज्ज्वल होगा। यहाँ निराला का समाज-दृष्टा स्वरूप हमारे समक्ष आता है और यद्यपि यह कविता भावात्मक दृष्टि से महत्वपूर्ण नहीं है, पर निराला की समाज-कल्पना का एक उल्लेखनीय आदर्श प्रस्तुत करती है।

‘देवी सरस्वती’ कविता निराला की प्रौढ़ रचनाओं में से एक है। यह लम्बी कविता प्रायः ३०० पंक्तियों में समाप्त हुई है। ‘देवी सरस्वती’ की दिव्य छवि, विभिन्न ऋतुओं के साथ उसकी रूपकात्मक तुलना इस कविता को आकर्षक बनाती हैं। इस प्रकार से निराला यहाँ षट्ऋतु वर्णन की एक नयी शैली प्रस्तुत करते हैं। प्रकृति के विविध रूप-सौंदर्यों के साथ सरस्वती की केन्द्रीय मूर्ति की प्रतिष्ठा एक सुन्दर और रोचक कल्पना है। इस कविता के अन्त में कवि ने ऐतिहासिक क्रम से सरस्वती के उपासक महान भारतीय कवियों की एक आनुक्रमिक रूपरेखा भी दी है।

श्री-समृद्धि का कालिदास में

अमृतास्वादन

साहित्यिकता में

धार्मिकता का सम्बादन ।

हृषं प्रौढ़ता की पीढ़ी,
 कवि कम्बु स्वयम्भू,
 रामायण के मौलिक,
 प्राकृत-शम्भु-स्वयम्भू—
 भिन्न रूप की राम-कथा के
 कविर्मनीषी,
 श्री तुलसी तक सहस्राब्दि के
 रविर्मनीषी^१—

यह रचना निराला की उस भावना की परिचायक है जो पौराणिक प्रतीकों को नये जीवन संदर्भ में रखकर नूतन भावचेतना का उन्मेष करती है।

इस संदर्भ की अंतिम रचना 'कैलाश में शरत्' शीर्षक है, जिसमें निरालाजी ने काल्पनिक कैलाश-यात्रा का वर्णन किया है। इसमें यात्रा के बीच में पड़ने वाले स्थानों और दृश्यों के वर्णन के साथ मानसरोवर के प्राकृतिक सौंदर्य का भावात्मक अंकन किया गया है। इस रचना में वास्तविकता की भूमि इतनी क्षीण है और कवि की मनोमय कल्पना इतनी सक्रिय है कि सारी कविता एक फेन्टेसी या अतिकल्पना के रूप में परिणत हो गयी है। हम यह भी कह सकते हैं कि इसमें निराला एक काल्पनिक, आध्यात्मिक मानसरोवर का दृश्य ही दिखा सके हैं।

इन्द्रीवर करोड़ों
 करोड़ों अन्य कमल, कोकनद, शतदल
 ऐसी सुगन्ध की मदिरा न फिर मिली।
 उन्मद विहार किया।
 एक ओर सिन्धु, एक ओर ब्रह्मपुत्र का
 उद्गम सुहावना।
 एक नदी और है
 यहाँ से निकलती हुई।
 दिव्यता के भीतर हम
 दिव्य बने ही रहे।^२

इस कविता में निराला की विक्षेप दशा के चिन्ह अनेक रूपों में मिलते हैं। एक तो सारी 'कैलाश यात्रा' ही एक विशेष मनःस्थिति का ज्ञापन करती है, जिसमें यथार्थ और कल्पना का भेद भुला दिया गया है। इसमें प्रकृति का वर्णन भी वस्तुमूलकता

१ निराला : नये पत्ते—'देवी सरस्वती' से, पृ० ७२।

२ निराला : नये पत्ते, 'कैलाश में शरत्' से, पृ० ६५।

से बहुत दूर है। सारी कविता विस्मय के आवेश में लिखी गई है और विस्मय की ही सृष्टि करती है।

इस प्रकार निराला की परवर्ती प्रगीत रचनायें यद्यपि संख्या और उत्कर्ष में पूर्ववर्ती प्रगीतों के समकक्ष नहीं पहुँचतीं, परन्तु प्रयोगों की अनेकरूपता, 'चिन्तन की प्रौढ़ता और शिल्प की विविधता के कारण वे निराला-काव्य का स्मरणीय अंग बनी रहेंगी।



निराला के पूर्ववर्ती और परवर्ती काव्य की साहित्यिक तुलना

● पूर्ववर्ती तथा परवर्ती काव्य का तथाकथित अन्तर

[किसी भी बड़े कवि के काव्य में, जिसने अनवरत दीर्घ समय तक काव्य-रचना की है, विषयों, शैलियों, काव्यरूपों और भाषा, छन्द आदि के प्रयोगों में बहुलता हो सकती है और होती ही है। निराला के काव्य में यह बहुलता मौजूद है; परन्तु किसी बड़े कवि के काव्यविकास में दो मूलतः भिन्न और विरोधी जीवन-दृष्टियों का समावेश आश्चर्यजनक घटना होती है, क्योंकि किसी महान कवि के विकास में परस्पर विरोधी जीवन-दृष्टियों का आना उसके व्यक्तित्व की अशक्तता का ही प्रमाण माना जायगा।) काव्यरचना के क्रम में समस्त बहिरंग उत्पादन बदल सकते हैं। अनेकानेक बहुरंगे पुष्पों से काव्यदेवता की अर्चना की जा सकती है, परन्तु ऐसा नहीं होता कि देवमूर्ति ही बदल दी जाय।) निराला के कतिपय समीक्षक यह कह रहे हैं कि निराला अपने आरम्भिक स्वच्छन्दतावाद और उससे सम्बन्धित जीवन-दृष्टि का परित्याग कर अपने परवर्ती काव्य में यथार्थवादी बन गये हैं और अपने पूर्ववर्ती काव्य की मूलवर्ती आध्यात्मिक भावना का तिरस्कार कर न केवल नवीन युग-यथार्थ को अपनाया है, बल्कि अपनी पूर्ववर्ती आध्यात्मिकता को निस्सार घोषित किया है। इसके प्रमाण-स्वरूप निराला की वे कतिपय पंक्तियाँ उद्धृत की जाती हैं, जिनमें उन्होंने कहा है “अधिक न सोचा, मालूम दिया, जो कुछ पढ़ा है, कुछ नहीं। जो कुछ दिया है, व्यर्थ है। जो कुछ सोचा है, स्वप्न है। कुल्ली धन्य है, वही मनुष्य है।”]

कोई भी कवि अपने किसी रचना-क्षण में किसी भावात्मक प्रेरणा से जो कुछ कहता है, उसका प्रासंगिक भाव ही ग्रहण करना समीचीन होता है। काव्य में सिद्धांत-वाक्य नहीं रहा करते। उनमें तो भावात्मक निर्देश और भावव्यंजनायें ही प्रमुख रूप से रहा करती हैं। अतएव कवि के परस्पर-विरोधी अनुकथनों में सामंजस्य देखने के लिये हमें उन कृतियों का उचित संदर्भ में अनुशीलन करना पड़ता है। इसके साथ

हमें यह भी देखना होता है कि उस कवि की परवर्ती काव्य-रचनार्थ निरन्तर उसके बदले हुए दृष्टिकोण का समर्थन करती हैं या नहीं ? कवि के युग की भूमिका ज्यों-ज्यों बदलती है और उसका व्यक्तित्व ज्यों-ज्यों उस युग-भूमिका के अनुरूप परिवर्तित होता है, उन सबका सापेक्षिक अध्ययन करना आवश्यक है। तभी हम किसी कवि के काव्य का समग्र पर्यवेक्षण कर सकते हैं और तभी उस कवि की जीवन-दृष्टि का सम्यक बोध हमें हो सकेगा।

यहाँ हम निराला के काव्य-विकास की रूपरेखा पर संक्षिप्त रीति से विचार करना चाहेंगे और इस विचार के पश्चात् हम यह भी देखना चाहेंगे कि उनके तथा-कथित पूर्ववर्ती और परवर्ती काव्य में किस प्रकार का अन्तर है ? वह कोई मौलिक और नवीन प्रस्थान है अथवा क्रमागत काव्य-सरणी की ही कोई अग्रिम दिशा है ? और अन्त में हमारा यह भी प्रयत्न होगा कि उनके पूर्ववर्ती और परवर्ती काव्य के साहित्यिक वैशिष्ट्य पर भी अपने तुलनात्मक विचार प्रकट करें।

● काव्य-विकास का प्रथम चरण

सन् १९१६-१७ से सन् २३-२४ तक निराला-काव्य का प्रथम चरण उनका प्रयोगकाल कहा जा सकता है। इन वर्षों में निरालाजी की काव्य-रचना पर आवेश-पूर्ण श्रृंगारिक भावना (जुही की कली), उद्दाम भावावेग से पूरित क्रांति का आह्वान (बादल राग), संस्कृति का आदर्शोन्मुखी तरल चित्रण (पंचवटी-प्रसंग), अतीत की स्मृतियों का उद्देगमय आकलन (यमुना के प्रति) अथवा राष्ट्रीय विघटन के कारुणिक उद्गार (शिवाजी का पत्र), स्थान-स्थान पर पाये जाते हैं। स्पष्टीकरण के लिए नीचे हम इनमें से प्रत्येक का एक-एक उदाहरण देना चाहेंगे।

① (१) आवेशपूर्ण श्रृंगारिक भावना :

निर्दय उस नायक ने
निपट निठुराई की,
कि झोंकों की झड़ियों से
सुन्दर सुकुमार देह सारी झकझोर डाली,
मसल दिये गोरे कपोल गोल ;
चौक पड़ी युवती, *

यहाँ यह दृष्टव्य है कि वर्णन पवन और जुही की कली का है। स्त्री और पुरुष, यहाँ अप्रत्यक्ष रूप से ही उपस्थित किये गए हैं। वैसी स्थिति में श्रृंगारिक आवेश एक आवरण के साथ ही उपस्थित हुआ है, तथापि इस श्रृंगारिक चित्रण में एक आवेश तो है ही। निराला की परवर्ती कविताओं में ऐसे चित्र कम ही मिलते हैं।

(२) उद्दाम भावावेग से पूरित क्रांति का आह्वान—

तिरती है समीर सागर पर
अस्थिर सुख पर दुख की छाया—
जग के दग्ध हृदय पर
निर्दय विप्लव की प्लावित माया—
यह तेरी रण-तरी,^१

ऊपर की पंक्तियां समीर-सागर पर तैरने वाली बादल रूपी रणतरी की जो झांकी देती हैं, वह एक प्रचंड भावावेश के कारण अपनी शब्द-योजना में संयत नहीं है। वाक्य भी आवश्यकता से अधिक लम्बा हो गया है। इसी कविता में आगे चलकर— 'विप्लव रव से छोटे ही हैं शोभा पाते,' यहाँ प्रसन्न होने के अर्थ में शोभापाते प्रयोग सुसंगत नहीं है। परन्तु कवि जिस समय इन कविताओं को लिख रहा था, एक महान विद्रोही भावना के प्रवाह में था। अतएव इन कविताओं में निराला की आगामी कविताओं का सा भावसंयम और सुव्यस्थित रेखांकन नहीं आ पाया है।

(३) संस्कृति का आदर्शोन्मुखी तरल चित्रण—'पंचवटी-प्रसंग' कविता में मिलता है। कतिपय पंक्तियां यहाँ उद्धृत की जाती हैं—

जिनके कटाक्ष से करोड़ों शिव-विष्णु-अज
कोटि-कोटि सूर्य-चन्द्र-तारा-ग्रह
कोटि इन्द्र सुरासुर—
जड़ चेतन मिले हुए जीव-जग
बनते पलते हैं—नष्ट होते हैं अन्त में—
सारे ब्रह्माण्ड के जो मूल में विराजती है
आदि शक्ति-रूपिणी,
शक्ति से जिनकी शक्तिशालियों में सत्ता है,
माता हैं मेरी वे।^२ आदि

यद्यपि ये पंक्तियां एक शक्तिशाली भावचित्र की योजना करती हैं, परन्तु इनमें एक सघे हुये कवि की शब्द-योजना के बदले एक अतिशय उद्दाम अतिरेक मिलता है।

(४) अतीत की स्मृतियों का उद्देगमय आकलन—'यमुना के प्रति' (१९२२ ई०) कविता में कवि के भावोद्देग की इतनी प्रचुरता है कि चित्रों की सज्जा संतुलित नहीं हो पाई है। इस रचना में से कहीं से भी १०-१२ पंक्तियां निकाल दी जाय, तो पाठक को उनका अभाव नहीं खटकेगा। कदाचित् यही कारण है कि इस कविता को कई संग्रहों में संक्षिप्त करके रखा गया है और यह सूचना भी

१ निराला : परिमल—बादलराग ६, (१९२० ई०), पृ० १८६।

२ निराला : परिमल—पंचवटी-प्रसंग २, (पृ० २४२)।

नहीं दी गई है कि कितनी पंक्तियाँ कहां से छोड़ दी गई हैं। किसी सुसंबद्ध भाव-योजना वाली कविता से इस प्रकार का व्यवहार नहीं किया जा सकता।

(५) राष्ट्रीय विघटन के कारुणिक उद्गार—‘महाराज शिवाजी का पत्र’ शीर्षक कविता में स्थान-स्थान पर पाये जाते हैं। देखिये—

किन्तु हाय ! वीर राजपूतों की
गौरव-प्रलम्ब ग्रीवा
अवनत हो रही है आज तुमसे महाराज
मोगल-दल-विगलित बस
हो रहे हैं राजपूत,
बाबर के वंश की
देखो आज राजलक्ष्मी
प्रखर से प्रखरतर-प्रखरतम दीखती
दुपहर की धूप-सी,
दुर्मद ज्यों सिन्धुनद;
और तुम उसके साथ
वर्षा की बाढ़ ज्यों
भरते हो प्रबल वेग प्लावन का,
बहता है देश निज—
धन-जन-कुटुम्ब-भाई—
अपने सहोदर-मित्र—
निस्सहाय त्रस्त भी उपाय-शून्य ।^१

इन पंक्तियों में भी शब्दों का अनुरणन अधिक है, जो अंततः उच्चतम कविता का गुण नहीं कहा जा सकता।

है। ये रचनाएँ अधिकतर मुक्त छंद में हैं, जो स्वतः निराला के क्रान्ति भावापन्न व्यक्तित्व का प्रतीक है। इन समस्त रचनाओं की सर्वप्रमुख विशेषता प्रवाह और प्रवेग, एक अनियन्त्रित गति है, जिसके कारण भाव-संयमन में बाधा भी पड़ी है।

इन कविताओं में निराला के आगामी काव्य का सा सौष्ठव, सुधरता और कलात्मकता नहीं आ पाई है; बल्कि उनके स्थान पर कल्पना-छबियों का एक ऐसा अतिरेक है, जिसमें तारतम्य की बहुत कुछ कमी है। 'यमुना के प्रति' शीर्षक लम्बी कविता में भावों की पुनरुक्तियाँ तो हैं ही, शब्दों की भी अराजकता आ गई है। इस सारी कविता में कलात्मक संतुलन का बहुत कुछ अभाव है। 'तुम और मैं' शीर्षक कविता, जिसकी प्रशंसा 'जूही की कली' के बाद सर्वाधिक है, नितान्त अनुशासित रचना नहीं हो पाई। इस प्रकार की क्रमहीनता और भाषा-प्रयोगों में अर्थ-सीमा का अतिक्रमण अनेक बार पाया जाता है जो निराला के अनियन्त्रित और प्रवेगमय काव्य का स्वाभाविक परिणाम है। परन्तु इन सभी काव्य-रचनाओं में भाव और भाषा का जो सीमोल्लंघन है, उसका कारण काव्य-भावनागत कभी नहीं, भावना का अतिरेक ही उसका कारण है।

● द्वितीय चरण : १९२४-३४

निराला-काव्य का दूसरा चरण १९२४-२५ से आरम्भ हुआ, जिसकी सीमा में 'परिमल' और 'गीतिका' की अधिकांश रचनाएँ आ जाती हैं। एक शब्द में हम इस चरण को निराला-काव्य के कला-सौष्ठव अथवा भावात्मक मर्यादा का चरण भी कह सकते हैं। यहाँ पहुँचकर निराला के उद्दाम भावावेश में एक नियंत्रण आता है। उनकी कलात्मक दृष्टि अधिक सजग होती है और वे पूर्णतः संतुलित काव्य-रचना प्रस्तुत करते हैं। प्रसाद और माधुर्य की भी अभिवृद्धि होती है। सौन्दर्य का अधिक शालीन स्वरूप सामने आता है और दार्शनिक भूमिका पर निराला लौकिक के साथ अलौकिक का और ससीम के साथ अससीम का सुगठित सम्बन्ध स्थापित कर सके हैं। हम कह सकते हैं कि निराला-काव्य के इस द्वितीय चरण में कलात्मक सम्पन्नता का यथेष्ट और परिपूर्ण विकास हुआ है। यहाँ हम प्रत्येक का एक-एक उदाहरण देना चाहेंगे।

(१) प्रसाद और माधुर्य की अभिवृद्धि—निराला की इस समय की अनेकानेक कविताओं में से हम 'संध्या-सुन्दरी' का उद्धरण दे सकते हैं—

दिवसावसान का समय

मेघमय आसमान से उतर रही है

वह संध्या-सुन्दरी परी-सी

धीरे धीरे धीरे।

यहाँ संध्या-आगमन के अनुरूप शब्दावली का चयन है और पंक्तियों की गति भी मन्द है। एक सुन्दरी नायिका के रूप में संध्या का अवतरण पूर्णतः चित्रात्मक है। कवि की कलात्मक दृष्टि सजग होकर भावानुरूप भाषा का सफल नियोजन करती है।

अर्थ की क्लिष्टता या शब्दों का अतिरेक न होने से इसमें प्रसाद और माधुर्य के तत्त्व सन्निहित हो सके हैं ।

(२) सौंदर्य का शालीन स्वरूप—निराला के गीतों में सौन्दर्य का शालीन स्वरूप सर्वत्र देखा जा सकता है । कोई एक गीत लेकर हम इसकी परीक्षा कर सकते हैं ।

दृगों की कलियां नवल खुलीं
रूप-इन्दु से सुधा-बिन्दु लह,
रह रह और तुलीं ।
प्रणय इवास के मलय स्पर्श से,
रह-रह हँसती चपल हर्ष से
ज्योति-तप्त-मुख, तरुण वर्ष के
कर से मिली जुलीं ।
नहा स्नेह का सरस सरोवर
श्वेत-वसन लौटीं सलाज घर,
अलस सखा के ध्यान-लक्ष्य पर
डूबीं, अमल धुलीं । १

प्रस्तुत गीत में नायिका के नेत्रों का वर्णन करते हुये कवि पहले उसके सौंदर्य-पक्ष को, फिर उसके अनुमान-पक्ष को और अंततः उसकी रसात्मक आधार की क्रमशः तीनों बंदों में नियोजना करता है । यहाँ पर आँखों का भी रूपकात्मक वर्णन है । आँख मानो कोई नायिका हो । यहाँ सौन्दर्य प्रतीक है । उसमें क्षमता है । ऐसी रचनाएँ पूर्णतः सौन्दर्य-प्राण कही जा सकती हैं ।

(३) लौकिक के साथ अलौकिक का और ससीम के साथ अससीम का सुगठित सम्बन्ध—इसके लिए हम 'प्रिय यामिनी जागी', शीर्षक कविता ले सकते हैं

प्रिय, यामिनी जागी ।
अलस पंकज-दृग अरुण-मुख
तरुण-अनुरागी ।
खुले केश अशेष शोभा भर रहे,
पृष्ठ-ग्रीवा-बाहु-उर पर तर रहे,
बादलों में घिर अपर दिनकर रहे,
ज्योति की तन्वी, तड़ित—
द्युति ने क्षमा मांगी ।
हेर उर-पट, फेर मुख के बाल,

लख चतुर्दिक, चली मन्द मराल,
गेह में प्रिय-स्नेह की जयमाल,
वासना की मुक्ति, मुक्ता
त्याग में तागी ।^१

एक गार्हस्थिक चित्र के साथ आगे बढ़ता हुआ कवि उसकी परिसमाप्ति एक परिणत दार्शनिक भावना में करता है। यहाँ कवि ने दाम्पत्य जीवन के दृश्य को दिखाकर यह कहा कि जीवन की उपलब्धि सन्यास में नहीं है। गार्हस्थ्य जीवन में भी प्राप्त है; जो उसे वैराग्य द्वारा प्राप्त होता है। यहाँ भी वासना की मुक्ति होती है। वैराग्य जीवन में भी वासना की मुक्ति होती है। 'वासना की मुक्ति, मुक्ता त्याग में तागी' में ससीम और असीम सौंदर्य की सुन्दर समन्विति नियोजित हुई है।

(४) कलात्मक संपन्नता :—'स्मृति' शीर्षक कविता में जो आकार में काफी लम्बी है, निर्दोष कलात्मक संपन्नता का गुण पाया जाता है। 'स्मृति' कविता पर हिन्दी के समीक्षकों की दृष्टि बहुत पहले गई थी। इसकी रूप-रचना अत्यंत प्रौढ़ और अविच्छिन्न भाव-संवेदन का परिणाम है।

जटिल जीवन-नद में तिर-तिर
डूब जाती हो तुम चुपचाप,
सतत द्रुत गतिमयि, अयि, फिर फिर,
उमड़ करती हो प्रेमालाप,
सुप्त मेरे अतीत के गान ।
सुना, प्रिय, हर लेती हो ध्यान ।

× × ×

रश्मि से दिनकर की सुन्दर,
अन्ध-वारिद-उर में तुम आप
तूलिका से अपनी रचकर
खोल देती हो हर्षित चाप,
उगा नव आशा का संचार
चकित छिप जाती हो उस पार ।^२

इस प्रकार की अनेकानेक अस्खलित प्रगीत-सृष्टियों से निराला का इस युग का काव्य भरा पड़ा है।

● तृतीय चरण

सन् १९३५ से ४० तक निरालाजी की काव्य-रचना में दो प्रवृत्तियाँ मुख्य

१ निराला : गीतिका-प्रिय यामिनी जागी, (१९२७ ई०), पृ० ४

२ निराला : परिमल-स्मृति, (१९२१ ई०), पृ० १०८

रूप से देखी जाती हैं। एक तो व्यंग-विडम्बना की प्रवृत्ति का आरम्भ और दूसरी बृहत्तर काव्य-सृष्टि का समारंभ।

(१) व्यंग-विडम्बना की प्रवृत्ति का आरम्भ :—यहाँ हम व्यंग्य के अनुकूल निरालाजी की बदली हुई पदावली का दर्शन करते हैं। 'मित्र के प्रति' (७-७-३५) शीर्षक कविता में अरं बरं, और टरं टरं जैसे शब्दों का प्रयोग निरालाजी की पूर्ववर्ती कविताओं को देखते हुए आश्चर्यजनक रूप से भौंड़ा और कर्कश प्रतीत होता है। परन्तु हमें यह स्मरण रखना होगा कि यहाँ निराला अपने भावात्मक स्तर से उतर कर व्यंग्य और विडम्बना की ओर बढ़ रहे थे। उनकी शब्दावली इसी बदली हुई मनोभावना का परिणाम है।

एक यहीं आठ पहर
वही पवन हहर-हहर
तपा तपन, ठहर-ठहर
सजल कण उड़े;
गये सूख भरे ताल,
हुए रूख हरे शाल,
हाय रे, मयूर-ब्याल
पूछ से जुड़े।^१

(२) बृहत्तर काव्यसृष्टि की अलंकृत पदावली—

रावण-महिमा श्यामा विभावरी अन्धकार,
यह रुद्र राम-पूजन-प्रताप तेजः प्रसार;
उस ओर शक्ति शिव की, दशस्कन्ध-पूजित
इस ओर रुद्र-वदन जो रघुनन्दन-कूजित;^२

'राम की शक्तिपूजा' शीर्षक कविता की इन पंक्तियों में एक नवीन गांभीर्य की सृष्टि हुई है परन्तु इनमें निरालाजी के पूर्ववर्ती काव्य की सी प्रयास-रहित पद-योजना नहीं है। इसी प्रकार 'तुलसीदास' शीर्षक बृहत्तर रचना में छंद-योजना काफी क्लिष्ट है और प्रयुक्त शब्दावली भी अनेक बार कृत्रिमता का आभास देती है। उदाहरण के लिये—

देखा शारदा नील-वसना,
हैं सम्मुख स्वयं सृष्टि-रशना,
जीवन-समीर-शुचि-निःश्वसना, वरदात्री,^३

१ निराला : अनामिका-मित्र के प्रति, (७-७-३५), पृ० ११।

२ वही : राम की शक्तिपूजा, (२३-१०-३६), पृ० १५४।

३ निराला : तुलसीदास, (१६३८ ई०), पृ० १७५।

इस पदावली को निराला के अधिकांश निसर्गजात शब्द-चयन की तुलना में हम कृत्रिम ही कह सकते हैं। परन्तु इसी 'तुलसीदास' में अनेक बंध प्रवाहपूर्ण सरल भाषा में भी लिखे गये हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि ये दूसरे प्रकार के बंध ही निराला की शक्ति के परिचायक हैं।

धिक ! आए तुम अनाहूत,
 धो दिया श्रेष्ठ कुल-धर्मधूत,
 राम के नहीं, काम के सूत कहलाए।
 हो बिके जहाँ तुम बिना दाम,
 वह नहीं और कुछ—हाड़-चाम।
 कैसी शिक्षा, कैसे विराम पर आए।

निराला की सहज काव्य-भाषा का यह एक सुन्दर उदाहरण है।

ये बृहत्तर काव्य-सृष्टियाँ आख्यानमूलक रही हैं और इनके निर्माण में भाषा और भावों का महाकाव्योचित औदात्य देखा जाता है। इस समय के उनके व्यंग्य-काव्य में वैयक्तिक प्रतिक्रिया दिखाई देती है। यद्यपि समीक्षकों ने इन उभयविध रचनाओं में कोई सम्बन्ध नहीं देखा है; परन्तु हम यह देखते हैं, इस समय की कृतियों में निरालाजी का सहज प्रवेग और उनकी नैसर्गिक काव्य-क्षमता विघटित होने लगी थी और वे आलंकारिक साधनों से उसे अतिरिक्त सज्जा देने का प्रयत्न कर रहे थे। विशुद्ध काव्योत्कर्ष की भूमिका पर निराला-काव्य का तृतीय चरण उनके द्वितीय चरण की अपेक्षा कमजोर ही पड़ने लगा था।

इसी अवधि में निरालाजी का मानसिक स्वास्थ्य आंशिक विकार की सूचना देने लगा था। वे 'परिमल' और 'गीतिका' की पूर्ण स्वस्थ और निर्मल भावनाधारा के स्थान पर क्रमशः वैयक्तिक अवसाद की भूमिका पर पहुँचने लगे थे। यहीं से निरालाजी के काव्य का परवर्ती युग प्रारम्भ होता है। यद्यपि इसका निश्चित तिथि-निरूपण करना कठिन है, पर द्वितीय 'अनामिका' में प्रकाशित ५-१-३८ की लिखी उनकी 'मरण-दृश्य' कविता की निम्नांकित पंक्तियाँ स्पष्टतः उनकी बदली हुई मनोभावना का परिचय देती है—

विश्व सीमा हीन;
 बाँधती जातीं मुझे कर कर
 व्यथा से दीन।
 कर रही हो—दुःख की विधि—
 यह तुम्हें ला दी नई निधि,
 विहग के वे पंख बदले,—

किया जल का मीन,
मुक्त अम्बर गया, अब हो
जलधि-जीवन को ।^१

अपनी गद्य रचनाओं में भी निरालाजी इन्हीं दिनों 'बिल्लेसुर बकरिहा' और 'कुल्लीभाट' आदि का निर्माण कर रहे थे ।

● परवर्ती काव्य कृतियाँ

कहा जाता है कि निरालाजी की परवर्ती रचनाएँ उनकी बदली हुई जीवन-दृष्टि और विचारधारा का परिणाम हैं । कुछ समीक्षकों ने, जैसे हम ऊपर कह चुके हैं, इसे निराला का यथार्थवादी काव्य कहा है । हमें यहाँ देखना है कि समीक्षकों के इस कथन में कितना तथ्य है और साथ ही हम यह भी देखना चाहते हैं कि काव्य-सौष्ठव की दृष्टि से ये परवर्ती रचनाएँ उनके पूर्ववर्ती काव्य से किस प्रकार सम्बन्ध रखती हैं । वे श्रेष्ठतर हैं, या ये श्रेष्ठतर हैं । इन दोनों के समाधान के लिये हमें निराला के समस्त परवर्ती काव्य पर एक विहंगम दृष्टि डालनी होगी ।

सन् १९४० के पश्चात् प्रकाशित होने वाली निरालाजी की निम्नलिखित पुस्तकें—'अणिमा' (४२-४३), 'कुकुरमुत्ता' (४२-४३), 'बेला' (जनवरी ४६), 'नये पत्ते' (मार्च ४६), 'अर्चना' (५०), आराधना (५३) तथा गीतगुंज, प्रथम संस्करण (५४), परिवर्द्धित संस्करण (५९) हैं । इन समस्त काव्य-कृतियों का धारावाहिक अनुशीलन करने पर इनकी प्रमुख प्रवृत्तियाँ स्पष्ट हो जाती हैं ।

'अणिमा' में कुछ पुरानी कविताएँ भी हैं । 'महादेवी वर्मा' 'विजयलक्ष्मी पंडित' पर कुछ प्रशस्तियाँ भी हैं । पूर्ववर्ती रचनाओं की आस्था और गीतों का बदला हुआ स्वर साफ सुन पड़ता आता है । जिस कवि ने—

अभी न होगा मेरा अन्त
अभी अभी ही तो आया है मेरे वन में
सरस बसंत ।

लिखकर काल को चुनौती दी थी, उसी का परिवर्तित भावोच्छ्वास नीचे की पंक्तियों में देखा जाता है—

मैं अकेला;
देखता हूँ, आ रही
मेरे दिवस की सान्ध्य बेला ।
पके आधे बाल मेरे,

हुए निष्प्रभ गाल मेरे,
चाल मेरी मन्द होती आ रही,
हट रहा मेला ।^१

सन् ३८-३९ के पश्चात् निरालाजी को समस्त काव्य-रचना में एक अंतरंग करुणा-तत्त्व संयुक्त हो गया है। इसी करुणा के विभिन्न स्वर उनकी परवर्ती कृतियों में भांति भांति से सुन पड़ते हैं, कहीं यह करुणा व्यंग्य और विडंबना का रूप लेती है, कहीं संसार के झूठे प्रदर्शनों के प्रति हास और विनोद का रूप ग्रहण करती है। निराला की दृष्टि पीछे की ओर मुड़ने लगी है, यह बात आचार्य रामचन्द्र शुक्ल तथा प्रसादजी आदि के संबन्ध में लिखी गई उनकी प्रशस्तियों से लक्षित होती है। परन्तु भारतीय संस्कृति और आध्यात्मिकता के प्रति निराला की निष्ठा कहीं भी खंडित नहीं होती; बल्कि सांस्कृतिक और आध्यात्मिक ह्रास के दृश्यों को देखकर वे अधिकाधिक क्षुब्ध और खिन्न होते हैं। सच तो यह है कि निराला का समस्त परवर्ती काव्य या तो वैयक्तिक वेदना की प्रतिक्रिया है या वह सामाजिक विशृंखलता से उत्पन्न परिस्थिति के प्रति क्षोभ की उपज है। 'अणिमा' में 'भगवान बुद्ध के प्रति' कविता में वे लिखते हैं—

आज सम्यता के वैज्ञानिक जड़ विकास पर
गर्वित विश्व नष्ट होने की ओर अग्रसर
स्पष्ट दिख रहा, सुख के लिए खिलौने जैसे
बने हुए वैज्ञानिक साधन ; केवल पैसे
आज लक्ष्य में हैं मानव के; स्थल-जल-अम्बर
रेल-तार-बिजली-जहाज नभयानों से भर
दर्प कर रहे मानव, वर्ग से वर्ग गण
भिड़े राष्ट्र से राष्ट्र, स्वार्थ से स्वार्थ विलक्षण ।^२

इसी पुस्तक की 'सहस्राब्दी' (४२) कविता में उन्होंने भारतीय दर्शन और कला-कौशल को अपनी विशिष्ट श्रद्धांजलि अर्पित की है। निराला की तथाकथित यथार्थान्मुख रचनायें भी मूलतः एक व्यंग से संबन्धित हैं, जिसका आशय यह है कि वे इस नई शैली के प्रयोग के द्वारा संसार की कुरूपता को रेखांकित करते जाते हैं।

‘कुकुरमुत्ता’ निराला के परवर्ती काल की सर्वाधिक उल्लेखनीय कविता है। इसके व्यंग और हास्य को पूरी तरह समझना आसान नहीं है। प्रत्यक्ष रीति से तो यह देखा जाता है कि इसमें निरालाजी ने गुलाब की भर्त्सना और ‘कुकुरमुत्ता’ की प्रशस्ति का आलेख किया है; पर यह प्रत्यक्ष तथ्य बहुत कुछ भ्रामक है। वास्तव में

१ निराला : अणिमा, 'मैं अकेला' (१९४०), पृ० २०।

२ निराला : अणिमा, 'भगवान बुद्ध के प्रति' (१९४०) पृ० ३३।

निरालाजी इस रूप में 'कुकुरमुत्ता' के मुंह से ही उसकी आत्मप्रशस्ति कराते हैं और एक महान अतिरंजना के द्वारा उसे सृष्टि की सर्वोत्कृष्ट विभूति सिद्ध करते हैं। पर यह अतिरंजना स्वयं अपने में व्यंगात्मक है और कुकुरमुत्ता की आत्मप्रशंसा हास्यास्पद सीमा पर पहुँचा दी गई है। वास्तव में निरालाजी का आशय यह है कि 'कुकुरमुत्ता' की आत्मश्लाघा, चाहे वह कितनी ही प्रामाणिकता का दावा करे, उसे गुलाब की बराबरी पर नहीं पहुँचा सकती। 'कुकुरमुत्ता' निराला के लिए सर्वहारा वर्ग का प्रतिनिधि हो सकता है पर यह शिक्षा-संस्कृति-हीन-वर्ग, संस्कृति के प्रतिनिधि गुलाब की तुलना नहीं कर सकता। आचार्य पं वाजपेयीजी के हाल के एकवक्तव्य के अनुसार 'कुकुरमुत्ता' का आशय यह है कि गुलाब भले ही पुरानी या सामंतवादी संस्कृति का प्रतिनिधि है और वह स्वयं (कुकुरमुत्ता) एकदम नवीन है। पर व्यंजना-शक्ति के पारखी उसकी उक्तियों के व्यंगार्थ को समझ सकते हैं। व्यंजना यह है कि न पुराना गुलाब न नया कुकुरमुत्ता ही आधुनिक सांस्कृतिक आदर्श की पूर्ति कर सकते हैं। हमारी वर्तमान संस्कृति कुकुरमुत्ता की भूमिका से उठकर नयी सृष्टि और नया विकास करेगी तब हम एक नयी संस्कृति ला सकेंगे। नया गुलाब ही पुराने गुलाब का स्थान ले सकता है। नया समाज और उसकी नई संस्कृति ही पुरानी संस्कृति की स्थानापन्न बन सकती है। इस प्रकार 'कुकुरमुत्ता' कविता निराधार व्यंग्य नहीं है। वह संस्कृति के सृजन में नये मौलिक तत्वों का संकेत देती है।^१

'कुकुरमुत्ता' में निरालाजी की भाषा संस्कृत का संसर्ग छोड़ कर विशुद्ध रूप से बोलचाल के नजदीक आ गई है। यदि 'जुही की कली' की भाषा का एक सौन्दर्य है, तो 'कुकुरमुत्ता' की भाषा का एक दूसरा सौन्दर्य है। हमारी अपनी धारणा यह है कि दोनों अवसरों की भाषा वर्णित विषय की प्रकृति के अनुरूप है। यद्यपि यह कहना पड़ेगा कि 'जुही की कली' में जो अधिकारपूर्ण प्रवाह है, जो संगीतात्मकता और लय है, वह 'कुकुरमुत्ता' में नहीं है। किंतु एक व्यंग्य और हास्यमूलक कविता की भाषा का जो रूप हो सकता है, वही यहाँ आया है। फिर भी निरालाजी ने चलती हुई भाषा में दो चार भारी भरकम संस्कृत के शब्द रख ही दिये हैं, जो प्रवाह में बाधा डालते हैं।

इक-बगल, तब बना वीणा :

मन्द्र होकर कभी निकला,

कभी बनकर ध्वनि क्षीणा।^२

यहाँ 'मंद्र' और 'ध्वनि क्षीणा' प्रयोग कुकुरमुत्ता के उपयुक्त नहीं है। लेकिन एक बिल्कुल ही नई भाषा को अपना कर निरालाजी ने जिस नई कलम का सूत्रपात किया है, वह निश्चय ही एक असाधारण प्रतिभा का परिणाम है।

१ निराला जयंती के अवसर पर सागर विश्वविद्यालय में दिया गया भाषण,
१ जनवरी १९६२।

२ निराला : कुकुरमुत्ता, द्वितीय संस्करण, (१९५२ ई०)। पृ० ७।

✱ 'बेला' में निरालाजी भाषा और छन्द की दृष्टि से एक कदम और आगे बढ़े हैं और उर्दू के बहरों को अपनाया है। इस पुस्तक की समस्त रचनाओं में कोई एक अटूट भावधारा नहीं है। जिस प्रकार 'परिमल' या 'गीतिका' की काव्य-रचनायें एक अखंड और अव्याहत भावसत्ता की प्रतिनिधि हैं, वैसी बात 'बेला' के सम्बन्ध में नहीं कही जा सकती। इसमें दार्शनिक गीत भी हैं। व्यंग के अंश भी हैं। प्रकृति का परिपार्श्व भी है। लोक गीतों का आधार भी है। परन्तु कुल मिलाकर यह समस्त रचना प्रयोग की भूमिका को लांच नहीं सकी है। हमारा आशय यह है कि पूरी पुस्तक पढ़ लेने पर हम इसके शैली-चमत्कार से ही प्रभावित होते हैं, विषय-वस्तु से नहीं। प्रयोगात्मकता से हमारा यही अर्थ है। 'बेला' की कविता का एक औसत उदाहरण नीचे दिया जाता है—

अगर तू डर से पीछे हट गया तो काम रहने दे।

अगर बढ़ना है अरि की ओर तो आराम रहने दे।

बिगड़ कर बनते और बनकर बिगड़ते एक युग बीता,

परी और शाम रहने दे, शराब और जाम रहने दे।

अगर जर्जों को जर कर तू, बड़े मूजी को सर कर तू,

जमाने से बिगड़ कर चलता हो वह नाम रहने दे।'

इस प्रकार निराला की प्रयोगात्मक रचनायें 'बेला' और 'नये पत्ते' में मिलती हैं। उर्दू शैली की गजलों का प्रयोग 'बेला' में किया गया है; पर इस रचना में उनकी सफलता आंशिक ही है। भाषा की दृष्टि से हिन्दी और संस्कृत की खिचड़ी वहाँ है जो इस रचना के साहित्यिक उत्कर्ष में सबसे बड़ी बाधा है। हिन्दी के जिन कवियों ने उर्दू छन्दों का प्रयोग किया है, प्रायः सर्वत्र उर्दू की पदावली और मुहावरे भी अपनाये हैं या फिर उन्होंने हिन्दी की अपनी पद-रचना रखी है। उर्दू के केवल छंद लिये हैं। निरालाजी ने इनमें से किसी एक पद्धति का प्रयोग न कर जो मिश्रित सृष्टि तैयार की है, वह न तो उर्दू के पाठकों, न हिन्दी के पाठकों के गले सुगमता से उतर पाती है। इसीलिये यह काव्य-पुस्तक एक प्रयोग बन कर ही रह गई है। जहाँ तक भावों और विचारों का संबंध है, इस रचना में गम्भीर भाव या विचार सुव्यवस्थित रीति से आए नहीं हैं। ✱

✱ नये पत्ते इस दृष्टि से अधिक सफल कृति है। इसमें निरालाजी के यथार्थोन्मुख प्रयोग अधिक स्पष्टता से व्यक्त हुए हैं। 'बेला' यदि निरालाजी की प्रयोगात्मक कविताओं का संकलन है, तो 'नये पत्ते' को उनकी प्रगतिमूलक व्यंग्यात्मक रचनाओं का संग्रह कहा जा सकता है। दो तीन कविताओं को छोड़कर शेष सभी व्यंग की भूमि पर प्रणीत हैं। हास्य और विनोद का पुट भी यत्र-तत्र मिला हुआ है।

अनेक व्यंग्य राजनीतिक और सामाजिक विषयों से सम्बन्धित हैं। कुछ कविताओं में कुरूप यथार्थ की झाँकियाँ हैं। 'बेला' की अपेक्षा इस रचना में वर्णन अधिक व्यवस्थित हैं। एक उदाहरण नीचे दिया जाता है—

मेरे नये मित्र हैं श्रीयुत गिडवानी जी,
बहुत-बड़े सोशलिस्ट
'मास्को डायेलाग्स' लेकर आये हैं मिलने।
मुस्कराकर कहा, यह 'मास्को डायेलाग्स' है,
सुभाष बाबू ने इसे जेल में मंगाया था,
भेंट किया था मुझको जब थे पहाड़ पर।
'३५ तक मुश्किल से पिछड़े इस मुल्क में
दो प्रतियाँ आई थीं।'

× × ×

देखा उपन्यास मैंने,
श्री गणेश में मिला—
'पृथ असनेहमयी स्यामा मुझे प्रेम है'
इसको फिर रख दिया, देखा 'मास्को डायेलाग्स'
देखा गिडवानी को।

इसी संग्रह में 'कैलाश में शरत्' नाम की कविता भी है; जिसमें कवि ने विवेकानन्द के साथ अपनी कैलाशयात्रा का वर्णन किया है। यह रचना निरालाजी की मानसिक विक्षेप की स्थिति का उदाहरण है। इसका समस्त वर्णन कल्पना की उस भूमि से सम्बन्धित है, जिसे अतिकल्पनाववाद (फेन्टेसी) कहा जा सकता है।

'खजोहरा' कविता में वे स्वच्छंदतावाद या सौंदर्यवाद का विरोधी दृष्टिकोण उपस्थित करते हैं और एक स्नान करती हुई नारी की विपत्ति का वर्णन करते हैं। इसी प्रकार 'स्फटिक शिला' नामक कविता में उन्होंने चित्रकूट की पवित्रता के स्थान पर कुरूप और कष्टप्रद परिवेश का चित्रण किया है। ये ही दो प्रमुख रचनाएँ हैं, जिनके आधार पर कहा जा सकता है कि निरालाजी अपनी सौंदर्यवादी विचार-दृष्टि को छोड़कर कुरूप यथार्थ के अधिक समीप पहुँच गए हैं। परन्तु ये रचनाएँ भी प्रयोग के अतिरिक्त कुछ नहीं हैं और निराला के क्षणिक भाव-परिवर्तन की ही सूचना देती हैं।

'नये पत्ते' के पश्चात् निरालाजी की शेष सभी कृतियाँ ('अर्चना', 'आराधना' तथा 'गीतगुंज', 'गीतात्मक' हैं। उनके इन परवर्ती गीतों को हम निम्नलिखित श्रेणियों में विभाजित कर सकते हैं—

(१) भक्ति-प्रार्थना और विनय के गीत—इन गीतों में कवि ने आत्म-समर्पण की भावना व्यक्त की है। सांसारिक जीवन से खिन्न और क्षुब्ध होकर ये गीत प्रस्तुत किए गए हैं। 'अर्चना' का एक गीत देखिए—

समझा जीवन की बिजया हो ।
 रथी दोषरत को दलने को
 विरथ ब्रती पर सती दया हो ।
 पता न फिर भी मिला तुम्हारा,
 खोज खोज कर मानव हारा;
 फिर भी तुम्हीं एक ध्रुवतारा
 नैश पथिक की पिक अभया हो ।
 ऋतुओं के आवर्त-विवर्तों,
 लिये चलीं जो समतल-गर्तों,
 खुलती हुई मर्त्य के पतों
 कला सफल तुम विमलतया हो । १

इस तथा ऐसी ही रचनाओं में निरालाजी की भाषा अत्यन्त सरल और स्वाभाविक रूप में अवतरित हुई है। इन गीतों में कवि अपने आरम्भिक गीतों की अपेक्षा अधिक आत्मोन्मुख है। कदाचित् इसीलिए इनमें प्रारम्भिक गीतों की सी आलंकारिकता नहीं है।

(२) आत्मपरक गीत—इन गीतों में निरालाजी ने आत्मवेदना का प्रकाशन किया है। इनमें वैयक्तिकता अधिक है; क्योंकि ये निरालाजी के परवर्ती काल की व्याधियों से सम्बन्धित गीत हैं। इनमें शांत की अपेक्षा करुण रस की प्रधानता है।

भग्न तन, रुग्ण मन,
 जीवन विषरण वन ।
 क्षीण क्षण-क्षण देह,
 जीर्ण सज्जित गेह,
 घिर गये हैं मेह,
 प्रलय के प्रवर्षण ।
 चलता नहीं हाथ,
 कोई नहीं साथ,
 उन्नत, विनत माथ,
 दो शरण, दोषरण । २

१ निराला : अर्चना, गीत-४, (१२-१-५०) पृ० ४ ।

२ निराला : अर्चना, गीत-६२, (रचना ८-१२-५२) ।

इस रचना में निरालाजी अपनी शारीरिक और मानसिक व्याधियों से त्राण की कामना करते हैं, अपने कष्टों का वर्णन प्रलय-मेघों से करते हैं। चलता नहीं हाथ, एक वास्तविक कथन भी है और लाक्षणिक उक्ति भी। निरालाजी को हाथ का कष्ट था और वे अच्छी तरह हाथ हिला नहीं सकते थे। परन्तु कवि की उक्ति होने से 'चलता नहीं हाथ' में लाक्षणिक शक्ति भी आ गई है, जिससे उसका आशय अधिक व्यापक और विशद हो गया है।

(३) ऋतु और प्राकृतिक गीत—निरालाजी प्रकृति के सौन्दर्य के गायक रहे हैं। उनके आरम्भिक गीतों से ही उनका प्रकृति-प्रेम झलकता रहा है। प्रकृति सम्बन्धी प्रारम्भिक गीत अधिक उल्लासपूर्ण और सौन्दर्य-प्रवण हैं। उनके परवर्ती प्रकृति-गीतों में वैसा उल्लास नहीं है। उसके स्थान पर उक्ति-कौशल और भाषा का प्रसादगुण अधिक आ गया है। इनमें निराला की सौन्दर्य-दृष्टि अधिक वस्तुपरक हो गई है। 'अर्चना' का एक गीत देखिए—

आज प्रथम गाई पिक पंचम ।
गूँजा है मरु विपिन मनोरम ।
मरुत प्रवाह, कुसुम-तरु फूले,
बौर-बौर पर भौरे भूले,
पात-गात के प्रमुदित झूले,
छाईं सुरभि चतुर्दिक उत्तम ।
आँखों से बरसे ज्योतिःकण,
परसे उन्मन, उन्मन उपवन,
खुला धरा का पराकृष्ट तन,
फूटा ज्ञान गीतमय सत्तम ।
प्रथम वर्ष की पांख खुली है,
शाख-शाख किसलयों तुली है,
एक और माधुरी घुली है,
गीत-गन्ध-रस-वर्णों अनुपम ।

निराला के परवर्ती ऋतु-गीतों से पूर्ववर्ती ऋतु-गीतों की तुलना की जाय, तो हम देखेंगे कि इन गीतों में शृंगारिकता के स्थान पर प्रकृति के प्रशान्त और सांत्वना-कारी भाव की प्रधानता है। बसंत ऋतु के वर्णन में जहाँ इस पद्य में 'उत्तम सुरभि' 'गीतमय ज्ञान', 'एक और माधुरी घुली है' जैसे वाक्यांश मिलते हैं, वहाँ उनके प्रारम्भिक ऋतु-वर्णनों में इस प्रकार की रूपसज्जा है—

किसलय-वसना नव-वय-लतिका
 मिली मधुर प्रिय-उर तरु-पतिका,
 मधुप-वृन्द बन्दी—
 पिक-स्वर नभ सरसाया ।
 लता-मुकुल-हार-गन्ध-भार भर
 बही पवन बन्द मन्द मन्दतर,
 जागी नयनों में वन—
 यौवन की माया ।
 आवृत सरसी-उर-सरसिज उठे,
 केशर के केश कली के छुटे,
 स्वर्ण-शस्य-अंचल
 पृथ्वी का लहराया । १

प्रकृति का अनुरंजनकारी सौन्दर्य दोनों रचनाओं में है । किन्तु पूर्ववर्ती गीत का अनु-
 रंजन वस्तुमूलक न होकर रूपमूलक है; इतिवृत्तात्मक न होकर चित्रात्मक है । यह
 कहना कठिन है कि इन दोनों प्रकृति-गीतों में कौन सा श्रेष्ठतर है ? कदाचित् तरुण
 पाठकों की रुचि प्रथम गीत की ओर (आरम्भिक गीत की ओर) और वयस्क पाठकों
 की रुचि परवर्ती गीतों की ओर होगी ।

(४) शृंगारिक गीत—इस काल में कुछ शृंगारिक गीत भी लिखे गये हैं,
 पर उनमें वह ऐन्द्रिक सौन्दर्य की ताजगी नहीं, जो पूर्ववर्ती शृंगारिक गीतों में है ।
 परवर्ती शृंगारिक गीत का एक उदाहरण देखिए—

जब तू रचना में हूँस दी
 तूल-तूल के फूल खिले
 पल्लव डोले चिड़ियाँ चहकें ।
 क्या गली-गली गुंथ गई रेणु
 ग्वाल के बाल की बजी वेणु,
 हौली-हौली बढ़ गई धेनु,
 चोली हमजोली की मसकी ।
 कुम्हलाई डाली हरिआई,
 खुल-खुलकर तरु कोयल गाई,
 बल खाती विपुल हवा आई,
 सौरभ-सौरभ धरती कसकी । २

१ निराला : गीतिका, गीत ३, (रचना १९२८) ई० पृ० ५ ।

२ निराला : अर्चना, गीत २५, (रचना १४-११-५२) ।

इस प्रकार के शृंगारिक गीतों में उद्दीपन की अपेक्षा अनुभाव पक्ष की प्रमुखता है ; जो एक अधिक गम्भीर मनःस्थिति का द्योतक है । इन शृंगारिक गीतों में प्राकृतिक प्रतीक भी अच्छी मात्रा में आये हैं और कहा जा सकता है कि इनमें भक्ति मिश्रित शृंगार की आभा निखरी है ।

पूर्ववर्ती काल का एक शृंगारिक गीत इस प्रकार है—

मौन रही हार,
प्रिय-पथ पर चलती,
सब कहते शृंगार ।
कण-कण कर कंकण, प्रिय
किण-किण रव किंकिणी,
रणन-रणन नूपुर, उर लाज,
लौट रंकिनी;
और मुखर पायल स्वर करें बार-बार,
प्रिय पथ पर चलती, सब कहते शृंगार ।
शब्द सुना हो, तो अब
लौट कहाँ जाऊँ
उन चरणों को छोड़ और,
शरण कहाँ पाऊँ ?
बजे सजे उर के इस सुर के सब तार—
प्रिय-पथ पर चलती, सब कहते शृंगार ।^१

हम देखते हैं कि इस कविता में एक नव परिणिता की द्वंद्वात्मक मनःस्थिति का चित्रण किया गया है । वह तो प्रेम करती है और सहज भाव से प्रिय के पास आती है, पर लोग कहते हैं कि वह शृंगार करती है । उसके नूपुर बजते हैं, कंकण और किंकिणी स्वर भरती हैं, तो उसे लज्जा आती है कि कहीं कोई सुन न ले । एक ओर यह सामाजिक संकोच है, तो दूसरी ओर नैसर्गिक प्रेम का प्रबल आग्रह भी है कि उसे पति के पास जाना ही चाहिये । अंत में वह निर्णय करती है कि वह जायगी और इस निर्णय के साथ उसके हृदय के सब शृंगारिक स्वर मुखर हो उठते हैं ।

इस गीत में नवयौवना के प्रेम और संभ्रम का द्वंद्व प्रदर्शित है, जिसमें प्रेम की ही विजय होती है । इस प्रेम में यौवन-सुलभ लालसा है, निष्ठा है और इन्हीं के संयोग से नारी-जीवन का सौन्दर्य है । निरालाजी की इस कविता में प्रेम और सौंदर्य के लौकिक स्वरूप का निर्व्याज और निरावृत अंकन हुआ है । इसकी व्यंजना इसके वर्णन में अंतर्निहित है; परन्तु दूसरी कविता में मिलन की भूमिका इतनी आग्रह-

पूर्ण नहीं है। मिलन के अवसर पर प्रकृति में जो नवजीवन आ गया है, वह भी चित्रित है, बल्कि कहना चाहिये कि मानवीय मिलन को प्रकृति के उल्लास के माध्यम से ही व्यक्त किया गया है। इस कविता में पहली कविता का-सा सीधा प्रवाह नहीं है। परन्तु इसकी मूलवर्ती भावना अधिक सांकेतिक और दार्शनिक कही जा सकती है। यह भी ध्यान देने योग्य है कि पहली कविता अधिक सीधा प्रभाव उत्पन्न करती है, जब कि दूसरी कविता में न केवल व्यंजना की प्रचुरता है बल्कि 'चोली हमजोली की मसकी' और 'सौरभ सौरभ धरती कसकी' जैसी पंक्तियों में शब्द-क्रीड़ा की प्रधानता है। 'कुम्हलाई डाली हरिराई' में विरोधाभास की चमत्कारिक अलंक्रुति है। हम कह सकते हैं कि भाव की दृष्टि से अधिक विशद होते हुए भी प्रभाव और रचना की दृष्टि से परवर्ती कविता पहली कविता की बराबरी नहीं कर पाती।

(५) **दार्शनिक गीत:**—इन वर्षों में निरालाजी ने दार्शनिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक गीत भी लिखे हैं, परन्तु इनमें भक्ति-भावना का प्राधान्य हो गया है। इस प्रकार के उनके आरम्भिक गीतों में पौरुष और संकल्प-तत्त्वों की प्रधानता है, किन्तु परवर्ती गीतों में विनय और उपासना मुख्य हो गई है। आरम्भिक दार्शनिक गीतों में वे अधिक मृदुल हैं। भावापन्न कहीं-कहीं कठोर भावापन्न और नास्तिक भी हैं। जहाँ वे 'पंचवटी-प्रसंग' में लक्ष्मण की आदर्शोन्मुखी सेवा-साधना का उल्लेख करते हैं, वहाँ वे मृदुल और मनोरम हैं। जहाँ वे लिखते हैं—

कौन तम के पार ? (रे, कह)

कौन तम के पार—^१

वहाँ वे सृष्टि के रहस्य को एक अनिर्वचनीय भूमिका पर पहुँचा देते हैं। वहाँ आस्तिकता और नास्तिकता मिलकर एक हो जाती है। अपने परवर्ती दार्शनिक गीतों में निरालाजी इतने अतिवादी नहीं हैं। वे मानव की जिज्ञासा को मानवीय भूमिका पर ले जाते हैं। 'गीतगुंज' का एक गीत देखिये—

पार पारावार जो है

स्नेह से मुझको दिखा दो

रीति क्या, कैसे नियम,

निर्देश कर करके सिखा दो ।

कौन से जन, कौन जीवन,

कौन से गृह, कौन आँगन,

किन तनों की छांह के तन,

मान मानस में लिखा दो ।

निराला के पूर्ववर्ती और परवर्ती काव्य की साहित्यिक तुलना]

पठित या निष्पठित वे नर,
देव या गन्धर्व किन्नर,
लाल, पीले, कृष्ण, धूसर,
भजन क्या भोजन चिखा दो ।^१

(६) प्रगतिशील तथा प्रयोगशील गीत—इस युग में निरालाजी ने सामाजिक जीवन के वैषम्य से संबन्धित कुछ प्रगतिशील गीत भी लिखे हैं। ये किसी वाद की सीमा में नहीं आते। इनमें मानवीय राहानुभूति की प्रधानता है और एक प्रकार की वितृष्णा भी है। 'बादलराग' के से त्रांति के खर स्वर नहीं हैं। कुछ प्रयोगशील के गीत भी हैं जिनमें यथातथ्य चित्रण की प्रवृत्ति दिखाई देती है। उनका 'आराधना' में प्रकाशित एक गीत इस प्रकार है—

मानव जहाँ बैल-घोड़ा है,
कैसा तन-मन का जोड़ा है ?
किस साधन का स्वांग रचा यह,
किस बाधा की बनी त्वचा यह,
देख रहा है विज्ञ आधुनिक
वन्य भाव का यह कोड़ा है।
इस पर से विश्वास उठ गया,
विद्या से जब मेल छुट गया,
पक-पक कर ऐसा फूटा है,
जैसे सावन का फोड़ा है ।^२

इस प्रकार के अनुभवपूर्ण गीत निरालाजी की प्रारम्भिक रचनाओं में नहीं मिलते। इन गीतों की एक विशेषता यह भी है कि वे किसी वाद का आग्रह न लेकर सामान्य मानवीय भूमिका पर अपनी संवेदना बिखेरते हैं। इसमें पूर्ण काव्यात्मकता भी है जो प्रगतिवादी कवियों में कम मिलती है। एक अन्य गीत देखिये—

ऊंट-बैल का साथ हुआ है।
कुत्ता पकड़े हुए जुआ है
यह संसार सभी बदला है,
फिर भी नीर वही गँदला है,
जिससे सिंच कर ठंडा हो तन,
उस चित्त-जल का नहीं सुआ है।

१ निराला : गीतगुंज (प्रथम संस्करण संवत् २०११) पृ० ६३।

२ निराला : आराधना, गीत ७३ (रचना १६-१२-५२)।

रूखा होकर ठिठुर गया है,
जीवन लकड़ी का लड़का है;
खोले कोंपल, फले फूल कर
तरु-तल बैसा नहीं कुआ है ।^१

इसमें प्रयोगात्मक शैली का पुट है; परन्तु इसकी मूल भावना सामाजिक है और इसमें निराला की दृष्टि उस चित्तजल का संकेत करती है, जो मानव की आध्यात्मिक पूर्णता का परिचायक है ।

५ (७) स्फुट गीत—परवर्ती काल के निराला के गीतों की मुख्य धाराओं का परिचय देने के पश्चात् हम उन गीतों का उल्लेख करेंगे, जो विभिन्न विषयों से संबन्धित हैं, जिन्हें हम 'स्फुट गीत' कह सकते हैं । निराला की गीत-सृष्टि जो उनके जीवन के अंतिम अनेक वर्षों की प्रमुख भावाभिव्यक्ति है, यह सूचित करती है कि वे पूर्णतः अपनी आध्यात्मिक भावना धारा के समीप आ गये हैं । यद्यपि इनमें आत्मनिवेदन, विनय और वैयक्तिक समर्पण का पक्ष उनके पूर्ववर्ती गीतों से कहीं अधिक है; परन्तु यह उनकी प्रगाढ़ होती हुई आध्यात्मिक भावना का ही परिणाम है । निराला की 'गीतिका' के गीतों में शृंगार रस की प्रमुखता रही है, यद्यपि वे शृंगारिक गीत भी एक दार्शनिक अनुबंध में बँधे हैं । परन्तु ये परवर्ती गीत तो अधिकतर शांत और करुण रस से समन्वित हैं, और निरालाजी की तत्कालीन मनःस्थिति के द्योतक हैं । कुछ गीतों में सामाजिक वैषम्य के प्रति आक्रोश भी दिखाई देता है । परन्तु इस प्रकार का आक्रोश तो उनकी आरम्भिक कविताओं में भी व्यंजित हुआ है । वैसी स्थिति में इन परवर्ती गीतों की भावधारा निरालाजी के एकदम नवीन और क्रांतिकारी विचार परिवर्तन का प्रमाण नहीं देती ।

(यह केवल निराला की क्रमागत विचारधारा का एक अग्रिम, और अधिक संवेदनशील स्वरूप है । (निराला के ऋतु-गीत सन् '२० से प्रारम्भ होकर सन् '६० तक बराबर चलते रहे हैं । अतएव इन ऋतुगीतों में निराला-काव्य की निरन्तरता का परिचय मिलता है । यह अवश्य है कि आरम्भिक ऋतुगीतों में निराला अधिक प्रसन्न और भावाकुल हैं । परवर्ती ऋतुगीतों में उतनी हादिकता कदाचित् नहीं है । उसके बदले उक्तियों का कौशल और भाषा की सरलता और भावगाम्भीर्य बढ़ गया है । पर इन समस्त गीतों में निरालाजी के प्रकृति-दर्शन का एक अटूट और अविच्छिन्न अनुक्रम प्राप्त होता है । यदि निरालाजी की जीवनदृष्टि में कोई मौलिक परिवर्तन हुआ होता, तो उनके ऋतुगीतों में आदि से अन्त तक इतनी समरसता न मिलती।

स्फुट गीतों के अन्तर्गत यहाँ हम दो ऐसे उदाहरण दे रहे हैं, जिनसे निरालाजी की अनियंत्रित मनोदशा का भी पता लगता है। यों तो उनके इस समय के कुछ गीतों में ऐसी पंक्तियाँ आई हैं, जो उनके मानसिक विक्षेप का परिणाम है। कुछ स्थलों पर उनकी विक्षिप्त मनःस्थिति का प्रभाव दिखाई देता है। 'आराधना' में प्रकाशित उनकी एक रचना देखिये—

आज मन पावन हुआ है
जेठ में सावन हुआ है।
अभी तक दृग बन्द थे ये,
खुले उर के छन्द थे ये,
सजल होकर बन्द थे ये;
राम अहिरावण हुआ है।
कटा था जो पटा रहकर,
फटा था जो सटा रह कर,
डटा था जो हटा रहकर,
अचल था, धावन हुआ है'

आरम्भ की ६ पंक्तियाँ तो सुन्दर भाव-व्यंजना करती हैं। यद्यपि इनमें भी 'खुले उर के छन्द सजल होकर बन्द' जैसे प्रयोग नेत्रों के लिए विशेष समीचीन नहीं हैं, पर अन्तिम चार पंक्तियाँ "कटा था जो पटा रहकर ... धावन हुआ है" किसी भी प्रकार निराला के शैली-सौन्दर्य की परिचायक नहीं हैं; बल्कि ये विक्षिप्तावस्था की ही सूचक हैं।

कुछ ही दिन पूर्व उनका एक और गीत पटना की 'ज्योत्स्ना' पत्रिका में प्रकाशित हुआ था। गीत इस प्रकार है—

पद

फूलों के दीपों की माला
यह उकसे बालों की बाला।
बेसुध की हाला की हाला,
काली की लिपि, गोरी काला।
डाली के माली की पाली
जीवन-जीवन के वन वाली
जीने की, मरने की ताली,
कानों के कानों की ताला।
चितवन के चीते को बस कर
गोरे तारों से कस कस कर,

हंस कर अन्तर तर भर भर कर,
कर दी कुल आले से आला ।'

यहां 'काली की लिपि गोरी काला', 'कानों के कानों की ताला' आदि प्रयोग इतने दूरान्वयी हैं कि उनका अर्थ कोई कुछ भी लगा सकता है। इसी प्रकार 'कर दी कुल आले से आला' में 'आले से आला' का फारसी प्रयोग उत्तम से उत्तम के अर्थ में आया है।

यहां हम इन दो गीतों का उद्धरण इस आशय से भी दे रहे हैं, जिससे यह ज्ञात हो सके कि वे अपने अंतिम वर्षों की गीत-रचना में मानसिक व्याधि से निरंतर संघर्ष करते रहे हैं। अनेकशः विजयी होकर कहीं कहीं पराजित भी हुए हैं। जो लोग निरालाजी के इस मानसिक विक्षेप से परिचित नहीं हैं, या उसे स्वीकार नहीं करना चाहते, और उनके अन्तिम दिनों की रचनाओं को पूर्णतः दिव्य भूमिका पर ले जाकर देखना चाहते हैं, वे निराला के मानसिक संघर्ष और उनकी संकटकालीन विजिगीषा के प्रति अन्याय करते हैं।

निरालाजी के अन्तिम वर्षों के अनेक गीत अप्रकाशित भी हैं। जिनके प्रकाशन की प्रतीक्षा की जा रही है। उनकी संख्या ५० से ऊपर बताई जाती है। प्रयाग से प्रकाशित 'निराला' नामक पत्रिका में निरालाजी की अन्तिम कविता छपी है। इसकी कुछ पंक्तियां नीचे दी जाती हैं—

स्निग्ध हो चुका है निदाघ. वर्षा भी वर्षित
कल शारद कल्य की हैम लोमों आच्छादित
शिशर भिद्य, भौरा बसंत आमो आमोदित
बीत चुका है दिक् चुम्बित चतुरंग काव्य गति-
यतिवाला ध्वनि अलंकार, रस, राग बंध के
बाद्य छंद के रणित गणित छुट चुके हाथ से-
क्रीड़ाएं क्रीड़ा में परिणता मल्ल मल्ल की
मारें मूर्छित हुईं, निशाने चूक गये हैं'

इन पंक्तियों में कवि ने जीवन की सभी ऋतुएं व्यतीत हो जाने की सूचना दी है। इसी प्रकार काव्य की सभी उद्भावनाओं के परिशमित हो जाने का उल्लेख किया है। इसी कविता के अन्त में एक जीवन के संघर्ष-दिवस की समाप्ति का उल्लेख करके नया सबेरा आने की प्रत्याशा की गई है। इस अन्तिम कविता में भी निराला अपनी चिरपरिचित दार्शनिकता को भूले नहीं हैं, बल्कि उसे बड़े ही निश्छल भाव से प्रस्तुत कर सके हैं। संघर्ष और क्लेशमय जीवनी का दिन बीत गया। नया दिन आने को है। यह कविता—

१ ज्योत्सना पत्रिका, जुलाई १९६१।

२ निराला पत्रिका से, बसन्त पंचमी, १९६२।

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरो पराणि
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि सयाति नवानि देही ।^१

गीता की अमर उक्ति से कितना सम्य रखती है ।

इस प्रकार निराला के समस्त काव्य-विकास के साथ उसके मुख्य सोपानों का यह ईषत् परिचय देने के पश्चात् हम इस प्रश्न पर भी विचार करेंगे कि उनके पूर्ववर्ती और परवर्ती काव्य में किस प्रकार का तुलनात्मक सम्बन्ध है ? उनकी बदली हुई शैली और भावधारा में उनकी मूल जीवन-दृष्टि किस प्रकार अक्षुण्ण रही है, यह हम ऊपर देख चुके हैं । यहां हम विशुद्ध साहित्यिक स्तर पर दोनों युगों की कृतियों का विवेचन कर रहे हैं । एक बात यह स्पष्ट है कि निरालाजी ने परवर्ती काव्य में मुक्त छंद का प्रयोग प्रायः स्थगित ही कर दिया था । अतएव मुक्तछंद का अधिकांश सौष्ठव उनकी प्राथमिक कविताओं में ही पाया जाता है । जो छंदोबद्ध, लम्बी कवितायें निरालाजी ने अपने परवर्ती काल में लिखी हैं, वे अधिकतर दार्शनिक हैं । 'महात्मा बुद्ध के प्रति' अथवा 'सहस्राब्दी' आदि; उन्हें हम संस्मरणात्मक भी कह सकते हैं । विचार-प्रधान होने के कारण उनमें दीप्ति तो है, पर कल्पना की बिंबात्मक नियोजना कम है । भाषा की दृष्टि से भी वे सर्वत्र एक सरलता का आधार ढूंढती रही हैं । उन्हें हम अनलंकृत रचना भी कह सकते हैं, जो कवि की वैचारिक प्रौढ़ता की परिचायक हैं । यहां हम 'राम की शक्ति पूजा' और 'तुलसीदास' जैसी रचनाओं को छोड़ देते हैं, जिन्हें मध्यवर्ती संक्रांतिकाल की सृष्टि कहा जा सकता है । उनके परवर्ती काल की शेष कृतियां अधिकतर योगात्मक हैं और हास्य-व्यंग प्रधान, जैसे—'कुरुरमुत्ता', 'नये पत्ते' आदि । इन परवर्ती कविताओं में गृहीत छंद अधिक गद्यात्मक है । 'बेला और 'नये पत्ते' की अधिकांश रचनाएं प्रयोगात्मक काव्य में आती हैं । इनमें से अनेक हल्की भावदशा की परिचायक हैं और निराला-काव्य की विविधता में योग भर देती हैं ।

शेष निराला की गीत-सृष्टियां हैं, जिनके सम्बन्ध में हम कह चुके हैं कि अपने छोटे आकार के कारण निराला की आक्रांत मनोदशा में उनकी अभिव्यक्ति का साधन रही हैं । जहां कहीं इनमें विक्षेपांश आ गया है, वहां तो इनका साहित्यिक सौन्दर्य क्षतिग्रस्त हुआ है, परन्तु अधिकांश गीतों में उनकी अदम्य जीवन-शक्ति विजयिनी हुई है और वे गीत अतिशय सरल भाषा में अत्यन्त मार्मिक भावों को उत्सर्जित करते हैं । यदि उनके प्राथमिक गीत अधिक स्वच्छ और प्रांजल हैं, तो उनके परवर्ती गीत कठुणा की आभा से मंडित और दीप्त हैं । वे अधिक गंभीर और मार्मिक हैं । दोनों में संगीत की सुस्पष्ट योजना मिलती है, यद्यपि परवर्ती गीतोंकी अर्थभूमि अधिक व्यंजनात्मक है ।

समग्र रूप में देखने पर यह निष्कर्ष दिया जा सकता है कि निराला का क्रांतिकारी व्यक्तित्व और काव्यांश उनकी पूर्ववर्ती रचनाओं में निहित है । उनकी अनुभव-प्रवण और प्रौढ़ जीवन-चिंतना उनके परवर्ती काव्य में ही स्थान पासकी है ।

निराला का पूर्ववर्ती और परवर्ती काव्य-सापेक्षिक मूल्यांकन

निरालाजी के पूर्ववर्ती और परवर्ती काव्य की जो रूपरेखा अब तक दी गई है, उससे ज्ञात होता है कि सन् ३८-३९ के आस-पास उनकी ओजस्विनी, प्रसन्न, स्वच्छंद और प्रवाहमयी कविताधारा में परिवर्तन हुआ है और वे क्रमशः बदलती हुई सामाजिक परिस्थितियों के दबाव के कारण अधिक गंभीर, संवेदनशील भावतत्त्व को अपनाने लगे हैं। उनका आरम्भिक आशावाद और क्रांतिवाद धीरे धीरे एक प्रश्न-चिन्ह से संयुक्त हो गया है और वे अधिक विचारपूर्ण और गंभीर भावभूमि की कविताएँ लिखने लगे हैं। कभी वे व्यंगों की पद्धति का सहारा लेकर अपनी बात कहते और कभी असाधारण आलंकारिकता की भूमि पर जाकर 'राम की शक्तिपूजा' और 'तुलसीदास' जैसी रचताएँ प्रस्तुत करते हैं।

एक ओर व्यंग और दूसरी ओर उदात्त का यह युग्म ऊपर से बेमेल दिखाई देता है और इसीलिए शंका होती है कि इन दोनों में कैसा तारतम्य है? इन दोनों प्रकार की रचनाओं में एक समानता यह है कि उनमें निराला-काव्य का स्वाभाविक और चिरपरिचित प्रवाह प्राप्त नहीं होता। इनमें एक प्रकार की मंदगति है। एक की भाषा यदि एक दिशा में (व्यंग काव्य में) अत्यधिक सरलता का स्पर्श करती है, तो दूसरी दिशा में (आख्यात्मक काव्य में) वह काफी क्लिष्ट और दुरूह भी हो जाती है। सन् १९४२ के पश्चात् निराला के मानसिक स्वास्थ्य में और भी गिरावट आई और वे 'कुकुरमुत्ता' जैसी हास्य-प्रधान और 'खजोहरा' जैसी नग्न यथार्थ की सूचक काव्य-कृतियाँ प्रस्तुत करने लगे। व्यंग से हास्य की ओर अग्रसर होने में, मनोवैज्ञानिक दृष्टि से यह परिलक्षित होता है कि निरालाजी जीवन के उच्च आदर्शों के प्रति और भी विरक्त हो गये हैं और वे हँसी की हलकी भावना से जीवन-स्थितियों का साक्षात्कार करने लगे हैं। व्यंग में सुधार की संभावना फिर भी बनी रहती है; पर हास्य में यह आस्था भी जाती रहती है। इसी प्रकार 'खजोहरा' या 'स्फटिक शिला' जैसी कृतियों में निराला पूरी तरह से कटु यथार्थ की स्वीकृति पर पहुँच गये हैं। 'जुही की कली' से आरम्भ करने वाला कवि 'खजोहरा की कुरूप भावभूमि पर पहुँच जायगा, इसकी कल्पना करना भी कठिन था; परन्तु

निराला के सामाजिक अनुभवों ने उन्हें क्रमशः कटु बनाया और उनके मानसिक विक्षेप ने उनके भावात्मक संतुलन में भी बाधा डाली । इन परवर्ती रचनाओं में, इसीलिये, नकारात्मक दृष्टि की प्रधानता है । कोई सक्रिय या सोद्देश्य यथार्थ उनमें अभिव्यजित नहीं ।

बीच बीच में निरालाजी ने अपनी पूर्व सांस्कृतिक चेतना के अनुरूप 'सहस्राब्दी' जैसी कविताएँ भी लिखी हैं, पर ऐसी भावात्मक कविताओं की संख्या कम है । 'बेला' और 'नये पत्ते' की प्रासंगिक काव्य-रचना से आगे बढ़कर निरालाजी सन् ५० के पश्चात् निरंतर १० वर्षों तक केवल गीत ही लिखते रहे । यह संक्षिप्त प्रगीत-सृष्टि स्वयं इस बात की सूचक है कि इन वर्षों में निरालाजी किसी स्वच्छंद या प्रसरणशील भावधारा का प्रयोग और निर्वाह नहीं कर सके । उन्होंने छोटे गीतों में ही अपने आत्मोद्गारों और आत्मोच्छ्वासों को अभिव्यक्त किया है । इन गीतों में जहाँ एक ओर करुणा और संवेदना के गंभीर स्वर हैं, वहीं दूसरी ओर इनमें एक आहत संगीत भी है । कहीं-कहीं ये गीत विशृंखल भावनाओं और पदावलियों से भी आक्रांत हैं, पर सामान्यतः ये सभी गीत निश्छल भावोद्गारों के रूप में अत्यंत सरल भाषा का आधार लेकर प्रस्तुत हुए हैं ।

● परवर्ती काव्य में वादों की स्थिति

निराला के परवर्ती काव्य में वाद-विशेष की स्थिति देखने का आग्रह अनेक समीक्षकों ने किया है । सन् ३६ के पश्चात् हिन्दी साहित्य में वादी दृष्टियों का आगमन हुआ और उन्हें कट्टरता के साथ अपनाया गया । सामान्य रूप से जिस वाद ने साहित्यिक विवेचन को सबसे अधिक अतिरंजित करने का प्रयत्न किया, वह यथार्थवाद या प्रगतिवाद के नाम से प्रचलित है । भारतीय राजनीति में एक ओर समाजवाद और साम्यवाद की पुकार उठी, तो दूसरी ओर साहित्य में यथार्थवाद और प्रगतिवाद की धूम मचने लगी । साहित्यिकों को उनकी नैसर्गिक प्रतिभा और संस्कारों के मार्ग से हटाकर एक विशेष विचार-पद्धति का अनुसरण करने की प्रेरणा दी गई । इन समीक्षकों ने अपने प्रथम आवेग में प्रसाद और निराला जैसे कवियों के काव्य को भी पलायनवादी और कल्पनावादी बताने का दुःसाहस किया । उपन्यास-क्षेत्र में उन्होंने प्रेमचंद को यथार्थवादी, प्रगतिवादी और द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी तक सिद्ध करने की चेष्टा की । इस प्रकार हिन्दी साहित्य की स्वाभाविक गतिविधि में एक बड़ा विक्षेप उत्पन्न होने लगा । इससे साहित्यिकों के स्वतन्त्र कला-निर्माण में बाधा तो पड़ी ही, उनके मूल्यांकन में भी अनेक प्रकार की कठिनाइयाँ आईं । इस प्रकार की विचारणा जब कठोर सीमाओं पर पहुँची, तब प्रतिक्रिया-स्वरूप एक दूसरी व्यक्तिवादी विचारधारा और कलादर्शन हिंदी के क्षेत्र में अवतरित हुआ । यह व्यक्तिवादी दृष्टि अपनी प्रायोगिक विशेषताओं के कारण प्रयोगवादी कहलाने लगी । यदि यह क्रिया-प्रतिक्रिया अपनी अतिशयता में जाकर साहित्य और काव्य को

दो ध्रुवों की ओर अपसारित न करती, तो संभवतः हिन्दी साहित्य के विकास में अधिक संतुलन की स्थिति बनी रहती। पर जब दो संप्रदाय परस्पर विरोधी वैचारिक आधारों को लेकर साहित्य में अवतरित होते हैं, तब समस्या जटिल हो जाती है। फिर भी जातीय जीवन की चेतना समस्तवादों से अधिक शक्तिशालिनी होती है और वह जातीय साहित्य में संतुलन की स्थिति बनाये रखती है। यही कारण है कि प्रगतिवाद एक संप्रदाय के रूप में अब नाम-शेष ही रह गया है और उसकी प्रतिक्रिया में उत्पन्न प्रयोगवाद या अंतर्मुखी व्यक्तिनिष्ठ भावना का काव्य भी धीरे धीरे अपनी अतिवादिता समाप्त कर रहा है। (निराला के काव्य को किसी वाद-विशेष की सीमा में रखना संभव नहीं है। उनके काव्य में प्रगतिवाद की भावात्मकता और प्रयोगवाद की चमत्कारी शिल्प-रचना भी प्राप्त है। परन्तु यह निराला-काव्य का पार्श्वचित्र है। इससे उसकी समग्रता का आकलन नहीं होता।)

निराला के पूर्ववर्ती काव्य में स्वच्छंदतावाद की जो बलशाली प्रेरणा है, वह उनके समस्त साहित्य को किसी भी अन्य वाद के छोटे घेरे में घिरने नहीं देती। स्वच्छंदतावाद कोई सीमित वैचारिकवाद नहीं है। वह आधुनिक युग की वृहत भावधारा और विराट् कला-शैली है। आधुनिक युग में हम जिस सीमित अर्थ में नये वादों को जानने-पहचानने लगे हैं, उस अर्थ में स्वच्छंदतावाद कोई वाद नहीं है। अतएव जब हम कहते हैं कि निराला स्वच्छंदतावादी कवि हैं, तो हम दूसरे शब्दों में यह निर्देश करते हैं कि निराला आधुनिक कवि हैं।

कुछ समीक्षकों ने स्वच्छंदतावाद की भी सीमाएँ निर्धारित की हैं। वे एक ओर उसे शास्त्रीय, नैतिक और मर्यादा-प्रधान प्राचीन काव्य से पृथक् करते हैं, तो दूसरी ओर नवीन यथार्थवाद से भी उसकी पृथक् भूमिका बतलाते हैं। परन्तु स्वच्छंदतावाद अपने व्यापक प्रसार में न तो नीतिवाद का और न कला-सौष्ठव का विरोधी है, और न वह यथार्थ की भूमिका स्पर्श करने में हिचकता है। जिसे हम क्लासिकल पोएट्री कहते हैं उसके अनेकानेक तत्व स्वच्छंदतावाद ने भी अपनाए हैं और जिसे हम रियलिज्म कहते हैं, उसके विविध आयाम स्वच्छंदतावाद की अबाध गति में समाहित हुए हैं। स्वच्छंदतावाद मूलतः एक जनतांत्रिक और मानवतावादी आन्दोलन का सहचर और सहकारी रहा है। उसने सामाजिक और काव्यगत रूढ़ियों का तिरस्कार किया, इसलिये वह स्वच्छंदतावाद कहलाया। परन्तु स्वच्छंदतावादियों ने किसी संकीर्ण विचार-दर्शन को नहीं अपनाया। निराला के काव्य में भी सीमित अर्थ में किसी वाद की स्थिति नहीं है। उनकी गणना जब कभी होगी, स्वच्छंदतावाद की सरणी में ही होगी। इस स्वच्छंदतावाद की एक मूलभूत विशेषता व्यक्ति-स्वातंत्र्य की है। निराला के काव्य में इसी स्वातंत्र्य का स्वर सर्वत्र ध्वनित रहा है। प्राचीन काव्य में यह व्यक्ति-स्वातंत्र्य दर्शन-विरल है। निराला का काव्य यदि प्राचीन काव्य से भिन्न है, तो इस अर्थ में कि उसमें व्यक्ति-स्वातंत्र्य की नई आवाज पायी जाती है।

(इस स्वच्छन्दतावादी कवि ने अपने परवर्ती काव्य में, जहाँ एक ओर उदात्त की भूमिका अपनाकर 'राम की शक्ति पूजा' और 'तुलसीदास' का प्रणयन किया, तो दूसरी ओर हल्के हास्य-व्यंग और विनोद की चमत्कारपूर्ण सृष्टियाँ भी कीं, जहाँ 'सरोजस्मृति' में पारिवारिक करुणा का आलेखन किया, वहाँ उसने आध्यात्मिक भूमिका पर शांत रस के प्रार्थना-गीत भी लिखे ।

छन्दों की भूमिका पर निराला के नित-नूतन प्रयोग उसे स्वच्छन्दतावादी के अतिरिक्त और कुछ नहीं सिद्ध करते । उसकी भाषा में जहाँ एक ओर मिल्टन की शब्दावली की भास्वरता है, वहीं कीट्स के मधुर शब्द-संगीत की भी मीठी ध्वनि है ।

कहीं-कहीं निराला की भाषा-सम्बन्धी स्वच्छन्दता असामंजस्य की सीमा तक पहुँचती है । इस असामंजस्य का वरण भी कोई नियमानुवर्ती कवि नहीं कर सकता । यहाँ भी निराला की स्वच्छन्द प्रवृत्ति क्रियाशील है । अपने उत्कर्ष और अपकर्ष में निराला का काव्य उनके व्यक्तित्व की अनगढ़ता और स्वच्छन्दता का ही परिचायक है । वाद की दृष्टि से नहीं (क्योंकि वाद निराला के लिए छोटा पड़ता है) किन्तु युगीन-चेतना की दृष्टि से; और अपने वैयक्तिक संघटन की भूमि पर से निराला सर्वत्र स्वच्छन्दतावादी हैं ।)

स्वच्छन्दतावाद का स्वरूप कल्पना के सहयोग से लौकिक को अलौकिक भूमि पर और अलौकिक को मानव-संवेदना द्वारा लौकिक ग्राह्य भूमि पर ला सकता है । इसका प्रमाण कोलरिज और वर्ड्सवर्थ की कविताओं में मिलता है । जो तत्त्व इस कल्पना-प्रधान काव्य को ग्रहणशील बनाता है उसे कोलरिज ने 'सस्पेंशन आफ डिस्बिली' अर्थात् अविश्वास का निराकरण कहा है । जहाँ एक ओर कोलरिज का स्वच्छन्दतावादी काव्य कल्पना-प्रधान होकर भी अपने गम्भीर संवेदनों के कारण सार्वजनिक है, सार्वजनिक ही नहीं; महान भी है, उसी प्रकार वर्ड्सवर्थ का काव्य साधारणजनों के जीवन को साधारण परिवेश में और अतिसाधारण भाषा में उपस्थित कर लोकप्रिय बना है । यह साधारणता उसके काव्य में यथार्थ या वास्तविकता का आनयन करती है । परन्तु वर्ड्सवर्थ का चिन्तन-प्रधान व्यक्तित्व उन यथार्थोन्मुख जीवन-चित्रों को गम्भीर भावों का वाहक बना देता है । इस प्रकार एक ओर कोलरिज की कल्पनाशीलता वास्तविक मानव-भाव का आधार लेकर और दूसरी ओर वर्ड्सवर्थ की यथार्थोन्मुखता उसके चिन्तन का संसर्ग पाकर, महान काव्य का निर्माण कर सकी है और ये दोनों ही कवि सर्वसम्मति से स्वच्छन्दतावादी माने गये हैं । १

- 1 "During the first year that Mr. Wordsworth and I were neigher bours, our conversations turned frequently on the two cardinal points of poetry-the power of exciting the sympathy of the reader by a faithful adherence to the truth of nature and the power

अतएव, स्वच्छन्दतावाद का निर्णायक तत्व केवल कल्पना या केवल यथार्थ नहीं है; बल्कि कल्पना या यथार्थ में अनुस्यूत जीवन सम्बन्धी गम्भीर भावचेतना है। निराला के काव्य में भी कहीं कल्पना की प्रमुखता है और कहीं यथार्थ की योजना। परन्तु दोनों ही स्थितियों में उनका काव्य एक गम्भीर जीवनाशय से संलग्न है। यह गम्भीरता ही निराला के काव्य को कल्पना और यथार्थ की अनेक भूमियों में ले जाकर स्वच्छन्दतावाद की भूमि से पृथक् नहीं करती। निराला प्रकृत्या स्वच्छन्दतावाद के निसर्गजात कवि हैं।

● विविध काव्यरूप

यों तो निरालाजी अपने काव्यरूपों की विविधता के लिए आरम्भ से ही ख्यात रहे हैं, पर उनके परवर्ती काव्य में भी इस वैविध्य की कमी नहीं है। काव्य-रूप का सम्बन्ध जहाँ एक ओर वर्ण्य-विषय और उसकी कलात्मक उपयुक्तता से है, वहीं दूसरी ओर इसका सम्बन्ध काव्यकृति में नियोजित भावों और रसों से भी है। सामान्यतः वीर रस की काव्य-सृष्टि उस काव्य-रूप के अन्तर्गत होती है, जिसे वीर-गीत या बेलेड पोएट्री कहा गया है। इसी प्रकार कोमल और मार्मिक भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिये प्रगीत या लिरिकल पोएट्री का काव्यरूप अपनाया जाता है। परन्तु ये काव्य-रूप एक दूसरे से नितान्त परिच्छिन्न नहीं हैं। इसका सबसे बड़ा प्रमाण वर्ड्सवर्थ और कोलरिज की उस प्रख्यात पुस्तक में मिलता है, जिसे 'लिरिकल बेलेड्स' का नाम दिया गया है। इस पुस्तक के 'लिरिकल' और 'बेलेड्स' शब्द यद्यपि विशेष्य और विशेषण के रूप में प्रयुक्त हुए हैं, पर इनका एक साथ आना ही लिरिक और बेलेड की संभावित समीपता का परिचायक है। यदि प्रगीत और वीर-गीत काव्य-रूप नितान्त पृथक् होते तो इन दोनों का समीकरण दो प्रसिद्ध कवियों की इस काव्य-पुस्तक में कैसे हो पाता? वीराख्यान या वीरगीत मूलतः जनकाव्य है। उसकी परम्परा लोक-गीतों के माध्यम से साहित्य में आई है। चूँकि लोकगीत जन-साधारण की वस्तु होते हैं, उनकी रचना में सामूहिकता होती है, इसलिये उनमें शिष्ट साहित्य का संपूर्ण सौन्दर्य नहीं आ सकता। परन्तु इन्हीं लोक-गीतों को जब वर्ड्सवर्थ और कोलरिज जैसे कवि साधन रूप में ग्रहण कर इनका परिमार्जन करते हैं और इनमें गहनतर भावों की सफल योजना करते हैं, तब ये लोकाख्यान-मूलक वीरगीत भी अपनी ग्राम्यता को छोड़कर उच्च साहित्यिक सृष्टि के माध्यम बन जाते हैं। इन वीर गीतों में प्रगीतात्मक या 'लिरिकल' काव्य की विशेषतायें सन्निहित हो

of giving the interest of modesty by the modifying colours of the imagination." Littledale : Quotation from Coleridge in his Introduction to 'Lyrical Ballads' by Words worth & Coleridge, P. xv, xvi.

जाती हैं और ये अपने मूल स्वरूप को छोड़ बैठते हैं। इस उदाहरण से यही सिद्ध होता है कि काव्य-रूप चाहे जो हो, उसको नए-नए सांचों में ढालकर कवि अपनी प्रतिभा द्वारा नवीन और सूक्ष्मतर भावों का वाहक बना सकता है। यद्यपि बर्ड्सवर्थ और कोलरिज ने काव्यरूप की भूमिका पर बेलेड को अपनाया था, पर उसका परिष्कार करके इन दोनों कवियों ने उसे विशिष्ट प्रगीत-काव्य का स्वरूप दे दिया।

बहुत कुछ ऐसी ही स्थिति निराला-काव्य की भी है। निरालाजी ने वीरगीत अथवा पौराणिक गाथा की भूमिका पर 'राम की शक्तिपूजा' और 'तुलसीदास' जैसे काव्यों की रचना की। परन्तु रचनाक्रम में उन्होंने मूल काव्य-रूपों को एक नया ही स्वरूप प्रदान कराया। निराला की ये काव्य-सृष्टियाँ इतनी अधिक अलंकृत और संस्कृत-गर्भा हैं कि उन्हें पढ़कर उनके मूल काव्य-रूप की ग्रामीणता का पता ही नहीं चलता; बल्कि हम यह भी कह सकते हैं कि इन बड़ी कविताओं में निराला शिष्ट साहित्य की कृत्रिम सीमाओं तक पहुँच गये हैं। परन्तु यहाँ हम जिस प्रश्न पर विचार कर रहे हैं वह काव्यरूप का प्रश्न है। इन रचनाओं में निराला ने मूल काव्यरूप को इतना बदल दिया है कि वह बेपहचान बन गया है।

इसी प्रकार परवर्ती कृतियों का एक दूसरा काव्य-रूप शोकगीति है, जिसकी परम्परा भारतीय काव्य में बहुत कम प्राप्त होती है। संस्कृत में अज-विलाप (कालिदास) अथवा हस-विलाप (नैषध) जैसे विलाप-काव्य मिलते हैं। निराला ने इस काव्यरूप को एकदम नया सांचा देने का प्रयत्न किया है। हिन्दी में शोकगीति का यह उदाहरण निराला की अपनी देन है।

एक तीसरा काव्य-रूप व्यंग-गीतों का है, जिसे सेटायर या सेटायरिक्ल पोएट्री भी कहते हैं। इस काव्य रूप को आधुनिक हिन्दी में निराला ने आविष्कृत किया, यह कहें तो अनुचित न होगा। यद्यपि बालमुकुन्द गुप्त और महावीरप्रसाद द्विवेदी ने 'कल्लू अलहैत का आल्हा' जैसी रचनायें की थीं, किन्तु निराला की इन व्यंग-कविताओं में हास्य, विनोद आदि के तत्व भी संलग्न किए गए हैं। निराला का व्यंग काव्य-रूप व्यंग-काव्य की उदार या सहानुभूतिपूर्ण परम्परा में आता है, यद्यपि उसमें उपहास का पक्ष भी अनेक बार दिखाई देता है।^१

इनके अतिरिक्त निराला के गीतों की परम्परा उनके परवर्ती काव्य में विकसित होती गई है। गीत भी एक स्वतन्त्र काव्य-रूप है, जिसमें शब्द और स्वर की सम्मिलित शक्तियाँ काम करती हैं। निराला ने इस गीत काव्य-रूप को आधुनिक युग में अपूर्व महत्व प्रदान किया है जिसकी चर्चा हम अन्यत्र कर चुके हैं। निराला

१ "इस प्रकार हम देखते हैं कि सहानुभूतिपूर्ण हास्य, तीव्र आलोचना तथा व्यंग्य के आधार पर उपहास-काव्य के तीन सामान्य भेद किए जा सकते हैं।"

—व्यंग काव्य के तीन भेद-डा० रामअवध द्विवेदी-साहित्य रूप, पृ० २६३।

के सांस्कृतिक और शृंगारिक प्रगीत जो आरंभ में मुक्तछंद में लिखे गये थे उनके परवर्ती काव्य में छंद-बद्ध हो गये हैं। उनकी शृंगारिकता घट गई है और सांस्कृतिकता बढ़ गई है। मुक्तछंदों की गतिमानता कम हो गई है। उसके स्थान पर बौद्धिक और वैचारिक तथ्य प्रमुखता ग्रहण कर लेते हैं। 'सहास्रब्दी' नामक कविता इस का एक अच्छा उदाहरण है। इन सबके अतिरिक्त निराला ने उर्दू के काव्य-रूपों को भी अपनाया है, जिनमें गजल प्रधान है। यद्यपि इस गजल-सृष्टि में निरालाजी प्रयोग की सीमा से ऊपर उठकर गजल काव्य-रूप की भूमि पर कम ही पहुँचे हैं।

इन विविध काव्य-रूपों को देखते हुये निराला को किसी एक काव्य-रूप का आविर्भावक या अनुकर्ता मानना 'बदतो व्याघात' ही होगा। फिर भी यह प्रश्न कुछ समीक्षकों ने उठाया है कि निराला का केन्द्रीय काव्य-रूप क्या है? जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं, काव्य रूपों का सम्बन्ध साहित्यिक रसों से भी है। इसलिये यह प्रश्न भी होता है कि निराला का केन्द्रीय काव्य-रस क्या है? इस सम्बन्ध में आचार्य पं० नन्ददुलारे वाजपेयी का वक्तव्य उल्लेखनीय है। उन्होंने कहा है—'निराला के काव्य में रस उनकी सांस्कृतिक चेतना की उपज है। यदि वह सांस्कृतिक चेतना सुदृढ़ न होती, तो वे विभिन्न रस-भूमियों में जाकर किसी एक की भी मार्मिक अवतारणा न कर पाते। यह कहना कठिन होगा कि उनमें किस रस की प्रधानता है। जैसे प्रकृति की ही कोई वस्तु विकसित होती हुई विभिन्न रूप धारण करती है, उसी प्रकार उनका कवि-व्यक्तित्व आगे बढ़ा है। उनमें वीर रस की भी योजना है। उनमें सुन्दरतम शृंगारिक तत्त्व भी जुड़े हैं। उनके अन्तिम समय के गीत मूलतः शांत और करुण रसों से संपृक्त हैं। उनके काव्य को किसी रस-विशेष की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता।'^१

इसी आधार पर हम यह भी कह सकते हैं कि निराला के काव्य-रूप भी किसी एक परिधि में नहीं बाँधे जा सकते। उन्होंने कोमल और रूक्ष, मृदुल और उदात्त भावों के अनुरूप विविध काव्य-रूपों की सृष्टि की है। जो लोग निराला को मुख्यतः बलेड या वीरगीत का काव्य-सर्जक मानते हैं, उन्हें यह भी देखना होगा कि निराला की अधिकांश रचनाएँ आख्यानमूलक या कथात्मक भी हैं, जब कि वीरगीत के लिये कथा या आख्यान आवश्यक है। आख्यानमूलक वीर गीतों को निराला ने जो काव्यात्मक रूप दिया है, उससे वे केवल वीरगीत न रहकर महाकाव्योचित उदात्त भूमिका पर आ गये हैं। सरलता और स्वाभाविकता के स्थान पर उनमें आलंकारिता और गांभीर्य आ गया है, जो वीरगीतों की विशेषता नहीं है। पश्चिमी साहित्य में वीरगीत एक विशेष छंद और शैली का अनुकरण करते हैं, जो गेय होती है। परन्तु

१ 'निराला-जयन्ती' के अवसर पर कान्स्टिट्यूशन क्लब, दिल्ली में दिये गये भाषण से।

निराला की इन साहित्यिक-आख्यान कविताओं में गेयता का गुण नहीं है और छंदों की कोई सुस्थिर योजना नहीं दिखाई देती। अनेक बार मुक्त छंद की भी ऐसी रचनायें प्रस्तुत की गई हैं। अतएव हमें पश्चिमी परिपाटी का अनुसरण न कर भारतीय काव्य-परम्परा की ओर दृष्टिपात करना होगा। वीरगीतों की परम्परा चारणों से संबद्ध है; जब कि निराला-काव्य में चारण-काव्य की विशेषता उपलब्ध नहीं है। ऊपर हमने पं० वाजपेयीजी का जो उद्धरण दिया है, जिसमें रस के आधार पर निराला-काव्य को देखा गया है; निराला की भूमिका सांस्कृतिक कही गई है। वह दार्शनिक भी है, जो चारण-काव्य के दर्शन-निरपेक्ष स्वरूप से बहुत भिन्न है। इस प्रकार भारतीय विवेचन के आधार पर निराला को प्रमुखतः महाकाव्योचित संभार का कवि कहा जायगा। परन्तु यहां भी निराला की मनोरम कल्पनायें, उनकी वैयक्तिक विद्रोह की भावनायें, जो अनेक बार कबि शेली का स्मरण कराती हैं, वीरगीत के निर्वैयक्तिक स्वरूप से एकदम पृथक् हैं। पाश्चात्य विवेचना में प्रगीत काव्य की रचना के लिए वैयक्तिक वेदना की अनिवार्यता मानी जाती है। निराला की वैयक्तिक वेदना विद्रोह-मूलक है। वह असफल प्रेम या सौन्दर्यलिप्सा की वेदना नहीं है। परन्तु इसी कारण वह वैयक्तिक नहीं है, ऐसा नहीं कहा जा सकता। भारतीय काव्य-परिपाटी का ध्यान रखते हुए निराला ने अपनी वैयक्तिक अनुभूतियों को एक निःसंगता और तटस्थता देने की निरंतर चेष्टा की है। अतएव उनकी प्रगीतात्मकता में संदेह करने का अवकाश नहीं है। बल्कि उनकी समग्र काव्य-सृष्टि को देखते हुए उन्हें प्रगीतात्मक कवि कहना ही सर्वथा उचित होगा।

● आधुनिक पश्चिमी काव्य में निराला की स्थिति

वर्तमान समय में देश-विदेश की कविताओं को तथाकथित विश्वकाव्य की भूमिका पर रखकर देखने का उपक्रम किया जाता है। विश्व-काव्य से अधिकतर पश्चिमी काव्य का अर्थ लिया जाता है। यूरोप और अमेरिका मिलकर ही आधुनिक विश्व-काव्य का प्रतिनिधित्व करते हैं। भारतवर्ष का सम्पर्क इंग्लैंड से वर्षों तक रहा है और अंग्रेजी काव्य अनेक बार योरोपीय वादों की दृष्टि से परखा जाता रहा है। इसी संदर्भ में आधुनिक भारतीय काव्य और उसके साथ हिन्दी काव्य भी, अंग्रेजी कविता तथा योरोपीय वादों के मार्फत समझा जाता रहा है। (एक और भी प्रवृत्ति है जो राष्ट्रीय काव्य को अंतर्राष्ट्रीय भूमिका पर रखने का प्रयास करती है। वह प्रवृत्ति है समस्त संसार में एक सी परिस्थितियों की कल्पना और एक से मानव-भविष्य की अनुचिता।) कदाचित् यह समझा जाता है कि आज विश्व में कोई एक समान जीवन-व्यवस्था काम कर रही है और इसलिए नाना देशों के काव्य में एक सी भाव-भूमि और कलाशैलियों का अपनाया जाना स्वाभाविक है। हमारे विचार से ये दोनों ही परिकल्पनायें अधूरी और अपूर्ण हैं। यद्यपि संसार के विविध राष्ट्रों का समीकरण होने लगा है; पर उसकी गति अतिशय मंद है और उसके आदर्श प्रायः अनिर्णीत हैं।

यूरोपीय कविता और काव्य-चिंतन में एक और भी प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है। थोड़े-थोड़े वर्षों में बदलनेवाली राष्ट्रीय घटनाओं का प्रभाव काव्य-शैलियों पर और काव्य-रचनाओं पर देखा जाता है। अल्पकाल में बदलनेवाली राष्ट्रीय परिस्थितियाँ काव्य की नियामक मान ली जाती हैं और उसी परिपार्श्व में काव्य को परखने का प्रयत्न किया जाता है। इस विशेष प्रवृत्ति के आगमन के कारण समाहित काव्य की धारणा नहीं बन पाती और कवियों के व्यक्तित्व के प्रति न्याय नहीं हो पाता। यद्यपि कविता राष्ट्रीय परिस्थितियों से प्रभावित होती है, पर बड़े कवि अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व भी रखते हैं। वे वायुदर्शक यंत्र की भाँति हवा की गति की सूचना-मात्र नहीं देते, उन्हें एक व्यापक 'मिशन' या उद्देश्य की पूर्ति भी करनी होती है। आज के विश्वकाव्य की समीक्षा में ऊपर प्रदर्शित तीनों भूमिकाएँ अपर्याप्त हैं। भारतीय जीवन में आज के कवि का स्वरूप यूरोपीय कवि के स्वरूप से काफी भिन्न है। अतएव हम निराला को यूरोपीय या पश्चिमी काव्य की संगति में रखकर पूरी तरह नहीं देख सकेंगे। उनकी कला-शैली की विशेषतायें भी भारतीय परम्परा से अनुबद्ध हैं। फिर भी यदि निराला की तुलना पाश्चात्य पृष्ठ-भूमि पर करनी हो, तो हम यही कहेंगे कि निराला का काव्य स्वच्छंदतावादी और मानववादी मूल्यों की अभिव्यंजना करता है। वह एक ओर पश्चिमी काव्य की व्यक्तिवादी, प्रतीकवादी या अस्तित्ववादी प्रवृत्तियों से पृथक् है, तो दूसरी ओर वह द्वंद्वात्मक भौतिकवादी या किसी प्रकार के भौतिकवादी या अनुशासित काव्य सरणी से भिन्नता रखता है। निराला-काव्य का केन्द्रीय स्वर प्रगतिमुखी, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक है। इन शब्दों की विस्तृत व्याख्या न कर हम इतना ही कहेंगे कि उनका काव्य मानव-उत्कर्ष की सम्भावना और आस्था पर आश्रित है और मानव-सम्बन्धों में आकांक्षित स्वस्थ अकुंठित प्रेम, सहानुभूति और सामाजिक वैषम्यों के परिहार की भूमिका पर ही हम निराला-काव्य को विश्व-काव्य के समकक्ष रखकर देख सकते हैं।

● समग्र आकलन

साहित्यिक सौष्ठव की दृष्टि से निराला-काव्य का समग्र आकलन करते हुये हम कह सकते हैं कि उनकी पूर्ववर्ती और परवर्ती रचनाओं में पर्याप्त अंतर आ गया है। परन्तु वह सारा अंतर उनकी जीवन-दृष्टि या विचारधारा को बदलने में अक्षम रहा है। स्वभावतः कवि की वयस-प्रौढ़ता के साथ उसकी भावनाधारा अधिक सामाजिक हो गई है। वे भारतीय समाज के विरोधों और असंगतियों से अधिक खिन्न और व्याकुल हैं। वे अपनी निजी व्याधियों से आक्रांत भी हैं और इसलिये उनमें शरणागति की भावना बढ़ गई है। वे बृहत्तर काव्य लिखने के महत्वाकांक्षी हैं। अतएव उन्होंने कतिपय आस्थानों का आधार भी लिया है; पर इन आस्थानिक काव्यों में वे अपनी मूल दार्शनिकता को प्रौढ़ और उदात्त रूप में ही उपस्थित कर सके हैं। उनमें पांडित्य कृतिशक्ति भी पुष्टतर हुये हैं; अतएव वे उर्दू छंदों और मुहावरों का भी प्रयोग कर सके हैं।

लोक-लयों और लोकगीतों की भी अनुवृत्ति की है। हास्य और व्यंग के प्रसंग उन्होंने अपनी पिछली कविताओं में उठाये हैं, उनमें यथार्थोन्मुख शैली के प्रचुर लक्षण हैं। भाषा सरल और मुहावरेदार हो गई है। परन्तु शैलीगत परिवर्तन को हम यथार्थवाद नहीं कह सकते; क्योंकि यथार्थवाद एक शैली ही नहीं; एक जीवन-दृष्टि भी है। निराला की जीवन-दृष्टि बुद्धिवाद, विज्ञानवाद और भौतिकवाद को सदैव चुनौती देती रही है और इन रचनाओं में भी वह चुनौती मौजूद है। निराला के पिछले गीत इस बात के स्पष्ट प्रमाण हैं कि वह परिस्थितियों के आक्रमण से पूर्णतः परिकलांत होकर एक आराध्य की शरण में आ गये हैं। यह उनकी आध्यात्मिक भावना का ही प्रमाण और परिणाम है। जहां कहीं निराला ने यथार्थवादी भावना-धारा अपनाई भी है, कुरूप यथार्थ का चित्रण किया है, जैसे 'खजोहरा' और 'स्फटिक शिला' में; वहां वह एक आनुषंगिक प्रयोग से आगे नहीं गये। अपने ऋतु-गीतों में उन्होंने प्रकृति के प्रति वही आध्यात्मिक लालसा और अनुरक्ति प्रकट की है जो उनकी समस्त कविता की, आधारशिला है। इन सब प्रमाणों के रहते हुए निराला को स्वच्छंदतावाद की भूमि से हटाकर यथार्थवाद का अनुयायी बनाना, केवल बाकछल और वादी-दुराग्रह का परिणाम है। प्रत्येक बड़ा कवि अपने विकास-क्रम में सांसारिक अनुभवों की अभिवृद्धि करता है। निराला के विकास-क्रम में इन्हीं अनुभवों की अभिवृद्धि हुई है। वे आकाश को छोड़ कर पृथ्वी पर आये हैं। पर उनका लक्ष्य पृथ्वी को रहने योग्य बनाना है। यह विशुद्ध मानववादी लक्ष्य है। इसमें किसी प्रकार का भौतिकवाद देखना, धुंधली दृष्टि का परिचायक है। निराला आरम्भ से मानव-संस्कृति और मानव-स्वतन्त्रता के उन्नायक कवि रहे हैं और उनकी अंतिम समय की काव्य-रचना में भी इन्हीं आशयों की अभिव्यंजना हुई है। निराला के निजी अनुभव क्रमशः कटु होते गये हैं। उनकी सहानुभूति का क्षेत्र बढ़ता गया है। साथ ही उनकी निजी वेदना भी गंभीर होती गई है। वे अंतिम समय में भारतीय सामाजिक जीवन की विकृतियों से अधिक क्षुब्ध थे। यही कारण है कि उनकी परवर्ती रचनाओं में उल्लास और सौन्दर्य की अपेक्षा करुणा और क्षोभ के स्वर प्रधान हैं।

● तुलनात्मक वैशिष्ट्य

आधुनिक हिन्दी-काव्य की विशिष्ट भूमिका पर निराला को परखने का उपक्रम नया नहीं है। समस्त ऋचिभेदों को और विचार-भेदों को निराकृत कर देने के पश्चात् बीसवीं शताब्दी के हिन्दी-काव्य में तीन ही प्रमुख व्यक्तित्व पारस्परिक तुलना के अधिकारी बन सके हैं। स्पष्ट ही वे प्रसाद, निराला और सुमित्रानन्दन पंत के व्यक्तित्व हैं। युगीन प्रशस्त-काव्य के ये ही प्रमुख स्रष्टा माने गये हैं। इनके एक छोर पर श्री मैथिलीशरण गुप्त का नाम लिया जाता है तो दूसरे छोर पर महादेवी वर्मा का नानोन्लेख किया जाता है। बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', 'भारतीय आत्मा' 'दिनकर' आदि के नाम भी कुछ क्षेत्रों में परिगणित होते हैं। आधुनिक

चेतना को व्यापक रूप से प्रतिफलित करने वाले प्रतिनिधि कवियों में प्रसाद, निराला और पंत के नाम अग्रणीय हैं। बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक ये तीनों कवि उभर कर हिन्दी जनसमाज के भावात्मक विकास के शीर्ष बिन्दुओं का स्पर्श करने लगे हैं। ये तीनों ही कवि दार्शनिक और चिंतक हैं। उनके काव्य में एक वैचारिक समग्रता है। इनके आगे और पीछे के कवियों के सम्बन्ध में यही बात नहीं कही जा सकती। अतएव राष्ट्रीय चेतना के समग्र उद्भावक और निरूपक इन्हीं तीन को कहा जा सकता है। प्रसादजी ने 'कामायनी' काव्य का निर्माण करके युग-चेतना को अधिक व्यापकता से रूपायित कर दिया है। पंत का काव्य आधुनिक-सौंदर्य-चेतना और परिष्कृति का काव्य है। निराला के काव्य में ओज, शक्तिमत्ता और पौरुष के साथ आधुनिक युग की भौतिकवादी जीवन-दृष्टि के विरुद्ध एक मानवतावादी चुनौती दी गयी है। वह प्रसाद और पंत के काव्य की अपेक्षा अधिक स्वच्छंद और सर्वतोमुखी है। जब कि पंतजी के काव्य का परवर्ती चरण विचार-बोझिल है तब निराला का परवर्ती काव्य यत्र-तत्र उनके मानसिक विक्षेपों के बावजूद अपनी भावप्रवणता और रचना-कौशल में अस्खलित है। यहाँ गंगाप्रसाद पांडे का उद्धरण देना अनुचित न होगा—“महाकवि निराला हमारे प्रतिनिधि राष्ट्रीय कवि हैं। उनका काव्य हमारी सम्प्रदाय तथा संस्कृति का प्रतीक है। विशेषता यह है कि इस कवि की राष्ट्रीय भावना और विश्वकल्याण की भावना में किसी प्रकार का विरोध नहीं है।”

तुलना सदैव मतभेदों की सृष्टि करती है और फिर तुलना का अधिकार पारंगत विद्वानों को होता है। हम यहाँ आत्यंतिक तुलना का साहस नहीं कर सकते। पर इतना तो निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि आधुनिक हिन्दी काव्य में निराला का वैशिष्ट्य यदि सबसे श्रेष्ठतर नहीं है, तो किसी से हीनतर भी नहीं मगना जा सकता। आज से तीस वर्ष पूर्व आचार्य वाजपेयीजी ने अपनी तरुण चेतना के प्रकाश में हिन्दी काव्य की बृहत्त्रयी का निरूपण करते हुए प्रसाद निराला और पंत का जो नामोल्लेख किया था, वह समय के समस्त व्यवधानों को पारकर आज भी तथ्यपूर्ण बना हुआ है और नयी पीढ़ी के तरुण विद्यार्थी के रूप में प्रस्तुत पंक्तियों का लेखक भी अपने को उनसे पूर्णतः सहमत पाता है।^२

१ गंगाप्रसाद पांडे : महाप्राण निराला—पृ० ३७६।

२ आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी—‘हिन्दीसाहित्य : बीसवीं शताब्दी’, में ‘जयशंकर प्रसाद’ शीर्षक लेख—पृ० १०८—

“नवीन युग की हिन्दी-कविता की बृहत्त्रयी के रूप में श्री जयशंकर प्रसाद, श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी ‘निराला’ और श्री सुमित्रानन्दन पंत की प्रतिष्ठा मानी जाती है। उपर्युक्त बृहत्त्रयी ऐतिहासिक दृष्टि से हिन्दी-काव्य में युगान्तर उपस्थित कर चुकी है।”

● शताब्दी का कवि

निराला के देहावसान से हिन्दी काव्य के एक विशिष्ट युग की परिसमाप्ति हो गई है। यह युग सामान्यतः छायावाद-युग के नाम से प्रचलित है, यद्यपि निराला के व्यक्तित्व और काव्य-रचना से प्रभावित होकर इस छायावाद-युग की सीमाएँ भी अतिक्रान्त हो गई हैं। हिन्दी के समीक्षक निराला के काव्य में छायावाद का उत्कर्ष तो देखते ही हैं, उन्हें इस काव्य में छायावादोत्तर काव्य की वे भूमिकाएँ भी दृष्टिगत होती हैं जिन्हें मोटे तौर पर प्रगतिशील और प्रयोगशील काव्य कहा जाता है। इस प्रकार निराला की काव्य-रचना सन् १९१५ ले लेकर १९६० तक जिन भावभूमियों पर प्रसरित है, और जिन काव्य-प्रवृत्तियों को उद्भावित करती रही है उन्हें किसी साहित्य-युगविशेष का नाम नहीं दिया जा सकता। आचार्य वाजपेयीजी के हाल के एक वक्तव्य के अनुसार हम कह सकते हैं कि उनकी पूरी शताब्दी की कविता है और उससे प्रभावित होने वाले कवि पूरी शताब्दी तक आत्मविस्तार करते रहेंगे। यद्यपि अभी इस शताब्दी के ६२ वर्ष ही व्यतीत हुए हैं; पर निराला की काव्य-रचनाएँ आज के नवयुवक कवियों में जो प्रेरणाएँ दे रही हैं, वे निकट भविष्य में समाप्त होने वाली नहीं जान पड़तीं। यदि आज के नवयुवक कवियों की काव्य-कृतियाँ इस शताब्दी के अंतिम चरणों में अपनी परिणति प्राप्त करेंगी, तो इस समय तक निराला का वैयक्तिक प्रभाव अवशेष नहीं होगा। इसके पश्चात् निराला की काव्य-रचनाएँ साहित्यिक इतिहास की स्थायी निधियों में परिनिष्ठित होंगी और साहित्यिक अमरता की प्रतीक बनेंगी। परन्तु शताब्दी के अंत तक वे अधिक व्यापक और गंभीर रूप में नये कलाकारों को अनुप्राणित करती रहेंगी। इस दृष्टि से यदि निराला को शताब्दी का कवि और उनके काव्य को शताब्दी का काव्य कहा जाय, तो यह अनुचित न होगा।

हमें यहाँ देखना है कि निराला के संपूर्ण काव्य में कितनी अनेकरूपता-भावगत, शैलीगत और भाषागत कितनी विभिन्नता है और वे कितने भिन्न २ रूपों में इस शताब्दी की हिन्दी काव्य-सर्जना को आधार देती रही हैं। आधुनिक कवियों में निराला ही ऐसे कवि हैं जिनमें काव्य-सर्जना का अपूर्व वैविध्य देखा जाता है। एक ओर उनकी मनोरम और संयत शृंगार की रचनाएँ हैं, तो दूसरी ओर उनकी वे शृंगारिक कृतियाँ हैं जो विद्रोह की भूमिका पर निर्मित हैं। उनके क्रांतिकारी और प्रखर वीर रस के काव्य में भी अनेक भावभूमियाँ परिलक्षित होती हैं। 'राम की शक्ति पूजा' जैसी रचना में यदि वीरत्व का उदात्त पक्ष मिलता है, महाकाव्योचित गरिमा मिलती है, तो 'बादल राग' जैसी रचनाओं में विस्फोटक भावनाओं का प्राधान्य है। यदि 'महाराज शिवाजी का पत्र' में करुणा मिश्रित वीर रस की भूमिका है, तो 'जागो फिर एक बार' में नवोद्बोधन का प्रचण्ड वेग है। उनके राष्ट्रीय गीतों में भी जहाँ एक ओर स्वदेश की सुषमा और सौन्दर्य प्रतिच्छायायित है, सांस्कृतिक तत्त्वों का गहन

संयोग है, वहाँ दूसरी ओर राष्ट्रीय विघटन और विपन्नता के प्रति करुण संवेदना भी है। निराला के ऋतुगीत हिन्दी साहित्य में एकदम अप्रतिम हैं। ऋतुगीतों में एक ओर प्रकृति के विकास और उल्लास के चित्र हैं, तो दूसरी ओर उसका रौद्र और विस्मयकारक स्वरूप भी है। उनकी कविता में जहाँ एक ओर 'सरोज-स्मृति' जैसी वैयक्तिक भूमिका की अतरंग करुणा है, वहाँ 'तुलसीदास' जैसे काव्य में वस्तुमुखी तटस्थता पर आधारित राष्ट्रीय परवशता के करुण दृश्य-चित्र हैं। यदि एक ओर उनके काव्य में दार्शनिक स्तर पर शान्त रस की भाव-योजनाएँ हैं, तो दूसरी ओर विशुद्ध वैयक्तिक आत्म-निवेदन भी है। शान्त रस की ये द्विविध रचनाएँ भावनाओं के दो छोरों का परिस्पर्श करती हैं। जिस कवि ने उदात्त और प्रांजल भावों की विशाल गंगा का अवतरण किया है, उसी कवि ने हास्य और व्यंग्य की तरल-चंचल स्रोत-स्त्रिनियाँ भी प्रवाहित की हैं। वादों की भूमिका पर आधुनिक युग के अनेकानेक वादों के निदर्शक तत्त्व निराला के काव्य में सहज भाव से मिल जाते हैं। इस शताब्दी के काव्य-इतिहास में इतनी निर्मर्याद काव्य-रचना किसी ने नहीं की। यही कारण है कि आज निराला-काव्य की व्याख्याएँ विविध वैचारिक भूमिकाओं पर होती हैं। उनकी काव्यशैलियों में अनेक वादों का संयोग और संगम देखा जाता है। आज निराला का काव्य वह प्रस्थान-बिन्दु मान लिया गया है, जहाँ से हिन्दी की अनेकविध काव्यधाराएँ अपना निर्गम स्थान देखती हैं। यद्यपि यह उनके काव्य की अपरिमेय विशालता का परिचायक है, पर साथ ही यह समीक्षण की कठिनाइयाँ भी उपस्थित करता है। निराला की मूल जीवन-दृष्टि तथा उसके क्रमिक विकास को आत्मसात् करने में इसी कारण समीक्षकों से भ्रांतियाँ हुई हैं। (निराला के काव्योत्कर्ष के मूल तत्वों को ग्रहण करने में लोग दिग्भ्रांत हो जाते हैं। सभी उन्हें अपनी-अपनी ओर खींचना चाहते हैं और यह स्वाभाविक भी है। निराला-काव्य की बहुरूपता और विविधता समीक्षकों को चुनौती देती रही है, और साथ ही यह अवकाश भी देती रही है कि वे अपनी-अपनी ऋचियों और विचार-सरणियों को प्रमुखता देकर उनके काव्य का अंकन और आकलन करें। यद्यपि यह निराला-काव्य के पक्ष में एक प्रशंस्य उपलब्धि है, पर उनका समाहित मूल्यांकन करने में एक दुरतिगम्य बाधा भी है।)

अन्तिम प्रश्न यह है कि साहित्यिक और भावात्मक उत्कर्ष की दृष्टि से निराला के पूर्ववर्ती और परवर्ती काव्य में किस प्रकार का सम्बन्ध है? यह साहित्यिक तुलना हिन्दी के पंडितों और विद्वानों के समीक्षण का विषय है। मेरे जैसे तरुण लेखक और विद्यार्थी इस विषय में अधिकारपूर्वक कुछ भी नहीं कह सकते; परन्तु निराला-काव्य के एक अध्येता के नाते हम यह कह सकते हैं कि विद्वानों को चाहे जो रचनायें अपेक्षाकृत अधिक श्रेष्ठ और साहित्यिक गुणसम्पन्न प्रतीत हों, हमारी सामान्य बुद्धि में निराला की भावनाधारा क्रमशः अधिक गम्भीर और लोकोन्मुख होती गई है और कतिपय विश्लेषपूर्ण स्थलों को छोड़कर उनका परवर्ती काव्य अधिक सरल, सहज और भाव-संकुल हो सका है।)

परिशिष्ट-१

अनामिका (तृतीय संस्करण) सं० २०१५

पूर्ववर्ती काव्य

व्यंग्यमूलक कविताएँ: पूर्ववर्ती काव्य

दान (१५-४-३५) पृ० २२

मित्र के प्रति (७-७-३५) पृ०

सच है (७-१०-३५) पृ० ४४

वनबेला (११-७-३७) पृ० ८३

हिन्दी के सुमनों के प्रति पत्र

(६-८-३७), पृ० ११४

उक्ति (७-८-३७), पृ० ११६

ठूठ (१६-६-३७), पृ० १३६

प्रगतिशील कविताएँ

तोड़ती पत्थर (४-४-३७), पृ० ७६

गीत

आवेदन-शृंगारिक (१०-४-३७), पृ० ७८

विनय-विनयगीत (३-७-३७),

पृ० ८१

उत्साह-श्रुतुगीत (६-७-३७),

पृ० ८२

स्फुट कविताएँ

सरोजस्मृति-करुणात्मक (६-१०-३५),

पृ० ११७

प्रेयसी-शृंगारिक लम्बी कविता

(१६-१०-३५), पृ० १

राम की शक्तिपूजा-वर्णनात्मक आख्या-

नक काव्य (२३-१०-३६)

सेवा प्रारम्भ-लम्बी कविता

(७-१२-३७), पृ० १७०

परवर्ती काव्य

यथार्थोन्मुख चित्रण

खुला आसमान (६-१-३८), पृ० १३८

मरण दृश्य-व्यथावादी गीत (५-१-३८)

पृ० १३५

मुक्ति-सांस्कृतिक गीत (६-१-३८),

पृ० १३७

गतिशील कविताएँ

वे किसान की नई बहू और छवि की

आंखें (प्रगतिशील शृंगारी गीत)

(१७-८-३८), पृ० १६२ तथा

(१-३-३८), पृ० १४६

उक्ति (१६-५-३८) पृ० १६०

सहज (१२-८-३८) पृ० १६१

नेत

प्राप्ति-शृंगारिक (१-२-३८) पृ० १४७

अपराजिता-शृंगारी नारी छवि का

गीत (२-२-१६३८), पृ० १४३

वीणावादिनी-प्रार्थनापरक

(२३-२-३८), पृ० ३३

बसंत की परी के प्रति-शृंगारिक

(२६-२-३८) पृ० १४४

नर्गिस-प्रकृतिवादी (२-५-३८),

पृ० १८६

नासमझी-शृंगारिक (१५-५-३८),

पृ० १८६

मेरी छवि ला दो-शृंगारिक रहस्य-

वादी गीत (१७-८-३८) पृ० १६३

वारिदवंदना-सौन्दर्यपरक शृंगार

(१७-८-३८), पृ० १६४

परिशिष्ट-२

अणिमा (भूमिका १-८-४२)

व्यंग्यमूलक कविताएँ

- (२७) मत हैं जो प्राण, १९४२
(२९) नया अंधेरा, १९४३
(३५) गहन है यह अंध (सामाजिक
व्यंग्य विनय गीत), १९४२
(४५) चूँकि यहाँ दाना है, १९४२

यथार्थोन्मुख चित्रण

- (३३) यह है बाजार-१९४२,
यथार्थशैली में व्यंगात्मक
(३६) घेर लिया जीवों-यथार्थशैली की
चतुर्दशपदी, १९४२
(४०) नाम था प्रभात-१९४३
यथार्थवादी शैली
(४२) सड़क के किनारे दूकान है,
१९४३
(४६) जलाशय के किनारे-यथार्थवादी,
१९४३

प्रगतिशील कविताएँ

- (९) तुम्हें चाहता वह भी सुन्दर—
१९४०, प्रगतिशील

प्रयोगवादी कविताएँ

- (१२) अज्ञता-१९४१
(१३) तुम और मैं १९४०
गीत
(१) नूपुर के सुर मंद रहे-श्रृंगारिक
गीत १९४१
(२) बादल छाये-ऋतुगीत, १९४१
(३) जन-जन के जीवन के सुन्दर—

प्रार्थनापरक गीत-१९३९

- (४) उन चरणों में—प्रार्थनापरक,
१९३९
(५) सुन्दर है, सुन्दर-शांत रस का
गीत १९३९
(६) दलित जन पर करो करुणा—
भक्तिपरक, १९३९
(७) भाव जो छलके पदों पर-प्रार्थना
गीत, १९३९
(८) धूलि में तुम मुझे भर दो-
प्रार्थनापरक गीत, १९४०
(१०) मैं बैठा था पथ पर-विनय
गीत, १९४०
(११) मैं अकेला-शांत रस का गीत,
आत्मनिवेदनात्मक, १९४०
(२४) तुम आये-रहस्यवादी-विनय-
गीत, १९४२
(२५) स्नेह निर्झर बह गया-व्यथा-
गीत, १९४२
(२६) द्रुमदल-शोभी फुल्ल श्रृंगारिक,
१९४२
(२८) मरण को जिसने बरा है—
रहस्यवादी, १९४२
(३०) तुम-अनुवाद-भक्तिपरक, १९४३
(३१) स्नेह-मन तुम्हारे नयन बसे,
श्रृंगारिक गीत १९४३
(३२) जननि मोहमयी-आत्मपरक,
१९४२
(३४) तुम्हीं हो शक्ति-विनय गीत,
१९४२

(३७) भारत ही जीवन-राष्ट्रीयगीत,
१९४२

(४३) निशा का यह स्पर्श शीतल-
प्राकृतिक, १९४३

(४४) तुम चले ही गये प्रियतम-
विरहगीत, १९४३

स्फुट कविताएँ

(१४) संत कवि रविदास के प्रति
प्रशस्तिमूलक, १९४२

(१५) श्रद्धांजलि-आचार्य शुक्ल के
प्रति, प्रशस्तिमूलक, १९४१

(१६) आदरणीय प्रसाद जी के प्रति
प्रशस्तिमूलक, १९४०

(१७) भगवान बुद्ध के प्रति-प्रशस्ति-
मूलक, १९४०

(१८) सहस्राब्दि-सांस्कृतिक स्फुट
रचना—१९४२

(१९) उद्बोधन-सांस्कृतिक स्फुट
रचना, १९४१

(२०) अ०भा०म०स० की सभानेत्री
श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडित
के प्रति-प्रशस्तिमूलक १९४२

(२१) माननीया श्रीमती विजयलक्ष्मी
पंडित के प्रति-प्रशस्तिमूलक,
१९४२

(२२) माननीया श्रीमती विजयलक्ष्मी
पण्डित के प्रति-बंगला-चतुर्दश-
पदी का अर्थ-प्रशस्तिमूलक

(२६) श्रीमती महादेवी वर्मा के प्रति-
प्रशस्तिमूलक, १९४३

(३८) स्वामी प्रेमानन्द जी महाराज-
सांस्कृतिक आख्यान १९४३

—

परिशिष्ट-३

बेला (प्रथमावृत्ति) जनवरी, १९४६

भक्ति-प्रार्थना-विनय की कविताएँ

(२) रूप की धारा के उस पार—
(विनय)

(५) कैसे गाते हो (प्रार्थना)

(७) नाथ, तुमने गहा (विनय)

(१०) आये पलक पर (विनय)

(३७) सबसे तुम छूटे (आध्यात्मिक
प्रार्थनापरक)

(४२) चलते पथ (आध्यात्मिक भावना
का भक्ति गीत)

(४३) शांति चाहूँ मैं—(भक्तिगीत)

(६४) जग के, जय के (विनय)

(६५) प्रतिजन के— ,,

(७०) आये नत वदन— विनय

(७९) वही राह देखता (प्रार्थना)

आत्मपरक

(२६) जीवन-प्रदीप चेतन—(आत्म-
निवेदनात्मक)

(३४) मन में आये संचित—(आत्म-
निवेदन)

(४८) छला गया, किरणों का—(आत्म
निवेदनात्मक)

(५३) मुसीबत में कटे (आत्म निवेदन)

ऋतु और प्राकृतिक

(१) शुभ्र आनन्द-प्रकृति मूलक

- (४) स्वर के सुमेरु-प्रकृति मूलक
 (८) खिला कमल ,,
 (११) कुन्द-हास में-प्रकृति वर्णन
 (१४) उठकर छवि से-प्राकृतिक
 सौन्दर्य वर्णन
 (१५) हँसी के तार के-बसंत वर्णन
 (१६) हंसी के भूले-बसंत वर्णन
 (२२) छाये आकाश में-प्राकृतिक
 (३३) जिसको तुमने चाहा-प्राकृतिक
 (४४) आरे, गंगा के किनारे-यथार्थो-
 न्मुख प्राकृतिक गीत
 (६३) राजे दिनकर-प्राकृतिक
 (७३) लू के झोकों- ,,
 (८१) साहस कभी न छोड़ा-प्राकृतिक
 (९१) पग आंगन पर-प्राकृतिक
 (९३) खुल गया दिन- ,,
 (९५) कैसी यह हवा- ,,
शृंगारिक
 (३) आँखें वे देखी हैं
 (९) बातें चलीं सारी रात
 (१९) उनके बाग-सौन्दर्य मूलक
 शृंगारिक
 (२१) निगाह तुम्हारी थी
 (२३) स्नेह की रागिनी बजी
 (२५) किरणें कैसी-प्रकृति की भूमिका
 पर शृंगारिक गीत
 (६७) तुमसे (मिले) मेरे प्राण
दार्शनिक-सांस्कृतिक-आध्यात्मिक
 (६) बीन की झंकार-दार्शनिक
 (१८) अशब्द हो गई वीणा-दार्शनिक
 (२४) अपने को दूसरा-दार्शनिक
 (२७) कहाँ की मित्रता-दार्शनिक
 (२८) नये विचारों के-दार्शनिक
 (२९) प्रभु के नयनों से-दार्शनिक
 (३०) आये हो आस के-दार्शनिक

- (३१) फूल से चुन लिया-दार्शनिक
 (३२) बन्दीगृह वरण किया- ,,
 (४०) मृत्यु है जहाँ ,,
 (४१) क्या दुःख- ,,
 (६६) साधना-आसन- ,,
 (६९) ऐंड ली तिरछी- ,,
 (११) अति सुकृत-आध्यात्मिक
 (७८) मिट्टी की माया-दार्शनिक
 (८५) माया की गोद-दार्शनिक
 (८७) मन हमारा ,,
 (९२) उन्हें न देखूंगा-आध्यात्मिक
 (९४) अहरह तुम्हारे-दार्शनिक
प्रगतिशील-प्रयोगशील
 (१२) साथ न होना-प्रयोगशील
 (१७) शशी वे थे-प्रयोगशील
 (३५) बाहर मैं कर दिया-प्रयोगशील
 (४६) वेश रूखे-प्रगतिशील
 (५१) वह चलने से तेरे-प्रयोगशील
 (५४) गिराया है जमीं- ,,
 (५५) नहीं देखे हैं-प्रयोगशील
 (५८) आँख के आँसू ,,
 (५९) भेद कुल खुल-प्रगतिशील
 (६२) जल्द जल्द पैर- ,,
 (७५) बदली जो-प्रयोगशील
 (७६) दोनों लताएँ- ,,
 (७७) संकोच को विस्तार- ,,
 (८०) बिना अमर-प्रगतिशील सामा-
 जिक गीत
 (८२) किसकी तलाश में-प्रयोगशील
 (८३) सारे दाँवपेज-प्रयोगशील
 (८४) अगर समस्त-पदों-प्रयोगशील
 (८९) तुम हो गतिवान-प्रयोगशील
स्फुट
 (१३) फूलों के कुल कांटे-सामाजिक
 (२०) तुम्हें देखा-प्रेमगीत

- | | |
|---------------------------------------|-------------------------------------|
| (३६) आने-जाने से--व्यंग्यात्मक | (५७) अगर तू उर-उपदेशात्मक |
| (३८) काले-काले बादल--व्यंग्यात्मक | (६०) राह पर बठे--उपदे० |
| (३९) टूटी बांह--शोकगीत | (६१) विजयी तुम्हारे-उद्बो० |
| (४५) भीख माँगता--सामाजिक | (६८) अन्तस्तल से-सामाजिक |
| (४७) तू कभी न ले--सामाजिक उद्बोधन गीत | (७२) सहज चाल-सामाजिक |
| (४९) विनोद प्रण भरे--उपदेशात्मक | (७४) आँख से आँख--सामा० |
| (५०) चढ़ी हैं आँखें--सामाजिक | (८६) यह जीने का-सामाजिक उद्बोधन गीत |
| (५२) किनारा वह--सामाजिक | (८८) समर करो-उपदेशात्मक |
| (५६) पड़े थे--उद्बोधन गीत | (९०) रहे चुपचाप-सामाजिक |

परिशिष्ट-४

नये पत्ते--प्रथमावृत्ति मार्च १९४६

व्यंगमूलक कविताएँ

- (४) आँख आँख का कांटा हो गई,
पृ० २०
- (५) थोड़े के पेट में बहुतों को आना
पड़ा, पृ० २२
- (६) राजे ने अपनी रखवाली की,
पृ० २४
- (९) चर्खा चला, पृ० ३०
- (११) तारे गिनते रहे, पृ० ३३

हास्यविनोद की कविताएँ

- (१) रानी और कानी, पृ० ९
- (२) खजोहरा, पृ० ११
- (३) मास्को डायलाग्स, पृ० १८
- (७) खुशखबरी, पृ० २६
- (८) दगा की, पृ० २८
- (१०) पांचक, पृ० ३२
- (१३) गर्म पकौड़ी पृ० ३७
- (१४) प्रेम-संगीत, पृ० ३९
- (२३) छलांग मारता चला गया,
पृ० ८५

(२४) डिण्टी साहब आये, पृ० ८७

(२८) महंगू महंगा रहा, पृ० ९९

यथार्थोन्मुख चित्रण

- (१२) खेल, पृ० ३५
- (१५) स्फटिक शिला, पृ० ४१
- (१६) कुत्ता भौंकने लगा, पृ० ५४
- (१७) शींगुर डटकर बोला, पृ० ५६
- यथार्थवादी शैली की हास्य रचना

(१९) तिलांजलि, पृ० ७४

(२१) चौथी जुलाई के प्रति (अनुवाद) पृ० ८१

(२५) वर्षा, पृ० ८९

गीत

(१८) देवी सरस्वती--विनयगीत
पृ० ५८

स्फुट कविताएँ

(२०) युगावतार परमहंस श्री राम-
कृष्ण देव के प्रति--प्रशस्ति-
मूलक, पृ० ७९

(२६) कैलाश में शरत्-अतिकल्प-
निक, पृ० ६१

(२७) खून की होली जो खेली-उर्दू
फारसी की गजल शैली ।

परिशिष्ट-५

अर्चना (प्रथम संस्करण) २६-८-५० की स्वयोक्ति

भक्ति-प्रार्थना-विनय की कविताएं

(१) भव-अर्णव की (प्रार्थना)

१२-१-५०, पृ० १

(३) भज भिखारी-भक्ति, (प्रार्थना,)

१२-१-५०, पृ० ३

(४) समझा जीवन (प्राकृ०)

१२-१-५०, पृ० ४

(५) पडित्त पडित्त (प्रा०)

१३-१-५०, पृ० ५

(६) दुरित दूर करो (प्राकृ०)

१३-१-५०, पृ० ६

(७) भवसागर से (प्राकृ०)

१३-१-५०, पृ० ७

(८) रमण मन के (प्राकृ०)

१४-१-५०, पृ० ८

(१३) छांह न छोड़ो—(प्राकृतिक)

१६-१-५०, पृ० १३

(१५) सोई अँखियां—(भक्ति)

१७-१-५०, पृ० १५

(१६) तिमिरदारण (प्रा०)

१७-१-५०, पृ० १६

(२१) दो सदा सत्संग मुझको

(भक्ति), १८-१-५०, पृ० २१

(२२) चंग चढ़ी थी हमारी (भक्ति)

१८-१-५०, पृ० २२

(२५) रंग भरी किस अंग भरी हो ?

(श्रृंगा० भक्ति०) १९-१-५०,

पृ० २४

(२६) पार संसार के (प्राकृ०)

१९-१-५०, पृ० २६

(२७) प्रथम बन्दू (प्राकृ०)

२०-१-५०, पृ० २७

(२८) पैर उठे, (प्राकृ०) २०-१-५०,

पृ० २८

(३५) प्यास लगी, (प्राकृ०)

२२-१-५०, पृ० ३५

(३८) गिरते जीवन को (प्रा०)

२३-१-५०, पृ० ३८

(४२) वेदना बनी (प्राकृ०)

२४-१-५०, पृ० ४२

(४४) हरि का मन से (भक्ति)

२४-१-५०, पृ० ४४

(४६) तन मन (प्राकृ०) २५-१-५०,

पृ० ४६

(४८) मानव का मन (प्राकृ०)

२५-१-५०, पृ० ४८

(४९) तुम ही हुये (प्राकृतिक),

२३-१-५०, पृ० ४९

(५२) नवजीवन की बीन (प्राकृतिक)

२४-१-५०, पृ० ५२

(५३) पाप तुम्हारे पाँव (प्राकृतिक)

२५-१-५०, पृ० ५३

(६०) सहज सहज कर दो (प्राकृ-

तिक) ६-२-५०, पृ० ६०

६३) हार तुमसे बनी (प्राकृतिक)

७-२-५०, पृ० ६३

(६६) कौन गुमान करो (प्राकृतिक)

७-२-५०, पृ० ६६

(७२) तरणि तार दो (प्राकृतिक)

१०-२-५०, पृ० ७२

(७४) हँसो अधर (प्राकृतिक)

१०-२-५०, पृ० ७४

(७८) भजन कर हरि के चरण

(प्राकृ०) ११-२-५०, पृ० ७८

(८१) जननि, मोह की रजनी (प्राकृ०)

१२-२-५०, पृ० ८१

(८२) उनसे संसार (प्रा०) १२-२-५०,

पृ० ८२

(८३) मधुर स्वर तुमने बुलाया (प्रा०)

१२-२-५०, पृ० ८३

(८८) तू दिगम्बर (भक्ति) १३-२-५०,

पृ० ८८

(९५) पतित हुआ हूँ (भक्ति)

१६-२-५०, पृ० ९५

(९६) पतित पावनी गंगे (भक्तिपरक)

१६-२-५०, पृ० ९६

(९७) चरण गहते थे (भक्ति)

१७-२-५०, पृ० ९७

(९८) विपद-भय-निवारण (भक्ति),

१७-२-५० पृ० ९८

(९९) श्याम-श्यामा के (भक्ति)

१७-२-५०, पृ० ९९

(१००) काम के छबि-धाम (भक्ति),

१७-२-५०, पृ० १००

(१०१) हे जननि, तुम तपश्चरिता,

(प्राकृ०), १७-२-५०, पृ० १०१

(१०७) तूम्हारी छांह है (प्राकृतिक)

५०, पृ० १०७

(१०८) माँ अपने आलोक (प्राकृतिक),

५०, पृ० १०८

—४४ गीत

आत्मपरक

(११) शिविर की शर्वरी, १५-१-५०,
पृ० ११

(१४) साधो मग डगमग, १६-१-५०,
पृ० १४

(१९) दीप जलता रहा, १७-१-५०,
पृ० १९

(३७) बांधो न नाव इस ठाँव, बन्धु.
२३-१-५०, पृ० ३७

(४०) निविड़ विपिन, पथ अराल,
१-५०, पृ० ४०

(४३) आँख बचाते हो २४-१-५०,
२३-पृ० ४३

(५१) धन-तन से आवृत धरणी है,
२४-१-५०, पृ० ५१

(५४) क्यों मुझको तुम, २५-१-५०,
पृ० ५४

(५७) तुमने स्वर के, ६-२-५० पृ० ५७,

(५९) गीत गाने दो मुझे, ६-२-५०
पृ० ५९

(६१) वासना-समासीना, ६-२-५०,
पृ० ६१

(६२) ये दुख के दिन. ६-२-५०, पृ० ६२

(६७) छोड़ दो, न छोड़ो ७-२-५०,
पृ० ६७

(६९) तार-तार निकल, १०-२-५०,
पृ० ६९

(७१) हार गई मैं, १०-२-५०, पृ० ७१

(७३) गीत गाये हैं मधुर, १०-२-५०,
पृ० ७३

(७५) कठिन यह संसार, १०-२-५०,
पृ० ७५

(७९) अनामिल-अनमिल, ११-२-५०,
पृ० ७९

- (८५) कैसे हुई हार तेरी, १३-२-५०, (१०२) मुक्तादल जल बरसो (प्राक०)
 पृ० ८५ १४-८-५०, पृ० १०२
 (८६) कौन फिर तुझको, १४-२-५०, (१०४) बीन वारण के (बादलगीत)
 पृ० ८६ १४-८-५०, पृ० १०४
 (९०) हरिण नयन हरि ने छीने हैं, (१११) तपी आतम से (प्राक०)
 १४-२-५०, पृ० ९० -५०, पृ० १११
 (९१) हुये पार द्वार-द्वार, १४-२-५०, (११२) मन मधुबन, आली (प्राक०)
 पृ० ९१ -४६, पृ० ११२
 (९३) कनक कसौटी पर कढ़ आया, —१४ गीत
 १४-२-५०, पृ० ९३

- (९४) साध पुरी, फिर छुरी १४-२-५०,
 पृ० ९४

—२४ गीत

ऋतु और प्राकृतिक गीत

- (३१) अलि की गूँज (प्राक०),
 २१-१-५०, पृ० ३१
 (३२) आज प्रथम गाई (प्राकृतिक)
 २१-१-५०, पृ० ३२
 (३३) फूटे हैं आमों के (प्राकृतिक)
 (३४) खेलूंगी कभी न होली, ऋतुगीत
 २२-१-५०, पृ० ३४
 (५०) नव तन कनक-किरण, प्राक०,
 २४-१-५०, पृ० ५०
 (५६) वन-वन के झरे पात, प्राक०,
 २५-१-५०, पृ० ५६
 (६४) अट नहीं रही है (प्राक०)
 ७-२-५०, पृ० ६४
 (६५) कुंज कुंज गोयल (") ६-२-५०,
 पृ० ६५
 (७०) लघु तटिनी (") १०-२-५०,
 पृ० ७०
 (७७) क्या सुनाया गीत, कोयल (प्राक०)
 ११-२-५०, पृ० ७७
 (८६) तुम आये, कनका चले छाये
 (प्राक०) २३-२-५०, पृ० ८६

शृंगारिक गीत

- (२) तन की, मन की, १२-१-५०, पृ० २
 (१७) तुम जो सुधेर, १७-१-५०, पृ० १७
 (२०) आँख लगाई, १८-१-५०, पृ० २०
 (२३) नयन नहाये, १८-१-५०, पृ० २३
 (२६) और न अब भरमाओ, शृंगा०
 प्रार्थनापरक, २०-१-५०, पृ० २६
 (३०) दे न गये बचने की, २१-१-५०,
 पृ० ३०
 (३६) केशर की, कलि की पिचकारी,
 २२-१-५०, पृ० ३६
 (४१) सुरतरु वर शाखा, २३-१-५०,
 पृ० ४१
 (५५) तुम से जो मिले नयन, २५-१-५०,
 पृ० ५५
 (६८) प्रिय के हाथ लगाये जागी,
 ७-२-५०, पृ० ६८
 (१०६) किरणों की परियां (५०)
 पृ० १०६
 (११०) चली निशि में तुम (५०),
 पृ० ११०
 —१२ गीत

दार्शनिक-सांस्कृतिक-आध्यात्मिक गीत

- (६) बन जाय भले (दार्श०)
 १४-१-५०, पृ० ६
 (१०) लगी लगन (दार्श०) १४-१-५०,
 पृ० १०

- (२५) सरल तार
(आध्या० दार्श० सां०)
१६-१-५०, पृ० २५
(८७) खोले अमलिन (दार्श०),
१३-२-५०, पृ० ८७
—४ गीत

प्रगतिशील-प्रयोगशील

- (१२) आशा-आशा (प्रगतिशील)
१५-१-५०, पृ० १२
(१८) जिनकी नहीं मानी (प्रयोगशील),
१७-१-५०, पृ० १८
(४५) खुल कर गिरती है (प्रयोगशील),
२४-१-५०, पृ० ४५
(५८) लिया-दिया तुमसे (प्रयोगशील),
६-२-५०, पृ० ५८
(७६) नील जलधि-जल (प्रयोगशील),
११-२-५०, पृ० ७६
(८४) गवना न करो (प्रयोगशील),
१२-२-५०, पृ० ८४

- (६२) पथ पर वे मौत न मर (प्रगति०),
१४-२-५०, पृ० ६२
(१०६) तपन से घन (प्रयोग०)
१५-८-५०, पृ० १०६
—८ गीत

स्फुट

- (३६) धीरे-धीरे निराशावादी, (आत्म-
परक, भक्तिपरक) २३-१-५०,
पृ० ३६
(४७) वे कह जो गये (विरह),
२५-१-५०, पृ० ४७
(८०) मूढ़े नयन (रहस्यवादी गीत),
१२-१-५०, पृ० ८०
(१०३) गगन-गगन है गान तुम्हारा
(रहस्यगीत) १४-८-५०,
पृ० १०६
(१०५) घन आये घनश्याम न आये
(विरह गीत) १४-८-५०,
पृ० १०५
—५ गीत

परिशिष्ट ६

आराधना—प्रथम संस्करण सं २०११

भक्ति-प्रार्थना-विनय गीत

- (१) पद्मा के पद को (प्रा०) २४-८-५२ (१४) कामरूप, हरो काम (भक्ति)
(पृ० १) १३-६-५२, पृ० १४
(५) कमल-कमल (प्रार्थनापरक) (२०) राम के हुए तो बने काम (भक्ति)
२६-८-५२, पृ० ५ १८-६-५२, पृ० २०
(८) रंग-रंग से यह गागर (प्रा०) (२१) विपदा हरण हार (प्रा०)
२६ ८-५२ (पृ० ८) १८-६-५२, पृ० २१
(६) छेड़ दे तार तू पुनर्बार (प्रा०) (२४) मेरी सेवा गृहण करो हे ! (प्रा०)
२-६८-५२, पृ० ६ १६-६-५२, पृ० २४
(१२) कृष्ण-कृष्ण राम-राम (भक्ति) (२६) हिम के आतप (प्रा०)
१३-६-५२, पृ० १२ १४-१२-५२

- (२८) दुख हर दे, जल शीतल,
१४-११-५२
- (२९) सुख का दिन डूबे (प्रा०)
१४-११-५२, पृ० २९
- (३३) हे मानस के सकाल (प्रा०)
१५-११-५२, पृ० ३३
- (३५) सत्य पाया जहाँ (भक्ति)
१५-११-५२, पृ० ३५
- (३६) बांधो रस के निर्झर (प्रा०)
१५-११-५२, पृ० ३६
- (३८) पालो तुम सकल-शकल (प्रा०)
१६-११-५२, पृ० ३८
- (४०) जावक-जय. (प्रकृति के आधार
पर प्रार्थना गीत) १६-११-५२,
पृ० ४०
- (४१) पल-प्रकाश को (प्रा०)
१७-११-५२, पृ० ४१
- (४४) मानव के तन केतन फहरे (प्रा०)
१७-११-५२, पृ० ४४
- (४६) मन का समाहार (प्रा०)
१७-११-५२ (पृ० ४६)
- (४७) हँसो मेरे नयन (प्रा०)
१७-११-५६, पृ० ४७
- (४८) अशरण शरण राम (प्रा०)
१८-११-५२, पृ० ४८
- (५०) तुम से लाग लगी (प्रा०)
२६-११-५२, पृ० ५०
- (५१) हरि भजन करो (प्रा०)
२८-११-५१, पृ० ५१
- (५३) कालस्रोत में (प्रा०) ७-१२-५२,
पृ० ५३
- (५४) ज्योति प्रात (ईश्वर परक)
७-१२-५२, पृ० ५४
- (५५) नाचो हे, रुद्रताल (प्राकृतिक)
७-१२-५२, पृ० ५५
- (६०) वही चरण शरण बने (प्राकृतिक)
७-१२-५२, पृ० ६०
- (६१) लो रूप, लो नाम (प्राकृतिक)
८-१२-५२, पृ० ६१
- (६७) जय अजेय, अप्रमेय (प्राकृतिक)
९-१२-५२, पृ० ६७
- (६८) रहते दिन दीन, (प्राकृतिक)
९-१२-५२, पृ० ६८
- (६९) तिमिर हरण तरणितरण (प्रा०)
१५-१२-५२, पृ० ६९
- (७१) सजी क्या तन, (प्राकृतिक)
१५-१२-५२, पृ० ७१
- (८१) आँखे जहाँ प्रेमिका, (भक्तिमूलक)
१८-१२-५२, पृ० ८१
- (८२) मन न मिले, (भक्ति) १८-१२-५२,
पृ० ८२
- (८७) ज्ञान की तेरी, (भक्ति)
अक्टूबर ४६, पृ० ८७
- (८८) जीवन के मधु, (भक्ति)
जनवरी ५०, पृ० ८८
- (९०) गत शत पथ पर, (प्राकृतिक)
२३-१-५०, पृ० ९०
- (९१) अभय शंख बजा, (प्राकृतिक)
७-१२-५२, पृ० ९१
- (९२) दे सकाल, काल, देश (प्राकृतिक)
सन् ५१, पृ० ९२
—३६ गीत
- आत्मपरक गीत**
- (२) दुख के सुख जियो २५-८-५२,
पृ० २
- (६) मरा हूँ हजार मरण २६-८-५२,
पृ० ६

(१०) आज मन पावन हुआ २६-८-५२,
पृ० १०

(११) सुख के दिन भी याद तुम्हारी,
७-६-५२, पृ० ११

(१५) हार गया १३-६-५२, पृ० १५

(१६) द्वार पर तुम्हारे १५-६-५२,
पृ० १६

(१७) नील नील पड़ गए प्राण वे,
१५-६-५२, पृ० १७

(१८) छोटा है तो जी छोटा कर,
१५-६-५२, पृ० १८

(१९) साँस के माझ के (प्रयोगवादी शैली
का आत्मपरक गीत) १८-६-५२,
पृ० १९

(२२) दुखता रहता १९-६-५२, पृ० २२

(२७) नहीं रहते प्राणों में प्राण
१४-११-५२, पृ० २७

(३१) सूने हैं साज आज १५-११-५२,
पृ० ३१

(३२) (जब) हाय समाई है, १५-११-५२,
पृ० ३२

(३७) मेरा फुल न कुम्हला पाये
१६-११-५२, पृ० ३७

(४३) बात न की तो क्या बन
१७-११-५२, पृ० ४३

(५६) नहीं घर-घर गेह अब तक
७-१२-५२, पृ० ५६

(५७) सीधी राह मुझे चलने दो
७-१२-५२, पृ० ५७

(६२) भग्न तन, हण मन ८-१२-५२,
पृ० ६२

(६५) भवन, भुवन हो गया ९-१२-५२,
पृ० ६५

(८३) क्षीण भी छाँह तुमने छीनी
२६-१२-५२, पृ० ८३

(८६) हारता है मेरा मन १-३-५०,
पृ० ८६

(९५) सभी तुम्हारे जीते, हारे
११-११-५१, पृ० ९५
—२२ गीत

ऋतु और प्राकृतिक गीत

(३) धाये धाराधर धावन है (प्रा०)
२५-८-५२, पृ० ३

(२३) ओस पड़ी शरद आई (ऋतु)
१९-६-५२, पृ० २३

(४५) नील नयन, नीलपलक (प्राकृ०)
१७-१२-५२, पृ० ४५

(५८) कुंजों की रात प्रभात हुई (प्रा०)
८-१२-५२, पृ० ५८

(५९) चल समीर (प्रा०); ८-१२-५२
पृ० ५९

(६३) वन-उपवन खिल (प्रा०)
८-१२-५२, पृ० ६३

(६४) रंगे जग के फलक (प्रा०)
९-१२-५२, पृ० ६४

(६६) छोटी तरणी (प्रा०) ९-१२-५२,
पृ० ६६

(९४) गोरे अधर मुस्काई, मार्च-५१
पृ० ९४

(९६) यह गाढ़ तन (प्रा०), पृ० ९६

श्रृंगारिक गीत

(२५) जब तू रचना (श्रृंगारिक रहस्य-
वादी) १४-११-५२, पृ० २५

(७०) बांसुरी जो बजी १५-१२-५२,
पृ० ७०

(८६) गगन वीणा बजी २५-६-४६,
पृ० ८६

- दार्शनिक-सांस्कृतिक आध्यात्मिक गीत (८०) खिरनी के पेड़ के तले (प्रयोग०)
 (५२) दुख भी सुख का (आध्यात्मिक १७-१२-५२, पृ० ८०
 आत्मपरक) ७-१२-५२, पृ० ५२ (४८) रंग गये सांवले (प्रयो०)
 (७६) रमणी न रमणीय १६-१२-५२, २४-२-५३, पृ० ४
 पृ० ७६ —१० गीत
 (६३) निहंर केशर के शर के हैं (दार्श०) स्फुट
 जनवरी ५१, पृ० ६३ (४) आई कल जैसी पल (रहस्य गीत)
 २५-८-५२, पृ० ४
 प्रगतिशील-प्रयोगशील (१३) उध्वं चन्द्र, अधर चंद्र (रहस्य०)
 (७) अरवान की फैल (प्रयोगशील शैली) १३-६-५२, पृ० ६३
 २६-८-५२, पृ० ७ (३४) मार हाथ भव-वारिध (आत्म-
 (३०) छलके छलके पैमाने का (प्रयोग- शील) १५-११-५२, पृ० ३४
 शील) १४-११-५२, पृ० ३० संकल्प) १५-११-५२, पृ० ३४
 (३६) तप के बंधन बांधो (प्रयोगशील) (४२) पार-पार वार जो है (रहस्यवादी)
 १६-११-५२, पृ० ३६ १७-११-५२, पृ० ४२
 (७२) ऊँट, बैल का साथ (प्रयोगशील (४६) जी कर जो प्राण न मर सके
 शैली-प्रगतिशील विषय) (व्यंग्यात्मक) २६-११-५२,
 १५-१२-५२, पृ० ७२ पृ० ४६
 (७३) मानव जहाँ बैल-घोड़ा है (प्रगति- (७४) खेत जोतकर (यथार्थ०)
 शील), १६-१२-५२, पृ० ७३ १६-१२-५२, पृ० ७४
 (७५) महकी साड़ी (प्रयोग०) (७८) भरी तन की भरन (यथार्थवादी
 १६-१२-५२, पृ० ७५ चित्रण) १६-१२ ५२, पृ० ७८
 (७६) जैसे जोबन (प्रयोग०) १६-१२-५२, (८५) आँख अधर रंग (यथार्थोन्मुख
 पृ० ७६ शैली का गीत)
 (७७) बान कूटता है (प्रयोग०) —८ गीत
 १६-१२-५२, पृ० ७७

परिशिष्ट-७

गीतगुंज-द्वितीय परिवर्द्धित संस्करण, संवत् २०१६

भक्ति-प्रार्थना-विनय गीत

- (५) शाप तुम्हारा : गरज उठे सौ-सौ-
 प्रार्थना, ८-१-५४, पृ० २७

- (१२) जिधर देखिये, श्याम विराजे
 (भक्ति) १५-८-५४, पृ० ३४
 (२२) स्वर में छायाण्ट भर दो (प्राकृ०)
 ५-३-५५, पृ० ४४

- (३१) मधुर-मधुर, मृत्यु मधुर,
(प्राकृ०) २०-८-५६, पृ० ५३
(३४) समझे, मनोहारि वरण जो हो
सके (प्राकृतिक) ३१-१-५७,
पृ० ५६
—५ गीत

आत्मपरक गीत

- (१३) बादल रे, जी तड़पे,
१७-८-५४, पृ० ३५
(१७) जी में न लगी जो विकल प्यास
२१-८-५४, पृ० ३६
—२ गीत

ऋतु और प्राकृतिक गीत

- (१) वरद हुई शारदा जी हमारी
(ऋतु) ५-२-५४ पृ० २३
(२) फेर दी आँख जी आया
(प्राकृ०) ५-२-५४, पृ० २४
(३) बौरा आम कि भौरा बोले
(ऋतु) २६-२-५४, पृ० २५
(४) कूची तुम्हारी फिरी कानन में
(प्राकृ०) २६-२-५४ पृ० २६
(७) कमरख की आँखें भर आईं
(प्राकृतिक) १-६-४६
पृ० २६
(१०) श्याम गगन नव-घन मंडलाये
(प्राकृतिक) १५-८-५४,
पृ० ३२
(११) बढ़-बढ़ कर बहती पुरवाई
(प्राकृतिक) १५-८-५४,
पृ० ३३
(१४) आओ-आओ वारिद बन्दन
(ऋतु) १७-८-५४, पृ० ३६

- (१८) पड़ी चमेली की माला कल
(प्राकृतिक) २४-१०-५४,
पृ० ४०
(२१) धिक मनस्सब, मान
(प्राकृ०) २१-७-५५, पृ० ४३
(२३) फिर नभ घन लहराये
(प्राकृ०) २१-७-५५, पृ० ४५
(२४) खेल सिखी अखियाँ
(प्राकृ०) २१-७-५५, पृ० ४६
(२५) फिर उपवन में खिली चमेली
(प्राकृतिक) ५-१०-५५,
पृ० ४७
(२६) शुभ्र शरत् आई अंबर पर
(ऋतु) ८-११-५५, पृ० ४८
(२७) मालती खिली कृष्ण मेघ की
(प्राकृतिक) २६-७-५६,
पृ० ४३
(२८) भर गया जुही के गंध पवन
(प्राकृतिक) २६-७-५६,
पृ० ५०
(२९) प्यासे तुमसे भर कर हरसे
(ऋतु) ३०-७-५६, पृ० ५१
(३०) सरसि सलिल कहता खिल,
(प्राकृ०) ३-८-५६, पृ० ५२
(३३) शरत् की शुभ्र गंध फैली,
(ऋतु) २६-११-५६,
पृ० ५५
—२० गीत

शृंगारिक गीत

- (८) पारस, मदन हिलोर न दे तन
१२-८-५३, पृ० ३०
(९) प्राण तुम पावन, २-८-५४,
पृ० ३१

(१५) गगन मेघ छाये (प्राक०)

१७-८-५४, पृ० ३७

(१६) केश के मेचक मेघ,

२१-८-५४, पृ० ३८

(२०) नखसिल लिखे, ३०-१२-५४,

पृ० ४२

(३२) प्यार की थाती, ८-६-५६,

पृ० ५४

—६ गीत

प्रगतिशील-प्रयोगशील

(६) बुझी दिल की न लगी मेरी

(फारसी शैली का प्रयोगशील

गीत) १६-४-५३, पृ० २८

—१ गीत

स्फुट

(१६) रूपक के रथ रूप तुम्हारा,

(रहस्यवादी गीत)

२४-११-५४, पृ० ४१

—१ गीत

सहायक ग्रन्थ-सूची

काव्य

१. परिमल—सप्तमावृत्ति, सं० २०१३।
२. अनामिका—तृतीय संस्करण,
सं० २०१५।
३. गीतिका -चतुर्थ संस्करण,
सं० २०१२।
४. तुलसीदास—पंचम संस्करण,
सं० २०१४।
५. अणिमा—प्रथम संस्करण, १९४३।
६. कुकुरमुत्ता—द्वितीय संस्करण,
१९५२।
७. बेला—प्रथमावृत्ति, १९४६।
८. नए पत्ते—प्रथमावृत्ति, १९४६।
९. अर्चना—प्रथम संस्करण, १९५०।
१०. आराधना—प्रथम संस्करण, १९५३।
११. गीतगुंज—प्रथम संस्करण १९५४
तथा द्वितीय परि० सं०, १९५६।

उपन्यास

१२. अप्सरा—१९३१।
१३. अलका—१९३३।
१४. प्रभावती—१९३६।
१५. निरूपमा—१९३६।
१६. कुल्लीभाट—१९३६।
१७. बिल्लेसुर बकरिहा—१९४१।
१८. चमेली—१९४१।
१९. चोटी की पकड़—अधूरा, १९४६।
२०. काले कारनामे—अधूरा, १९५०।

निबंध

२१. प्रबंध-पत्र—द्वितीयावृत्ति १९५४।
२२. प्रबंध-प्रतिमा—प्रथम संस्करण,
१९४०।
२३. चयन—प्रथम संस्करण १९५७।

अनुवाद

२४. रवीन्द्र-कविता-कानन—संशोधित
तथा परि० जमसंस्करण, १९५४।

संपादित पत्र-पत्रिकायें

२५. समन्वय।
२६. मतवाला।

आलोचनात्मक ग्रंथ

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल—

२७. हिन्दी-साहित्य का इतिहास।
- आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी—
२८. हिन्दी-साहित्य : बीसवीं शताब्दी।
२९. आधुनिक साहित्य।
३०. राष्ट्रभाषा की कुछ समस्यायें।
- आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी—
३१. हिन्दी-साहित्य।

डा० रामविलास शर्मा—

३२. निराला।
३३. स्वाधीनता और राष्ट्रीय साहित्य।
- डा० रामअवध द्विवेदी—
३४. साहित्यरूप।
- डा० कमलाकान्त पाठक—
३५. आधुनिक हिन्दीकाव्य (द्वितीय भाग)
- डा० रामरतन भटनागर—
३६. कवि निराला : एक अध्ययन।
३७. निराला।

डा० बरचनसिंह—

३८. क्रांतिकारी कवि निराला।
- डा० विश्वम्भरनाथ उपाध्याय—
३९. कवि निराला : काव्यकला और कृतियां।

श्री गिरीशचन्द्र तिवारी—

४०. कवि निराला और उनका
काव्य-साहित्य ।

श्री गंगाप्रसाद पाण्डेय—

४१. महाप्राण निराला ।

श्री धनंजय वर्मा—

४२. निराला : काव्य और व्यक्तित्व ।
जैमिनी बरुआ—

४३. महाकवि और निराला-अभिनन्दन-
ग्रन्थ ।

डा० बरसानेलाल चतुर्वेदी—

४४. हिन्दीसाहित्य में हास्यरस ।

डा० एस० पी० खत्री—

४५. हास्य की रूपरेखा ।

दोब्रुल्लोव—

४६. दर्शनसाहित्य और आलोचना ।

डा० रघुवंश (सम्पादक)—

४७. हिन्दीकाव्य की प्रवृत्तियाँ ।

अज्ञेय—

४८. आत्मनेपद ।

कृष्णादेव प्रसाद गौड़—

४९. साहित्य-प्रवाह ।

जानकीवल्लभ शास्त्री—

५०. साहित्य-दर्शन ।

पत्र-पत्रिकाएं

५१. साहित्यालोचन (त्रैमासिक), सन् ६२

५२. आलोचना—(काव्यालोचनांक)
सन् ५८ ।

५३. अवन्तिका—जनवरी, १९५४ ।

५४. नया साहित्य—निराला-विशेषांक,
५१ वीं जन्मतिथि पर ।

५५. ज्योत्स्ना—जुलाई, १९६१ ।

५६. नीणा—नवम्बर, १९३७ ।

५७. रसवंती—निराला अंक, १९६२ ।

५८. 'निराला' पत्रिका—फरवरी, १९६१

५९. साप्ताहिक हिन्दुस्तान—फरवरी, '६२

६०. धर्मयुग, फरवरी, १९६२ ।

६१. मध्यप्रदेश-संदेश, फरवरी, १९६२ ।

अंग्रेजी पुस्तकें

A Nicoll—

62. An Introduction to Drama-
tic Theory.

63. Theory of Drama.
Christopher Caudwell—

64. Illusion and Reality.

D. P. Mukerji—

65. Modern Indian Culture.

E. M. Forster—

66. Aspects of the Novel.
George Thomson—

67. The Idea of comedy.

68. Marxism and Poetry.

G S. Fraser—

69. Vision and Rhetoric.

Littledale—

70. Introduction to Lyrical
Ballads By Wordsworth
and Coleridge.

P. T. Palgrave—

71. Golden Treasury.

Ralph fox—

72. The Novel and the people.
Renewellek and Austin
Warren —

73. Theory of Literature.
Scott James—

74. The Making of Literature.
T. S. Elliot—

75. Wasteland.

W. H. Hudson—

76. An Introduction to the
Study of Literature.
W. N. Thackeray—

77. Humour and Humourists.

